Centre for Distance & Online Education
(CDOE)

Bachelor of Arts
(B.A.) SEM. III
(Hindi Medium)

BECO-301

PRINCIPLES OF MACROECONOMICS-I

Guru Jambheshwar University of Science & Technology, HISAR-125001

CONTENTS

अध्याय	अध्याय का शीर्षक	पृष्ठ
1	समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति, अर्थ और क्षेत्र	1-25
2	राष्ट्रीय आय की अवधारणा, मापन की व धयाँ और चक्रीय आय प्रवाह (तीन एवं चार क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में)	26-55
3	उपभोग प्रवृ त्त: औसत एवं सीमाांत उपभोग प्रवृ त्त, उपभोग का मनो वज्ञानिक नियम	56-80
4	निवेश प्रवृ त्त: प्रकार, निवेश मांग अनुसूची, सीमाांत पूँजी दक्षता, गुणक और त्वरक	81-110
5	पारंपरिक ष्टिकोण: आय, उत्पादन एवं रोजगार का निर्धारण तथा बाजार नियम	111-139
6	कीन्स का ष्टिकोण: प्रभावपूर्ण मांग का सद्धांत एवं सम वभाजन संतुलन	140-168
7	मुद्रा: परिभाषा, कार्य एवं मात्रा सद्धांत – फशर समीकरण और कैम्ब्रिज समीकरण	169-198
8	बैं कंग: वा णज्यिक बैंकों के कार्य एवं साख सृजन की प्र क्रया; कीन्स का तरलता प्रवृ त्त सद्धांत	199-223

विषय: अर्थशास्त्र (समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत I)	
विषय क्रमांक: बीए BECO-301	लेखक: डॉ. सोमनाथ परूथी
अध्याय: 1	वेट्टर:
समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति, अर्थ और क्षेत्र	

अध्याय की संरचना (Structure of the Chapter)

1.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र क्या है? (What is Macroeconomics?)

1.3 समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति (Nature of Macroeconomics)

1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र बनाम समष्टि अर्थशास्त्र (Microeconomics versus Macroeconomics)

1.5 समष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र और महत्व (Scope and Importance of Macroeconomics)

1.6 समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएँ (Limitations of Macroeconomics)

1.7 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र के बीच अंतर (Difference between Microeconomics and Macroeconomics)

1.8 व्यष्टि अर्थशास्त्र की समष्टि अर्थशास्त्र पर निर्भरता (Dependence of Microeconomic Theory on Macroeconomics)

1.9 समष्टि अर्थशास्त्र की व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत पर निर्भरता (Dependence of Macroeconomics on Microeconomic Theory)

1.10 समष्टि अर्थशास्त्री असहमत क्यों होते हैं? (Why Macroeconomists Disagree?)

1.11 व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र में संक्रमण (Transition from Microeconomics to Macroeconomics)

1.12 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

1.13 सारांश **(Summary)**

1.14 सूचक **शब्द (Keywords)**

1.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assessment Questions-SAQs)**

1.16 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.17 संदर्भ ग्रंथ **/** निर्देशित पुस्तकें **(References / Suggested Readings)**

1.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय का अध्ययन करने के उपरांत, विद्यार्थी निम्नलिखित बातों को समझने और स्पष्ट करने में सक्षम होंगे:

- समष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा व अर्थ को समझ सकेंगे।
- समष्टि और व्यष्टि अर्थशास्त्र के बीच अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
- समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति को जान पाएंगे।
- समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र और विषय-सामग्री को पहचान सकेंगे।
- आर्थिक नीतियों के निर्माण में समष्टि दृष्टिकोण की उपयोगिता को समझ सकेंगे।
- समष्टि आर्थिक समस्याओं जैसे मुद्रास्फीति, बेरोज़गारी, चक्रवात आदि को पहचान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

समष्टि अर्थशास्त्र आधुनिक आर्थिक विचारधारा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर पर कार्य करने वाले तत्वों का विश्लेषण करता है। जहाँ व्यष्टि (Micro) अर्थशास्त्र व्यक्तिगत इकाइयों जैसे उपभोक्ता, फर्म,

बाजार आदि के व्यवहार का अध्ययन करता है, वहीं समष्टि (Macro) अर्थशास्त्र व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर समग्र आर्थिक क्रियाओं की व्याख्या करता है।

समष्टि अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद (GDP), मुद्रास्फीति, बेरोजगारी, निवेश, बचत, उपभोग, ब्याज दरें, मुद्रा आपूर्ति, सरकारी व्यय और विदेशी व्यापार जैसे समग्र संकेतकों का विश्लेषण करना है। यह न केवल इन संकेतकों को समझने में सहायक है, बल्कि इनके परस्पर संबंधों और अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या भी करता है।

20वीं शताब्दी के महान ब्रिटिश अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स को समष्टि अर्थशास्त्र का जनक माना जाता है। वर्ष 1936 में प्रकाशित उनकी प्रसिद्ध कृति *"The General Theory of Employment, Interest and Money"* ने पारंपरिक आर्थिक विचारधारा को चुनौती दी और समष्टि विश्लेषण की नींव रखी।

समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आर्थिक समस्याओं को समझने और नीति-निर्धारण करने के लिए केवल व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है, बल्कि समग्र स्तर पर विचार करना आवश्यक है। सरकारें और केंद्रीय बैंक समष्टि आर्थिक विश्लेषण के आधार पर नीतियाँ बनाते हैं, जैसे मौद्रिक नीति (Monetary Policy) और राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)।

इस अध्याय में हम समष्टि अर्थशास्त्र के अर्थ, प्रकृति, तथा अध्ययन क्षेत्र **(scope)** का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे, जिससे हमें आधुनिक अर्थव्यवस्था को व्यापक रूप से समझने में मदद मिलेगी।

1.2 समष्टि अर्थशास्त्र क्या है? (What is Macroeconomics?)

'मैक्रो' शब्द का पहली बार प्रयोग रेगनर फ्रिश ने 1933 में किया था। लेकिन समष्टि स्तर पर सोचने की परंपरा इससे बहुत पहले, 16वीं-17वीं शताब्दी के व्यापारवादियों **(Mercantilists)** से शुरू हुई थी, जिन्होंने संपूर्ण अर्थव्यवस्था को एक इकाई के रूप में देखा।

18वीं सदी में फिजियोक्रेट्स **(Physiocrats)** ने 'टेबल इकोनॉमिक' नामक मॉडल के ज़रिए तीन वर्गों — किसान, भूस्वामी और बंजर वर्ग — के बीच धन के प्रवाह को दिखाया। 19वीं सदी में माल्थस, सिसमोंडी, और कार्ल मार्क्स जैसे विचारकों ने समष्टि आर्थिक समस्याओं पर गंभीर विचार किया। कीन्स से पहले भी वालरस, विकसेल, और फिशर जैसे कई अर्थशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में योगदान दिया। प्रथम विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में कैसल, मार्शल, पिगू, हायेक और हॉवट्रे जैसे विद्वानों ने मुद्रा और मूल्य स्तरों से संबंधित सिद्धांत विकसित किए। लेकिन, समष्टि

अर्थशास्त्र को नई पहचान देने का श्रेय जॉन मेनार्ड कीन्स को जाता है, जिन्होंने *महामंदी* के समय *आय, उत्पादन और रोजगार* पर आधारित एक क्रांतिकारी *सामान्य सिद्धांत* प्रस्तुत किया।

इस पुस्तक में हम अर्थशास्त्र की उस शाखा का अध्ययन करने जा रहे हैं जिसे समष्टि अर्थशास्त्र यानी Macroeconomics कहा जाता है। ब्रिटिश अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल ने अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए कहा था कि यह "जीवन के सामान्य व्यवसाय में मानवजाति का अध्ययन है" — यानी ऐसी गतिविधियाँ जो मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति और उनके उपयोग से जुड़ी हों।

समष्टि अर्थशास्त्र में हम इन गतिविधियों को समग्र रूप से समझने का प्रयास करेंगे। हम देखेंगे कि एक पूरी अर्थव्यवस्था किस तरह काम करती है। जिन मुख्य विषयों पर हम ध्यान देंगे, वे हैं: कुल उत्पादन, मूल्य स्तर, रोजगार और बेरोजगारी, ब्याज दरें, मजदूरी दरें और विदेशी मुद्रा विनिमय दरें। इसके साथ ही, हम यह भी समझने की कोशिश करेंगे कि ये कारक (factors) समय के साथ कैसे बदलते हैं — जैसे उत्पादन की वृद्धि दर, मुद्रास्फीति, बेरोजगारी में उतार-चढ़ाव, और विदेशी मुद्रा दरों में परिवर्तन।

हम यह भी अध्ययन करेंगे कि सरकार की नीतियां इन समष्टि चरों को कैसे प्रभावित करती हैं। हम इन सवालों के उत्तर ढूंढने की कोशिश करेंगे कि:

- क्या सरकारी नीतियाँ बेरोजगारी या मुद्रास्फीति को कम करने में मदद कर सकती हैं?
- क्या कुछ नीतियाँ आर्थिक समस्याओं को बढ़ा भी सकती हैं?
- और किन परिस्थितियों में कौन-सी नीति सबसे बेहतर हो सकती है?

आप देखेंगे कि अर्थशास्त्री अक्सर नीतियों पर सहमत नहीं होते। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उनके विचार इस बात पर अलग-अलग होते हैं कि ये आर्थिक चर किस तरह से निर्धारित होते हैं। इसलिए, जब हम विभिन्न समष्टि अर्थशास्त्र सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे, तो हम यह भी देखेंगे कि हर सिद्धांत अपने साथ अलग-अलग नीतिगत सुझाव लेकर आता है।

हम इन सिद्धांतों की तुलना करेंगे, लेकिन इस बात का भी ध्यान रखेंगे कि सभी विचार एक जैसे नहीं होते। कुछ बातों पर आम सहमति होती है, तो कुछ में तीव्र असहमति। हमारा उद्देश्य इन मतभेदों को स्पष्ट करना और हर विचारधारा के पीछे छिपे *सैद्धांतिक आधार* को समझना होगा।

हम 1970 के दशक तक प्रभावी रहे कीन्सियन अर्थशास्त्र का अध्ययन करेंगे, जो उस समय की मुख्यधारा सोच थी। यह विचारधारा शास्त्रीय अर्थशास्त्र के जवाब में उभरी थी।

1.3 समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति (Nature of Macroeconomics)

समष्टि अर्थशास्त्र दरअसल एक ऐसा अध्ययन है जो पूरी अर्थव्यवस्था को एक *समग्र* रूप में देखता है। इसमें हम उन औसत या कुल सूचनाओं का विश्लेषण करते हैं जो किसी देश की आर्थिक स्थिति को दर्शाती हैं। जैसे कि — कुल रोजगार (total employment)

राष्ट्रीय आय (national income)

राष्ट्रीय उत्पादन (national output)

कुल निवेश, कुल खपत और कुल बचत

कुल मांग (aggregate demand) और कुल आपूर्ति (aggregate supply)

सामान्य मूल्य स्तर (general price level), मजदूरी का स्तर (wage level), और लागत की संरचना

यानि यह ऐसा अध्ययन है जो आर्थिक *समग्रों* (aggregates) के बीच के आपसी संबंधों, उनके निर्धारण और उनमें आने वाले उतार-चढ़ाव की वजहों को समझने की कोशिश करता है।

प्रोफेसर **Ackley** के शब्दों में,

"समष्टि अर्थशास्त्र बड़े पैमाने पर आर्थिक पहलुओं से जुड़ा होता है। यह किसी आर्थिक तजुर्बे के 'हाथी' की पूरी आकृति और गतिविधियों को देखने जैसा है — न कि उसके किसी एक हिस्से को देखने जैसा। जैसे जंगल को समझने के लिए हमें एक-एक पेड़ नहीं बल्कि पूरे जंगल की तस्वीर देखनी होती है, ठीक वैसे ही समष्टि अर्थशास्त्र पूरी अर्थव्यवस्था की तस्वीर पेश करता है।"

समष्टि अर्थशास्त्र को कभी-कभी **आय और रोजगार का सिद्धांत** या **आय विश्लेषण** भी कहा जाता है। यह उन समस्याओं से जुड़ा होता है जो व्यापक आर्थिक असंतुलन से पैदा होती हैं, जैसे — बेरोजगारी (unemployment)

आर्थिक उतार-चढ़ाव (business cycles)

मुद्रास्फीति और अपस्फीति (inflation and deflation)

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और भुगतान संतुलन (international trade and balance of payment)

आर्थिक विकास और उसका निर्धारण (economic develpoent and its determination)

उदाहरण के तौर पर: जब हम व्यापार चक्रों (business cycle) की बात करते हैं, तो हम ये देखते हैं कि निवेश में बढ़ोत्तरी किस तरह से कुल उत्पादन, आय और रोजगार को प्रभावित करती है। मौद्रिक क्षेत्र में, हम यह विश्लेषण करते हैं कि मुद्रा की कुल आपूर्ति (money supply) किस तरह सामान्य मूल्य स्तर को प्रभावित करती है। और जब हम अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की बात करते हैं, तो हम भुगतान संतुलन और विदेशी सहायता जैसे विषयों को भी शामिल करते हैं।

कुल मिलाकर, समष्टि अर्थशास्त्र का मकसद होता है उन कारकों (factors) को समझना जो किसी देश की **राष्ट्रीय आय** को निर्धारित करते हैं और उसमें समय के साथ होने वाले उतार-चढ़ाव की वजहों को भी उजागर करना।

1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र बनाम समष्टि अर्थशास्त्र (Microeconomics versus Macroeconomics)

जहां समष्टि अर्थशास्त्र पूरी अर्थव्यवस्था को एक इकाई की तरह देखता है, वहीं व्यष्टि अर्थशास्त्र (Microeconomics) चीजों को छोटे हिस्सों में विभाजित करके समझता है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र**:** यह व्यक्तिगत इकाइयों जैसे कि परिवारों, फर्मों, कंपनियों और उत्पादों की आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन करता है।

उदाहरण के लिए:

✔ किसी एक वस्तु की कीमत

✔ किसी विशेष फर्म की आय या उत्पादन

✔ किसी विशेष क्षेत्र की मजदूरी दर

समष्टि अर्थशास्त्र**:** यह व्यक्तिगत आंकड़ों को छोड़कर समग्र आंकड़ों पर ध्यान देता है, जैसे:

✔ राष्ट्रीय आय

✔ मूल्य स्तर (price level)

✔ राष्ट्रीय उत्पादन

Ackley के अनुसार,

"व्यष्टि अर्थशास्त्र संसाधनों के उपयोग और विभाजन को समझता है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र राष्ट्रीय उत्पादन, संसाधन उपयोग की कुल सीमा और राष्ट्रीय आय की स्थिति को समझता है।"

ध्यान देने योग्य बात यह है कि दोनों शाखाओं में कुछ मात्रा में *एकत्रीकरण (aggregation)* होता है। लेकिन

व्यष्टि अर्थशास्त्र में एकत्रीकरण का मतलब होता है छोटे-छोटे समूहों को जोड़कर देखना — जैसे कई फर्मों को मिलाकर एक उद्योग बनता है, या कई परिवारों की मांग को मिलाकर किसी वस्तु की कुल मांग निकाली जाती है। जबकि समष्टि अर्थशास्त्र में एकत्रीकरण और भी बड़े स्तर पर होता है — जैसे उपभोक्ता वस्तुओं और पूंजीगत वस्तुओं के कुल उत्पादन को मिलाकर पूरी अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन निकालना।

प्रोफेसर बिलास के अनुसार — "व्यष्टि अर्थशास्त्र उस प्रकार के समग्र आंकड़ों से नहीं जुड़ा होता जिनमें अरबों डॉलर के कुल उपभोक्ता व्यय, व्यावसायिक निवेश और सरकारी खर्च शामिल हों — ये सारे समष्टि अर्थशास्त्र के विषय हैं।"

1.5 समष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र और महत्व (Scope and Importance of Macroeconomics)

समष्टि अर्थशास्त्र अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो अर्थव्यवस्था के बड़े और समग्र (aggregate) पहलुओं का अध्ययन करती है। इसका महत्व अत्यधिक है क्योंकि यह हमें अर्थव्यवस्था की समग्र कार्यप्रणाली को समझने और विभिन्न आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयुक्त नीतियां बनाने में मदद करता है।

1. **अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझना** (To Understand the Working of the Economy)

समष्टि अर्थशास्त्र हमें एक देश की अर्थव्यवस्था कैसे काम करती है, इसकी गहरी समझ प्रदान करता है। यह व्यक्तिगत इकाइयों के बजाय कुल उत्पादन, कुल आय, कुल रोजगार, सामान्य मूल्य स्तर जैसे व्यापक चरों का विश्लेषण करता है। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि ये समग्र चर एक-दूसरे से कैसे जुड़े हुए हैं और समय के साथ कैसे बदलते हैं। उदाहरण के लिए, यह बताता है कि राष्ट्रीय आय कैसे निर्धारित होती है, विभिन्न क्षेत्रों का अर्थव्यवस्था में क्या योगदान है, और मुद्रास्फीति या बेरोजगारी जैसी समस्याएं क्यों उत्पन्न होती हैं। अर्थव्यवस्था के समग्र प्रवाह, जैसे आय का चक्रीय प्रवाह, निवेश और बचत के बीच संबंध, और सरकारी व्यय का प्रभाव, सभी का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के तहत किया जाता है। यह ज्ञान नीति निर्माताओं और आम जनता दोनों के लिए महत्वपूर्ण है ताकि वे आर्थिक रुझानों को समझ सकें और बेहतर निर्णय ले सकें।

2. **आर्थिक नीतियों में सहायक** (In Economic Policies)

समष्टि अर्थशास्त्र का एक सबसे महत्वपूर्ण पहलू विभिन्न आर्थिक समस्याओं से निपटने और वांछित आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नीतियों के निर्माण में इसकी भूमिका है।

(i) *सामान्य बेरोजगारी में* (In General Unemployment)

बेरोजगारी किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए एक गंभीर समस्या है। समष्टि अर्थशास्त्र बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारों (चक्रीय, संरचनात्मक, घर्षणात्मक) और उनके कारणों का अध्ययन करता है। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि कुल मांग में कमी या संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण बड़े पैमाने पर बेरोजगारी क्यों होती है। इस समझ के आधार पर, सरकारें और केंद्रीय बैंक ऐसी नीतियां (जैसे राजकोषीय प्रोत्साहन, मौद्रिक विस्तार, व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम) तैयार कर सकते हैं जिनका उद्देश्य रोजगार के स्तर को बढ़ाना और बेरोजगारी को कम करना हो। कीन्स का सिद्धांत, विशेष रूप से, बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए समग्र मांग प्रबंधन पर केंद्रित था।

(ii) *राष्ट्रीय आय में* (In National Income)

राष्ट्रीय आय एक अर्थव्यवस्था के कुल आर्थिक प्रदर्शन का सबसे महत्वपूर्ण संकेतक है। समष्टि अर्थशास्त्र राष्ट्रीय आय के निर्धारण (कैसे यह उत्पन्न होती है), इसके वितरण (यह विभिन्न समूहों में कैसे विभाजित होती है), और इसमें उतार-चढ़ाव (यह कैसे बढ़ती या घटती है) का अध्ययन करता है। यह हमें सकल घरेलू उत्पाद (GDP),

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) जैसी अवधारणाओं को समझने में मदद करता है। इस ज्ञान के बिना, कोई भी सरकार यह आकलन नहीं कर सकती कि अर्थव्यवस्था कितनी अच्छी तरह प्रदर्शन कर रही है या विकास के लिए कौन सी नीतियां आवश्यक हैं। राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का उपयोग आर्थिक लक्ष्यों को निर्धारित करने और नीतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है।

(iii) *आर्थिक विकास में* (In Economic Growth)

आर्थिक विकास किसी भी देश के दीर्घकालिक कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है। समष्टि अर्थशास्त्र उन कारकों का अध्ययन करता है जो आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं, जैसे निवेश, बचत, तकनीकी प्रगति, मानव पूंजी और सरकारी नीतियां। यह आर्थिक विकास के मॉडलों (जैसे हैरोड-डोमर मॉडल, सोलो मॉडल) की पड़ताल करता है जो बताते हैं कि एक अर्थव्यवस्था समय के साथ कैसे बढ़ती है। यह ज्ञान नीति निर्माताओं को ऐसी रणनीतियां बनाने में मदद करता है जो दीर्घकालिक आर्थिक विकास को बढ़ावा दें, जीवन स्तर में सुधार करें और गरीबी को कम करें।

(iv) *मौद्रिक समस्याओं में* (In Monetary Problems)

मुद्रास्फीति (prices rising too quickly) और अपस्फीति (prices falling too quickly) प्रमुख मौद्रिक समस्याएं हैं जो अर्थव्यवस्था को अस्थिर कर सकती हैं। समष्टि अर्थशास्त्र मुद्रा आपूर्ति, ब्याज दरों और मूल्य स्तर के बीच संबंधों का विश्लेषण करता है। यह यह समझने में मदद करता है कि मुद्रास्फीति क्यों होती है (मांग-पुल या लागत-धक्का), और इसे नियंत्रित करने के लिए मौद्रिक और राजकोषीय नीतियां कैसे अपनाई जा सकती हैं। केंद्रीय बैंक ब्याज दरों को समायोजित करके या खुले बाजार संचालन के माध्यम से मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए समष्टि आर्थिक सिद्धांतों का उपयोग करते हैं।

(v) *व्यापार चक्रों में* (In Business Cycles)

अर्थव्यवस्थाएँ विस्तार और संकुचन (मंदी) के चरणों से गुजरती हैं, जिन्हें व्यापार चक्र कहा जाता है। समष्टि अर्थशास्त्र इन चक्रों के कारणों (जैसे निवेश में उतार-चढ़ाव, उपभोक्ता विश्वास में परिवर्तन) और उनके प्रभावों (जैसे बेरोजगारी में वृद्धि या गिरावट, उत्पादन में परिवर्तन) का अध्ययन करता है। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि मंदी क्यों आती है और कैसे सरकारें और केंद्रीय बैंक इन उतार-चढ़ाव को स्थिर करने के लिए प्रतिचक्रीय नीतियों (counter-cyclical policies) का उपयोग कर सकते हैं।

3. **व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार को समझने के लिए** (For Understanding the Behaviour of Individual Units)

भले ही समष्टि अर्थशास्त्र कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था का अध्ययन करता है, फिर भी यह व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ प्रदान करता है। व्यक्तिगत फर्मों और परिवारों के निर्णय (जैसे कितना उपभोग करना है, कितना निवेश करना है, या कितने लोगों को नियुक्त करना है) अक्सर समग्र आर्थिक परिस्थितियों (जैसे समग्र मांग, सामान्य मूल्य स्तर, ब्याज दरें) से प्रभावित होते हैं।

उदाहरण के लिए, एक फर्म का निवेश निर्णय उस अर्थव्यवस्था के समग्र विकास संभावनाओं और ब्याज दरों से प्रभावित होगा, जिसका अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र में किया जाता है। इसी तरह, एक परिवार की उपभोग और बचत आदतें समग्र आय स्तर और भविष्य की आर्थिक संभावनाओं पर निर्भर करती हैं। इस प्रकार, समष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत निर्णय निर्माताओं को एक बड़ा चित्र प्रदान करता है जिसके भीतर वे अपने अनुकूलन संबंधी विकल्प बनाते हैं।

संक्षेप में, समष्टि अर्थशास्त्र हमें अर्थव्यवस्था के बड़े चित्र को समझने, प्रभावी आर्थिक नीतियां बनाने और यहां तक कि व्यक्तिगत आर्थिक व्यवहारों के पीछे के व्यापक संदर्भ को समझने में भी मदद करता है। यह आधुनिक आर्थिक विश्लेषण और नीति निर्माण का एक अनिवार्य हिस्सा है।

1.6 समष्टि अर्थशास्त्र की सीमाएँ (Limitations of Macroeconomics)

समष्टि अर्थशास्त्र, जैसा कि हमने देखा, अर्थव्यवस्था की समग्र कार्यप्रणाली को समझने और नीतियों को तैयार करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। हालांकि, इसकी अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं जिन्हें समझना आवश्यक है ताकि इसके विश्लेषण और निष्कर्षों का उचित उपयोग किया जा सके।

1. **रचना का भ्रम** (Fallacy of Composition)

समष्टि अर्थशास्त्र की एक प्रमुख सीमा 'रचना का भ्रम' है। यह भ्रम तब उत्पन्न होता है जब हम यह मान लेते हैं कि जो बात व्यक्तिगत स्तर पर सत्य है, वह स्वचालित रूप से पूरे समूह या अर्थव्यवस्था के समग्र स्तर पर भी सत्य होगी।

उदाहरण के लिए:

- यदि एक व्यक्ति अपनी बचत बढ़ाता है, तो वह भविष्य के लिए सुरक्षित महसूस कर सकता है। लेकिन यदि सभी लोग एक साथ अपनी बचत बढ़ाना शुरू कर दें (यानी कुल खपत कम हो जाए), तो कुल मांग घट जाएगी, जिससे उत्पादन और रोजगार में कमी आ सकती है, और अंततः लोगों की आय भी कम हो सकती है, जिससे उनकी बचत करने की क्षमता प्रभावित हो सकती है। इसे 'बचत का विरोधाभास' **(Paradox of Thrift)** कहा जाता है।
- इसी तरह, यदि एक व्यक्तिगत फर्म अपनी लागत कम करने के लिए श्रमिकों को निकालती है, तो उसे लाभ हो सकता है। लेकिन यदि सभी फर्म ऐसा करना शुरू कर दें, तो कुल बेरोजगारी बढ़ जाएगी, समग्र मांग घट जाएगी, और पूरी अर्थव्यवस्था मंदी में जा सकती है।

यह सीमा बताती है कि व्यक्तिगत व्यवहार और समग्र परिणामों के बीच हमेशा सीधा संबंध नहीं होता, और कभी-कभी व्यक्तिगत रूप से तर्कसंगत व्यवहार समग्र रूप से अवांछनीय परिणाम दे सकता है।

2. **समग्रों को सजातीय/ समरूप मानना** (To Regard the Aggregates as Homogeneous)

समष्टि अर्थशास्त्र समग्र चरों जैसे 'कुल उत्पादन', 'कुल उपभोग' या 'सामान्य मूल्य स्तर' का उपयोग करता है। एक सीमा यह है कि यह इन समग्रों के भीतर की विविधता या विषम प्रकृति को अनदेखा कर देता है, उन्हें सजातीय (homogeneous) मान लेता है।

उदाहरण के लिए:

- 'कुल उत्पादन' में कृषि, औद्योगिक और सेवा क्षेत्र सभी शामिल होते हैं। यदि कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि हो रही है, लेकिन औद्योगिक उत्पादन में गिरावट आ रही है, तो 'कुल उत्पादन' में वृद्धि भ्रम पैदा कर सकती है कि अर्थव्यवस्था ठीक चल रही है, जबकि कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र समस्याओं का सामना कर रहे हों।
- 'सामान्य मूल्य स्तर' सभी वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों का औसत है। यदि खाद्य कीमतें तेजी से बढ़ रही हैं जबकि इलेक्ट्रॉनिक्स की कीमतें गिर रही हैं, तो औसत मूल्य स्तर स्थिर दिख सकता है, लेकिन समाज के गरीब वर्ग (जो अपनी आय का बड़ा हिस्सा भोजन पर खर्च करते हैं) को गंभीर मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ सकता है।

- 'कुल रोजगार' में विभिन्न प्रकार के श्रमिक, कौशल स्तर और वेतन श्रेणियाँ शामिल होती हैं। 'कुल रोजगार' के आंकड़ों में वृद्धि यह नहीं बताती कि क्या यह वृद्धि उच्च-कुशल नौकरियों में है या कम-कुशल, कम वेतन वाली नौकरियों में।

यह सीमा नीति निर्माताओं के लिए समस्याएँ खड़ी कर सकती है क्योंकि उन्हें समग्र डेटा के भीतर की सूक्ष्म विविधताओं को समझने की आवश्यकता होती है ताकि वे लक्षित और प्रभावी नीतियां बना सकें।

3. **समग्र चर आवश्यक रूप से महत्वपूर्ण नहीं हो सकते हैं** (Aggregate Variables may not be Important Necessarily)

कभी-कभी, समग्र चर अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति को पूरी तरह से या सटीक रूप से प्रतिबिंबित नहीं कर सकते हैं, या वे किसी विशेष संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण पहलू नहीं हो सकते हैं।

उदाहरण के लिए, यदि एक अर्थव्यवस्था में असमानता बहुत अधिक है, तो 'राष्ट्रीय आय' में वृद्धि का मतलब यह नहीं हो सकता कि समाज के सभी वर्गों का कल्याण बढ़ रहा है। राष्ट्रीय आय बढ़ सकती है, लेकिन इसका अधिकांश हिस्सा केवल कुछ धनी व्यक्तियों तक ही पहुंच सकता है, जबकि गरीब वर्ग संघर्ष कर रहे हों। इस स्थिति में, केवल राष्ट्रीय आय पर ध्यान केंद्रित करना भ्रामक हो सकता है; आय वितरण जैसे अधिक विस्तृत चरों का अध्ययन भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

यह सीमा इंगित करती है कि समष्टि आर्थिक विश्लेषण के साथ-साथ, हमें अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक और वितरण संबंधी पहलुओं को भी ध्यान में रखना होगा ताकि एक समग्र और सही तस्वीर मिल सके।

4. **समष्टि अर्थशास्त्र का अंधाधुंध उपयोग भ्रामक** (Indiscriminate Use of Macroeconomics Misleading)

समष्टि आर्थिक अवधारणाओं और निष्कर्षों का अंधाधुंध या बिना सोचे-समझे उपयोग भ्रामक परिणाम दे सकता है या गलत नीतिगत सिफारिशों को जन्म दे सकता है। प्रत्येक आर्थिक समस्या की अपनी विशिष्ट प्रकृति होती है, और उसे केवल समग्र दृष्टिकोण से देखना पर्याप्त नहीं होता।

उदाहरण के लिए, यदि किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति है, तो केवल कुल मुद्रा आपूर्ति को कम करना ही हमेशा सही समाधान नहीं होता। यदि मुद्रास्फीति का कारण लागत-धक्का (Cost-Push जैसे तेल की कीमतों में वृद्धि) है, तो केवल मुद्रा आपूर्ति को कम करने से उत्पादन और रोजगार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, जबकि

समस्या का समाधान न हो। इसी तरह, आर्थिक मंदी के हर मामले में सरकारी खर्च बढ़ाना उचित नहीं होता; कभी-कभी संरचनात्मक सुधारों की अधिक आवश्यकता हो सकती है।

यह सीमा बताती है कि नीति निर्माताओं को केवल समग्र दृष्टिकोण पर ही नहीं टिके रहना चाहिए, बल्कि विशिष्ट परिस्थितियों और अंतर्निहित कारणों का गहन विश्लेषण भी करना चाहिए।

5. **सांख्यिकीय और वैचारिक कठिनाइयाँ** (Statistical and Conceptual Difficulties)

समष्टि अर्थशास्त्र के लिए बड़ी मात्रा में डेटा की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय आय, कुल रोजगार, सामान्य मूल्य स्तर जैसे समग्र चरों को मापने और अनुमान लगाने में कई सांख्यिकीय और वैचारिक कठिनाइयाँ आती हैं।

- डेटा संग्रह की समस्याएँ**:** विशाल और विविध अर्थव्यवस्था से सटीक और विश्वसनीय डेटा एकत्र करना एक बड़ी चुनौती है। डेटा में त्रुटियाँ, अनुमानों की आवश्यकता और विभिन्न देशों के बीच डेटा संग्रह पद्धतियों में अंतर तुलना को मुश्किल बना सकता है।
- वैचारिक स्पष्टता**:** कुछ समष्टि आर्थिक अवधारणाओं को परिभाषित करना और मापना वैचारिक रूप से चुनौतीपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, 'क्षमता उपयोग' या 'प्राकृतिक बेरोजगारी दर' जैसे चरों को सटीक रूप से परिभाषित करना और मापना कठिन हो सकता है।
- अद्यतन और विलंब**:** आर्थिक डेटा अक्सर एक समय-विलंब (time-lag) के साथ उपलब्ध होता है, जिसका अर्थ है कि नीति निर्माताओं को निर्णय लेने के लिए अक्सर पुरानी जानकारी पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे प्रतिक्रियात्मक नीतियां कम प्रभावी हो सकती हैं।

ये कठिनाइयाँ समष्टि आर्थिक विश्लेषण की सटीकता को प्रभावित कर सकती हैं और नीतिगत निर्णयों की प्रभावशीलता को सीमित कर सकती हैं।

इन सीमाओं के बावजूद, समष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं को समझने और नीतियों को तैयार करने के लिए एक आवश्यक ढाँचा प्रदान करता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सीमाओं के प्रति सचेत रहें और समग्र विश्लेषण को सूक्ष्म विश्लेषण और विशिष्ट परिस्थितियों के साथ पूरक करें।

1.7 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र के बीच अंतर (Difference between Microeconomics and Macroeconomics)

अर्थशास्त्र को मुख्यतः दो प्रमुख शाखाओं में विभाजित किया गया है: व्यष्टि अर्थशास्त्र (Microeconomics) और समष्टि अर्थशास्त्र (Macroeconomics)। ये दोनों शाखाएँ अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करती हैं और पूरक हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण, अध्ययन के विषय और उद्देश्यों में महत्वपूर्ण अंतर हैं।

अंतर का आधार	**व्यष्टि अर्थशास्त्र** (Microeconomics)	**समष्टि अर्थशास्त्र** (Macroeconomics)
1. अर्थ **(Meaning)**	अर्थशास्त्र की वह शाखा जो व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों जैसे उपभोक्ता, उत्पादक, फर्म, उद्योग और विशिष्ट बाजारों के व्यवहार का अध्ययन करती है। यह 'छोटे' स्तर पर आर्थिक निर्णयों पर केंद्रित है।	अर्थशास्त्र की वह शाखा जो अर्थव्यवस्था के समग्र (कुल) व्यवहार का अध्ययन करती है, जिसमें कुल उत्पादन, राष्ट्रीय आय, कुल रोजगार, सामान्य मूल्य स्तर और आर्थिक विकास जैसे चर शामिल हैं। यह 'बड़े' स्तर पर अर्थव्यवस्था को देखती है।
2. अध्ययन का विषय **(Subject Matter)**	यह विशिष्ट वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों और उत्पादन के निर्धारण, उपभोक्ता संतुलन, उत्पादक संतुलन, बाजार संरचनाओं (जैसे पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार), संसाधन आवंटन, और आय वितरण के व्यक्तिगत पहलुओं से संबंधित है।	यह अर्थव्यवस्था के समग्र स्तर पर समस्याओं जैसे बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, आर्थिक वृद्धि, व्यावसायिक चक्र, भुगतान संतुलन और गरीबी से संबंधित है। यह कुल मांग और कुल आपूर्ति के विश्लेषण पर केंद्रित है।
3. दृष्टिकोण **(Approach)**	यह 'नीचे से ऊपर' (bottom-up) दृष्टिकोण अपनाता है, जहाँ व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार का अध्ययन करके समग्र पैटर्न को समझने का प्रयास किया जाता है। यह अक्सर 'आंशिक संतुलन विश्लेषण' (partial equilibrium analysis) का उपयोग करता	यह 'ऊपर से नीचे' (top-down) दृष्टिकोण अपनाता है, जहाँ समग्र आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन करके व्यक्तिगत इकाइयों पर उनके प्रभावों को समझने का प्रयास किया जाता है। यह 'सामान्य संतुलन विश्लेषण' (general equilibrium analysis) पर

	है।	अधिक जोर देता है।
4. मुख्य उद्देश्य **(Main Objective)**	इसका मुख्य उद्देश्य संसाधनों के कुशल आवंटन और सापेक्ष कीमतों के निर्धारण का विश्लेषण करना है। यह व्यक्तिगत निर्णय लेने और बाजार के कामकाज को समझना चाहता है।	इसका मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था की समग्र कार्यप्रणाली को समझना, आर्थिक उतार-चढ़ाव (जैसे मंदी और उछाल) के कारणों की पहचान करना, और समग्र आर्थिक स्थिरता और विकास को बढ़ावा देने के लिए नीतियां बनाना है।
5. उपकरण / चर **(Tools / Variables)**	इसके मुख्य उपकरण मांग और आपूर्ति के व्यक्तिगत वक्र, कीमत सिद्धांत, उत्पादन फलन, लागत वक्र, और बाजार संरचनाएं हैं। इसमें व्यक्तिगत वस्तुओं की कीमतें, व्यक्तिगत आय और व्यक्तिगत उत्पादन जैसे चर शामिल हैं।	इसके मुख्य उपकरण कुल मांग (AD), कुल आपूर्ति (AS), राष्ट्रीय आय (GDP/GNP), कुल उपभोग, कुल निवेश, सामान्य मूल्य स्तर, ब्याज दरें, और रोजगार के कुल स्तर हैं।
6. आर्थिक समस्याएं **(Economic Problems Addressed)**	यह विशिष्ट उत्पादों की अधिक आपूर्ति/कम आपूर्ति, किसी विशेष उद्योग में रोजगार या बेरोजगारी, और किसी विशेष वस्तु की कीमत में उतार-चढ़ाव जैसी समस्याओं का विश्लेषण करता है।	यह अर्थव्यवस्था-व्यापी बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, मंदी, आर्थिक ठहराव, और भुगतान संतुलन के असंतुलन जैसी व्यापक समस्याओं का विश्लेषण करता है।
7. अन्य नाम **(Other Names)**	इसे 'कीमत सिद्धांत' (Price Theory) या 'संसाधन आवंटन सिद्धांत' (Resource Allocation Theory) के रूप में भी जाना जाता है।	इसे 'आय और रोजगार सिद्धांत' (Income and Employment Theory) या 'कुल सिद्धांत' (Aggregative Theory) के रूप में भी जाना जाता है।
8. उदाहरण **(Examples)**	एक उपभोक्ता का अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर कैसे खर्च किया जाए, एक फर्म	एक देश में कुल बेरोजगारी दर, मुद्रास्फीति की दर, राष्ट्रीय आर्थिक विकास दर,

	का उत्पादन स्तर और मूल्य निर्धारण निर्णय, एक विशेष बाजार में मजदूरी का निर्धारण।	सरकारी बजट घाटा, व्यापार अधिशेष/घाटा।
9. प्रमुख प्रतिपादक **(Key Proponents)**	अल्फ्रेड मार्शल, एडम स्मिथ, लियोनेल रॉबिंस, जॉन हिक्स, पॉल सैमुएलसन (शुरुआती कार्य)	जॉन मेनार्ड कीन्स, रेगनर फ्रिश, मिल्टन फ्रीडमैन, रॉबर्ट लुकास

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र दोनों ही अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए अनिवार्य हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र हमें व्यक्तिगत बाजार की कार्यप्रणाली को गहराई से समझने में मदद करता है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र हमें पूरी अर्थव्यवस्था के बड़े चित्र को समझने और उसके समग्र प्रदर्शन को प्रभावित करने वाली व्यापक नीतियों को तैयार करने में सक्षम बनाता है। एक के बिना दूसरे का पूर्ण अध्ययन अधूरा है, क्योंकि व्यक्तिगत आर्थिक निर्णय समग्र परिणामों को प्रभावित करते हैं, और समग्र आर्थिक स्थितियां व्यक्तिगत निर्णयों को आकार देती हैं। इसलिए, एक समग्र और प्रभावी आर्थिक विश्लेषण के लिए दोनों शाखाओं का समन्वित अध्ययन आवश्यक है।

1.8 व्यष्टि अर्थशास्त्र की समष्टि अर्थशास्त्र पर निर्भरता (Dependence of Microeconomic Theory on Macroeconomics)

भले ही व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों के व्यवहार पर केंद्रित है, लेकिन यह पूरी तरह से समष्टि आर्थिक वातावरण से स्वतंत्र नहीं है। वास्तव में, व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत कई महत्वपूर्ण तरीकों से समष्टि अर्थशास्त्र पर निर्भर करता है:

- समग्र आर्थिक वातावरण का प्रभाव**:** व्यक्तिगत परिवार और फर्में अपने आर्थिक निर्णय (जैसे कितना उपभोग करना है, कितना निवेश करना है, या कितने लोगों को काम पर रखना है) लेते समय समग्र आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हैं। उदाहरण के लिए:
    - एक उपभोक्ता का खर्च करने का निर्णय राष्ट्रीय आय के स्तर**,** मुद्रास्फीति की दर और भविष्य की आर्थिक संभावनाओं (जो समष्टि आर्थिक कारक हैं) से प्रभावित होता है। यदि अर्थव्यवस्था मंदी में है और बेरोजगारी अधिक है, तो उपभोक्ता कम खर्च कर सकता है और अधिक बचत कर सकता है।

- एक फर्म का निवेश और उत्पादन का निर्णय कुल मांग के स्तर, ब्याज दरों और सामान्य व्यावसायिक अपेक्षाओं (जो समष्टि आर्थिक चर हैं) पर निर्भर करता है। यदि अर्थव्यवस्था में समग्र मांग कम है या ब्याज दरें बहुत अधिक हैं, तो फर्म कम निवेश करेगी।

- आय और रोजगार का स्तर: व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत आय और रोजगार का विश्लेषण किया जाता है, लेकिन इन आय और रोजगार का कुल स्तर समष्टि आर्थिक कारकों द्वारा निर्धारित होता है। यदि राष्ट्रीय आय और रोजगार के कुल स्तर कम हैं, तो व्यक्तिगत आय और रोजगार के अवसर भी सीमित होंगे।
- बाजार की विफलताएं और सरकारी हस्तक्षेप: व्यष्टि अर्थशास्त्र बाजार की विफलता (market failure) की अवधारणा का अध्ययन करता है, जहाँ बाजार अपने आप संसाधनों का कुशल आवंटन नहीं कर पाता। इन विफलताओं को ठीक करने के लिए अक्सर सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है, और ये हस्तक्षेप (जैसे कर लगाना, सब्सिडी देना, विनियमन) समष्टि आर्थिक नीतियों का हिस्सा होते हैं।
- व्यावसायिक चक्रों का प्रभाव: व्यष्टि इकाइयाँ व्यावसायिक चक्रों (मंदी और तेजी) से अछूती नहीं रह सकतीं। मंदी के दौरान, व्यक्तिगत फर्में उत्पादन कम करती हैं और छंटनी करती हैं, जबकि तेजी के दौरान वे विस्तार करती हैं। इन चक्रों की प्रकृति और कारण समष्टि अर्थशास्त्र द्वारा समझाए जाते हैं।

संक्षेप में, व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण को समग्र आर्थिक संदर्भ के भीतर ही समझा जा सकता है। व्यक्तिगत आर्थिक एजेंटों का व्यवहार उस व्यापक आर्थिक वातावरण द्वारा आकार लेता है जिसमें वे कार्य करते हैं।

1.9 समष्टि अर्थशास्त्र की व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत पर निर्भरता (Dependence of Macroeconomics on Microeconomic Theory)

समष्टि अर्थशास्त्र, जो अर्थव्यवस्था के समग्र व्यवहार का अध्ययन करता है, व्यष्टि आर्थिक सिद्धांतों और अवधारणाओं पर भी काफी हद तक निर्भर करता है। समग्र चर के व्यवहार को समझने के लिए हमें व्यक्तिगत इकाइयों के व्यवहार में अंतर्दृष्टि की आवश्यकता होती है:

- समग्र का निर्माण व्यक्तिगत व्यवहार से: मैक्रोइकॉनॉमिक्स के सभी समग्र चर (जैसे कुल उपभोग, कुल निवेश, कुल आपूर्ति) व्यक्तिगत इकाइयों के निर्णयों और कार्यों का योग होते हैं। उदाहरण के लिए:

- कुल उपभोग लाखों व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के खर्च करने के निर्णयों का कुल है। इन निर्णयों को समझने के लिए हमें उपभोक्ता व्यवहार के व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत (जैसे उपयोगिता अधिकतमकरण, बजट बाधाएं) की आवश्यकता होती है।
- कुल निवेश हजारों फर्मों के निवेश निर्णयों का योग है। ये निर्णय फर्मों के व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत (जैसे लाभ अधिकतमकरण, उत्पादन लागत) से प्रभावित होते हैं।
- कुल आपूर्ति अर्थव्यवस्था की सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की कुल मात्रा है, जो उनके उत्पादन और मूल्य निर्धारण निर्णयों से निर्धारित होती है।

- आधारभूत मान्यताओं के लिए**:** समष्टि आर्थिक मॉडल अक्सर व्यष्टि आर्थिक सिद्धांतों से व्युत्पन्न मान्यताओं पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए, आर्थिक एजेंटों **(**व्यक्तियों और फर्मों**)** को तर्कसंगत व्यवहार करने वाला माना जाता है और वे अपने लाभ या उपयोगिता को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं। ये व्यष्टि आर्थिक मान्यताओं समष्टि आर्थिक मॉडलों के लिए आधारशिला का काम करती हैं।
- नीति निर्माण के लिए**:** समष्टि आर्थिक नीतियां (जैसे राजकोषीय या मौद्रिक नीति) अंततः व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों के व्यवहार को प्रभावित करके काम करती हैं। यह समझने के लिए कि एक नीति कैसे कार्य करेगी (उदाहरण के लिए, ब्याज दरों में कमी से निवेश कैसे बढ़ेगा), नीति निर्माताओं को यह जानना होगा कि व्यक्तिगत फर्में ब्याज दरों में बदलाव पर कैसे प्रतिक्रिया देंगी।
- मूल्य स्तर और मजदूरी निर्धारण**:** सामान्य मूल्य स्तर और समग्र मजदूरी स्तर का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र में किया जाता है, लेकिन इन स्तरों को प्रभावित करने वाले कारकों में व्यक्तिगत वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें और विशिष्ट श्रम बाजारों में मजदूरी का निर्धारण शामिल है, जो व्यष्टि अर्थशास्त्र के विषय हैं।

संक्षेप में, व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र एक दूसरे पर गहराई से निर्भर करते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र समग्र आर्थिक वातावरण के भीतर संचालित होता है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र को व्यक्तिगत आर्थिक एजेंटों के व्यवहार की नींव पर बनाया गया है। दोनों शाखाएं एक दूसरे के बिना अधूरी हैं, और आर्थिक घटनाओं की एक पूर्ण और व्यापक समझ के लिए उनका एकीकृत अध्ययन आवश्यक है।

1.10 समष्टि अर्थशास्त्री असहमत क्यों होते हैं? (Why Macroeconomists Disagree?)

समष्टि अर्थशास्त्र, अन्य सामाजिक विज्ञानों की तरह, एक सटीक विज्ञान नहीं है। यही कारण है कि समष्टि अर्थशास्त्री अक्सर महत्वपूर्ण आर्थिक मुद्दों और नीतियों पर असहमत होते हैं। यह असहमति कई जटिल कारकों से उत्पन्न होती है:

1. **विभिन्न आर्थिक विचारधाराएँ और सिद्धांत** (Different Economic Schools of Thought and Theories)

समष्टि अर्थशास्त्र में विभिन्न विचारधाराएँ (Schools of Thought) मौजूद हैं, जिनमें से प्रत्येक अर्थव्यवस्था के कामकाज और समस्याओं के कारणों के बारे में अलग-अलग धारणाएँ और मॉडल रखती है। प्रमुख विचारधाराओं में शामिल हैं:

- कीनेसियन अर्थशास्त्र **(Keynesian Economics):** यह मानता है कि अर्थव्यवस्था में बाजार की विफलताएँ (market failures) हो सकती हैं और समग्र मांग (aggregate demand) में कमी से मंदी और बेरोजगारी हो सकती है। इसलिए, यह सरकार के हस्तक्षेप (राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के माध्यम से) को अर्थव्यवस्था को स्थिर करने के लिए आवश्यक मानता है।
- मुद्रावाद **(Monetarism):** यह मुद्रा आपूर्ति (money supply) की भूमिका पर अधिक जोर देता है। मिल्टन फ्रीडमैन जैसे मुद्रावादी मानते हैं कि मुद्रास्फीति मुख्य रूप से मुद्रा आपूर्ति में अत्यधिक वृद्धि का परिणाम है और सरकार का हस्तक्षेप अक्सर अस्थिरता लाता है।
- नया शास्त्रीय अर्थशास्त्र **(New Classical Economics):** यह 'तर्कसंगत अपेक्षाओं' (rational expectations) की अवधारणा पर आधारित है और मानता है कि व्यक्ति और फर्में भविष्य के बारे में उपलब्ध सभी जानकारी का उपयोग करके तर्कसंगत निर्णय लेते हैं। इसलिए, यह सरकारी नीतियों की प्रभावशीलता को सीमित मानता है, क्योंकि लोग नीतियों के प्रभावों का अनुमान लगा लेते हैं और उसके अनुसार अपना व्यवहार बदल लेते हैं।
- नया कीनेसियन अर्थशास्त्र **(New Keynesian Economics):** यह कीनेसियन परंपरा में रहते हुए, व्यष्टि आर्थिक आधारों (microfoundations) के साथ कीनेसियन मॉडल को मजबूत करने का प्रयास करता है, जैसे कीमतें और मजदूरी क्यों चिपचिपी (sticky) होती हैं, जिससे बाजार की विफलताएं हो सकती हैं।

- वास्तविक व्यावसायिक चक्र सिद्धांत **(Real Business Cycle Theory):** यह मानता है कि व्यावसायिक चक्र मुख्य रूप से वास्तविक झटकों (real shocks) जैसे तकनीकी नवाचारों या संसाधनों की उपलब्धता में बदलाव के कारण होते हैं, न कि मौद्रिक या मांग-संबंधी झटकों के कारण।

जब कोई नई आर्थिक चुनौती (जैसे 2008 का वित्तीय संकट या कोविड-19 महामारी) सामने आती है, तो विभिन्न विचारधाराओं के अर्थशास्त्री उसे समझने और प्रतिक्रिया देने के लिए अपने-अपने सैद्धांतिक ढांचे का उपयोग करते हैं, जिससे स्वाभाविक रूप से अलग-अलग विश्लेषण और नीतिगत सिफारिशें सामने आती हैं।

2. **विभिन्न धारणाएँ और सरलीकरण** (Different Assumptions and Simplifications)

एक अर्थव्यवस्था एक अत्यंत जटिल प्रणाली है। इसे मॉडल करने और समझने के लिए, अर्थशास्त्रियों को कुछ सरलीकरण या धारणाएँ बनानी पड़ती हैं। इन धारणाओं में अंतर से निष्कर्षों में भी अंतर आ सकता है:

- मूल्य और मजदूरी की दृढ़ता **(Price and Wage Stickiness):** कुछ अर्थशास्त्री मानते हैं कि कीमतें और मजदूरी अल्पावधि में दृढ़ या चिपचिपी होती हैं, जिससे बाजार पूरी तरह से साफ नहीं हो पाते (मांग और आपूर्ति बराबर नहीं होती)। अन्य मानते हैं कि कीमतें और मजदूरी लचीली होती हैं और बाजार तेजी से संतुलन में आ जाते हैं। यह धारणा नीतिगत सिफारिशों को बहुत प्रभावित करती है।
- लोगों का व्यवहार **(Human Behavior):** क्या लोग हमेशा तर्कसंगत होते हैं? क्या वे नीतियों के बारे में पूरी जानकारी रखते हैं? विभिन्न अर्थशास्त्री मानव व्यवहार के बारे में अलग-अलग धारणाएँ रखते हैं, जो उनके मॉडलों के परिणामों को बदल देती हैं।
- समय क्षितिज **(Time Horizon):** एक नीति के प्रभाव अल्पावधि और दीर्घावधि में बहुत भिन्न हो सकते हैं। एक अर्थशास्त्री जो अल्पावधि प्रभावों पर ध्यान केंद्रित करता है, वह दीर्घावधि प्रभावों पर ध्यान केंद्रित करने वाले अर्थशास्त्री से अलग निष्कर्ष पर पहुंच सकता है।

3. **अनुभवजन्य साक्ष्य की व्याख्या** (Interpretation of Empirical Evidence)

आर्थिक आंकड़ों और ऐतिहासिक घटनाओं का विश्लेषण जटिल होता है। एक ही डेटा सेट को विभिन्न अर्थशास्त्री अलग-अलग तरीकों से व्याख्या कर सकते हैं:

- डेटा की गुणवत्ता और उपलब्धता**:** आर्थिक डेटा अक्सर देरी से आता है, अधूरा होता है, या बाद में संशोधित किया जाता है। यह वर्तमान आर्थिक स्थिति की स्पष्ट तस्वीर प्राप्त करना मुश्किल बना देता है।
- कारण और प्रभाव की पहचान **(Causality vs. Correlation):** यह पहचानना कठिन होता है कि कौन सा आर्थिक चर किसी अन्य चर में परिवर्तन का कारण है। क्या एक सरकारी नीति ने आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया, या विकास अन्य कारकों के कारण हुआ? इस पर असहमति हो सकती है।
- आर्थिक मॉडल की सीमाएँ**:** समष्टि आर्थिक मॉडल यथार्थ की सरलीकृत प्रस्तुतियाँ हैं। कोई भी मॉडल सभी जटिलताओं को पकड़ नहीं सकता। जब वास्तविक दुनिया का डेटा मॉडलों के पूर्वानुमानों से मेल नहीं खाता, तो अर्थशास्त्री इस पर असहमत होते हैं कि क्या मॉडल गलत है, क्या डेटा की व्याख्या गलत है, या क्या कोई बाहरी अप्रत्याशित कारक शामिल था।

4. **विभिन्न मूल्य और लक्ष्य** (Different Values and Goals)

अर्थशास्त्री भी मनुष्य हैं और उनके अपने व्यक्तिगत मूल्य और प्राथमिकताएँ होती हैं। ये मूल्य उनके विश्लेषण और नीतिगत सिफारिशों को प्रभावित कर सकते हैं:

- लक्ष्यों की प्राथमिकता**:** क्या अर्थव्यवस्था के लिए सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य कम मुद्रास्फीति है, या पूर्ण रोजगार, या तीव्र आर्थिक विकास, या आय समानता? विभिन्न अर्थशास्त्री इन लक्ष्यों को अलग-अलग प्राथमिकता दे सकते हैं, जिससे नीतिगत प्राथमिकताओं में अंतर आएगा।
- सरकार की भूमिका**:** कुछ अर्थशास्त्री सरकार की बड़ी भूमिका पर विश्वास करते हैं, जबकि अन्य मुक्त बाजार और न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप पर जोर देते हैं। यह दार्शनिक अंतर नीतिगत बहस का एक बड़ा स्रोत है।

5. **अप्रत्याशित घटनाएँ** (Unforeseen Events)

अर्थव्यवस्था लगातार अप्रत्याशित झटकों (जैसे प्राकृतिक आपदाएँ, महामारी, भू-राजनीतिक तनाव, तकनीकी व्यवधान) के अधीन रहती है। इन घटनाओं का प्रभाव अक्सर मॉडल में पूरी तरह से शामिल नहीं होता, जिससे पूर्वानुमान और नीतिगत प्रतिक्रियाओं में असहमति पैदा होती है।

समष्टि अर्थशास्त्र में असहमति का मतलब यह नहीं है कि यह एक बेकार विषय है। बल्कि, यह इसकी जटिलता और गतिशील प्रकृति को दर्शाता है। विभिन्न दृष्टिकोण और बहसें अंततः आर्थिक समझ को गहरा करती हैं और नीति निर्माताओं को अधिक व्यापक विश्लेषण के आधार पर निर्णय लेने में मदद करती हैं। यह महत्वपूर्ण है कि हम इन असहमतियों को समझें और विभिन्न तर्कों की खूबियों और सीमाओं का मूल्यांकन करें।

1.11 व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र में संक्रमण (Transition from Microeconomics to Macroeconomics)

कार्यप्रणालीगत दृष्टिकोण के रूप में, व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र दोनों का उपयोग शास्त्रीय और नव-शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों ने अपने लेखन में किया था। लेकिन यह मार्शल ही थे जिन्होंने व्यष्टि अर्थशास्त्र को आर्थिक विश्लेषण की एक विधि के रूप में विकसित और परिपूर्ण किया। इसी तरह, यह कीन्स ही थे जिन्होंने समष्टि अर्थशास्त्र को आर्थिक सिद्धांत में एक विशिष्ट विधि के रूप में विकसित किया। इसलिए, व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र में संक्रमण की वास्तविक प्रक्रिया कीन्स की 'जनरल थ्योरी' **(General Theory)** के प्रकाशन के साथ शुरू हुई। यह संक्रमण अर्थशास्त्र की निम्नलिखित शाखाओं में हुआ है:

व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तियों और व्यक्तियों के छोटे समूहों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन है। इसमें विशेष परिवार, विशेष फर्में, विशेष उद्योग, विशेष वस्तुएं, व्यक्तिगत कीमतें, मजदूरी और आय शामिल हैं। इस प्रकार, व्यष्टि अर्थशास्त्र यह अध्ययन करता है कि संसाधनों को विशिष्ट वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए कैसे आवंटित किया जाता है और उन्हें कितनी कुशलता से वितरित किया जाता है। लेकिन व्यष्टि अर्थशास्त्र, अपने आप में, पूरी अर्थव्यवस्था के लिए संसाधनों के आवंटन की समस्या का अध्ययन नहीं करता है। यह भागों के अध्ययन से संबंधित है और पूरे को अनदेखा करता है। जैसा कि बाउल्डिंग ने बताया है**, "**आर्थिक प्रणाली जैसे तथ्यों के एक बड़े और जटिल ब्रह्मांड का वर्णन व्यक्तिगत वस्तुओं के संदर्भ में असंभव है।**"** इस प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन अर्थव्यवस्था की एक अपरिपर्ण तस्वीर प्रस्तुत करता है।

लेकिन ऑर्थोडॉक्स अर्थशास्त्री**,** जैसे पिगू**,** ने व्यष्टि आर्थिक विश्लेषण को अर्थव्यवस्था की समस्याओं पर लागू करने की कोशिश की। कीन्स ने इसके विपरीत सोचा और समष्टि अर्थशास्त्र की वकालत की जो पूरी अर्थव्यवस्था को कवर करने वाले समग्रों का अध्ययन है जैसे कुल रोजगार, कुल आय, कुल उत्पादन, कुल निवेश, कुल उपभोग, कुल बचत, समग्र आपूर्ति, समग्र मांग, और सामान्य मूल्य स्तर, मजदूरी स्तर तथा लागत संरचना। अर्थव्यवस्था के

सामने आने वाली समस्याओं को समझने के लिए, कीन्स ने समष्टि दृष्टिकोण को अपनाया और व्यष्टि से समष्टि में संक्रमण लाया।

रोजगार के संबंध में (Regarding Employment): व्यष्टि अर्थशास्त्र कुल रोजगार की मात्रा को **दिया गया (given)** मानता है और यह अध्ययन करता है कि इसे अर्थव्यवस्था के व्यक्तिगत क्षेत्रों में कैसे आवंटित किया जाता है। लेकिन **कीन्स ने संसाधनों, विशेषकर श्रम के पूर्ण रोजगार की धारणा को खारिज कर दिया।** समष्टि दृष्टिकोण से, उन्होंने पूर्ण रोजगार को एक **विशेष मामला** माना। सामान्य स्थिति **अल्प-रोजगार (underemployment)** की होती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में श्रम की **अनिवार्य बेरोजगारी (involuntary unemployment)** का अस्तित्व यह साबित करता है कि अल्प-रोजगार संतुलन एक सामान्य स्थिति है और पूर्ण रोजगार असामान्य और आकस्मिक है।

कीन्स ने पिगू के इस विचार का खंडन किया कि मंदी के दौरान मौद्रिक मजदूरी में कटौती बेरोजगारी को खत्म कर सकती है और अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार ला सकती है। पिगू के तर्क में यह गलती थी कि उन्होंने उन तर्कों को पूरी अर्थव्यवस्था तक बढ़ा दिया जो किसी विशेष उद्योग पर ही लागू होते थे। मौद्रिक मजदूरी दर में कमी एक उद्योग में उसकी उत्पादन लागत और उत्पाद की कीमत को कम करके रोजगार बढ़ा सकती है, जिससे उसकी मांग बढ़ जाती है। लेकिन पूरी अर्थव्यवस्था के लिए ऐसी नीति अपनाने से रोजगार में कमी आती है। जब अर्थव्यवस्था में सभी श्रमिकों की मौद्रिक मजदूरी कम हो जाती है, तो उनकी आय भी तदनुसार कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, समग्र मांग गिर जाती है जिससे पूरी अर्थव्यवस्था में रोजगार में गिरावट आती है।

मूल्य निर्धारण के संबंध में (Regarding Price Determination): व्यष्टि अर्थशास्त्र निरपेक्ष मूल्य स्तर को दिया गया (given) मानता है और वस्तुओं तथा सेवाओं के सापेक्ष मूल्यों (relative prices) से संबंधित होता है। चावल, चाय, दूध, पंखा, स्कूटर आदि जैसी किसी विशेष वस्तु की कीमत कैसे निर्धारित होती है? किसी विशेष प्रकार के श्रम की मजदूरी, किसी विशेष प्रकार की पूंजीगत संपत्ति पर ब्याज, किसी विशेष भूमि पर किराया, और एक व्यक्तिगत उद्यमी का लाभ कैसे निर्धारित होता है?

लेकिन एक अर्थव्यवस्था सापेक्ष मूल्यों से नहीं, बल्कि कीमतों के सामान्य स्तर **(general level of prices)** से संबंधित होती है। और कीमतों के सामान्य स्तर का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के दायरे में आता है। कीमतों के सामान्य स्तर में वृद्धि या गिरावट ही मुद्रास्फीति, और समृद्धि व मंदी को जन्म देती है। कीन्स की 'जनरल थ्योरी' के प्रकाशन से पहले, अर्थशास्त्री सापेक्ष मूल्यों के निर्धारण से संबंधित थे और मुद्रास्फीति तथा अपस्फीति या समृद्धि

और मंदी के कारणों को समझाने में विफल रहे। उन्होंने मूल्य स्तर में वृद्धि या गिरावट का कारण मुद्रा की मात्रा में वृद्धि या कमी को बताया। कीन्स ने, दूसरी ओर, दिखाया कि अपस्फीति और मंदी समग्र मांग की कमी के कारण हुई थी**,** और मुद्रास्फीति तथा समृद्धि समग्र मांग में वृद्धि के कारण हुई थी। इस प्रकार यह समग्र मांग में वृद्धि या गिरावट है जो कीमतों के सामान्य स्तर को प्रभावित करती है, न कि मुद्रा की मात्रा।

व्यापार चक्रों की व्याख्या (Explanation of Trade Cycles): इसके अलावा, व्यष्टि अर्थशास्त्र पूर्ण रोजगार की धारणा पर आधारित होने के कारण, यह व्यापार चक्रों की घटना की पर्याप्त व्याख्या प्रदान करने में विफल रहा। यह व्यावसायिक चक्रों के **मोड़ बिंदुओं (turning points)** की व्याख्या नहीं कर सका। पूर्ण रोजगार की अवास्तविक धारणा को त्यागकर, कीन्स और उनके अनुयायियों ने ऐसे मॉडल बनाए हैं जो न केवल चक्रीय उतार-चढ़ाव के पीछे निहित समष्टि आर्थिक शक्तियों की व्याख्या करते हैं, बल्कि चक्र के मोड़ बिंदुओं की भी व्याख्या करते हैं।

आर्थिक विकास की समस्या (Problem of Economic Growth): एक और कारक जिसने व्यष्टि अर्थशास्त्र से समष्टि अर्थशास्त्र में संक्रमण का मार्ग प्रशस्त किया है, वह है **अर्थव्यवस्था के विकास से संबंधित समस्याओं से निपटने में व्यष्टि अर्थशास्त्र की विफलता।** व्यष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत परिवार, फर्म या उद्योग के अध्ययन से संबंधित है। लेकिन जो सिद्धांत किसी विशेष परिवार, फर्म या उद्योग पर लागू होते हैं, वे पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू नहीं हो सकते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि व्यष्टि सिद्धांत में समूहन का स्तर समष्टि सिद्धांत से भिन्न होता है।

शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास की व्याख्या करते हुए व्यष्टि सिद्धांत को पूरी अर्थव्यवस्था पर लागू करने की मूर्खता की। उन्होंने आर्थिक विकास के लिए पूंजी निर्माण में बचत या मितव्ययिता के महत्व पर जोर दिया। लेकिन समष्टि सिद्धांत में**,** बचत एक निजी गुण है और एक सार्वजनिक दोष है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुल बचत में वृद्धि से कुल खपत और मांग में गिरावट आती है, जिससे अर्थव्यवस्था में रोजगार का स्तर कम हो जाता है। इसलिए, बेरोजगारी को दूर करने और आर्थिक विकास लाने के लिए बचत के बजाय कुल निवेश में वृद्धि की आवश्यकता होती है। आर्थिक विकास के लिए, हैरॉड और डोमर ने निवेश की दोहरी भूमिका पर जोर दिया है। पहला, यह समग्र आय में वृद्धि करता है, और दूसरा, यह अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता को बढ़ाता है।

अहस्तक्षेप नीति का त्याग (Discarding Laissez-Faire Policy): व्यष्टि अर्थशास्त्र सरकार के हस्तक्षेप के बिना एक स्व-समायोजन आर्थिक प्रणाली की अहस्तक्षेप नीति (laissez-faire policy) पर आधारित है। शास्त्रीय अर्थशास्त्री अहस्तक्षेप नीति के समर्थक थे। वे अर्थव्यवस्था की खराबी में स्वचालित समायोजन में विश्वास करते थे।

इसलिए, उन्हें अर्थव्यवस्था में विकृतियों को दूर करने के लिए न तो मौद्रिक नीति और न ही राजकोषीय नीति पर विश्वास था। वे संतुलित बजट की नीति में भी विश्वास करते थे।

कीन्स, जिन्होंने व्यष्टि से समष्टि सोच में संक्रमण लाया, ने अहस्तक्षेप की नीति को त्याग दिया। उनका मानना था कि ऐसी नीति जनहित में काम नहीं करती है और यह वही नीति थी जिसके कारण 1930 के दशक की महामंदी हुई थी। इसलिए, उन्होंने राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन किया और क्रमशः अपस्फीति के दौरान घाटे के बजट **(deficit budgets)** और मुद्रास्फीति के दौरान अधिशेष बजट **(surplus budgets)** के महत्व पर जोर दिया, साथ ही सस्ती मुद्रा (cheap money) और महंगी मुद्रा (dear money) नीतियों पर भी। कीनेसियन नीतिगत उपायों को दुनिया के पूंजीवादी देशों द्वारा प्रत्यक्ष नियंत्रणों के साथ अपनाया गया है।

1.12 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

1.12.1 सही विकल्प चुनिए

1. समष्टि अर्थशास्त्र मुख्यतः अध्ययन करता है—

A. व्यक्तिगत उपभोक्ताओं का व्यवहार

B. फर्मों की मूल्य निर्धारण रणनीति

C. संपूर्ण अर्थव्यवस्था के समग्र संकेतकों का

D. एकल बाजार में मांग और आपूर्ति का

2. निम्नलिखित में से कौन-सा विषय समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आता है**?**

A. किसी एक वस्तु की कीमत

B. एक फर्म का उत्पादन स्तर

C. राष्ट्रीय आय और रोजगार

D. उपभोक्ता की उपयोगिता

3. समष्टि अर्थशास्त्र की अवधारणा को प्रमुखता से प्रस्तुत करने वाले अर्थशास्त्री थे—

A. एडम स्मिथ

B. अल्फ्रेड मार्शल

C. पॉल सैमुअलसन

D. जॉन मेनार्ड कीन्स

4. समष्टि अर्थशास्त्र की प्रमुख विशेषता है—

A. मूल्य निर्धारण में लचीलापन

B. समष्टिगत इकाइयों का विश्लेषण

C. सीमित साधनों का व्यक्तिगत प्रयोग

D. बाजार संरचना का विश्लेषण

5. समष्टि अर्थशास्त्र में निम्नलिखित में से कौन-सा विश्लेषण नहीं किया जाता**?**

A. राष्ट्रीय आय

B. मुद्रास्फीति

C. बेरोजगारी

D. एक फर्म का लाभ

1.12.2 सही या गलत बताइए

1. समष्टि अर्थशास्त्र केवल उपभोक्ताओं और फर्मों के व्यक्तिगत निर्णयों का अध्ययन करता है।
2. समष्टि अर्थशास्त्र एक समष्टिगत दृष्टिकोण अपनाकर अर्थव्यवस्था को पूर्ण रूप से देखने का प्रयास करता है।
3. समष्टि अर्थशास्त्र में केवल सैद्धांतिक विश्लेषण होता है, व्यावहारिक नीतियाँ नहीं बनतीं।
4. समष्टि विश्लेषण में राष्ट्रीय आय, निवेश, उपभोग और मुद्रा आपूर्ति जैसे विषय शामिल होते हैं।
5. समष्टि अर्थशास्त्र सूक्ष्म आर्थिक इकाइयों जैसे कि एकल उपभोक्ता या एक फर्म के व्यवहार की व्याख्या करता है।

1.13 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने समष्टि अर्थशास्त्र की मूल अवधारणाओं का अध्ययन किया। समष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था के समग्र (aggregate) पक्ष का विश्लेषण करता है, जिसमें राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद, बेरोज़गारी, मुद्रास्फीति, निवेश, बचत, उपभोग, मुद्रा आपूर्ति तथा समष्टि आर्थिक नीतियाँ सम्मिलित होती हैं।

समष्टि अर्थशास्त्र का उद्देश्य सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन को समझना और आर्थिक अस्थिरताओं जैसे चक्रवातों, मंदी, और उच्च मुद्रास्फीति की व्याख्या करना होता है। इसने पारंपरिक सूक्ष्म अर्थशास्त्र की सीमाओं को चुनौती दी और आर्थिक विश्लेषण को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया।

समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति समष्टिगत इकाइयों के अध्ययन, राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर समस्याओं के समाधान, और व्यावहारिक नीतियों के निर्माण में परिलक्षित होती है। यह क्षेत्र सरकारों और नीति-निर्माताओं को अर्थव्यवस्था को स्थिर करने तथा विकास को बढ़ावा देने के लिए सशक्त उपकरण उपलब्ध कराता है।

यह अध्याय समष्टि अर्थशास्त्र की परिभाषा, विशेषताएँ, महत्व तथा अध्ययन क्षेत्र की स्पष्ट समझ प्रदान करता है, जो विद्यार्थियों के लिए आगामी अध्यायों के अध्ययन की आधारशिला सिद्ध होगी।

1.14 सूचक शब्द (Keywords)

1. **समष्टि अर्थशास्त्र (Macroeconomics)**

   यह अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो संपूर्ण अर्थव्यवस्था के समग्र पहलुओं जैसे राष्ट्रीय आय, बेरोज़गारी, मुद्रास्फीति आदि का अध्ययन करती है। इसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के व्यवहार और निष्कर्षों को समग्र रूप में समझना होता है।

2. **राष्ट्रीय आय (National Income)**

   किसी देश की एक निश्चित अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) के दौरान सभी उत्पादक कारकों द्वारा उत्पन्न कुल आय को राष्ट्रीय आय कहते हैं। यह किसी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति का महत्वपूर्ण संकेतक है।

3. **मुद्रास्फीति (Inflation)**

   जब किसी अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य मूल्य स्तर में निरंतर वृद्धि होती है, तो उसे मुद्रास्फीति कहा जाता है। इससे मुद्रा की क्रय शक्ति घटती है।

4. **बेरोज़गारी (Unemployment)**

   वह स्थिति जब काम करने की इच्छा और योग्यता रखने वाले व्यक्ति को काम नहीं मिल पाता, बेरोज़गारी कहलाती है। यह किसी देश की आर्थिक समस्याओं में प्रमुख स्थान रखती है।

5. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)**

सरकार द्वारा सार्वजनिक व्यय और कराधान के माध्यम से आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करने की प्रक्रिया को राजकोषीय नीति कहा जाता है। यह आर्थिक स्थिरता और विकास के लिए महत्त्वपूर्ण नीति उपकरण है।

1.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions-SAQs)

1. समष्टि अर्थशास्त्र क्या है? इसके प्रमुख अध्ययन क्षेत्र कौन-कौन से हैं?
2. समष्टि और व्यष्टि अर्थशास्त्र के बीच क्या अंतर है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. जॉन मेनार्ड कीन्स का समष्टि अर्थशास्त्र में क्या योगदान रहा है?
4. समष्टि दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आय और मुद्रास्फीति का आपस में क्या संबंध है?
5. समष्टि अर्थशास्त्र की प्रकृति और उसकी उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए।

1.16 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

1.12.1 => सही **उत्तर**: **1.** C. संपूर्ण अर्थव्यवस्था के समग्र संकेतकों का, **2.** C. राष्ट्रीय आय और रोजगार, **3.** D. जॉन मेनार्ड कीन्स, **4.** B. समष्टिगत इकाइयों का विश्लेषण, **5.** D. एक फर्म का लाभ। 1.12.2 => सही **उत्तर**: 1. **गलत**, 2. **सही**, 3. **गलत**, 4. **सही**, 5. **गलत**।

1.17 संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

1. Ackley, G. – *Macroeconomics: Theory and Policy*, Macmillan Publishing
2. Dornbusch, R., Fischer, S. and Startz, R. – *Macroeconomics*, McGraw Hill
3. Branson, W. A. – *Macroeconomic Theory and Policy*, Harper & Row
4. Jhingan, M.L. – *Samasti Arthashastra (समष्टि अर्थशास्त्र)*, Vrinda Publications, Delhi
5. Ahuja, H.L. – *Modern Economics*, S. Chand & Co., New Delhi
6. Keynes, J.M. – *The General Theory of Employment, Interest and Money*, Harcourt Brace

विषय: अर्थशास्त्र (समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत I)	
विषय क्रमांक: बीए BECO-301	लेखक: डॉ. सोमनाथ परूथी
अध्याय: 2	वेट्टर:
राष्ट्रीय आय की अवधारणा, मापन की विधियाँ और चक्रीय आय प्रवाह (तीन एवं चार क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में)	

अध्याय की संरचना (Structure of the Chapter)

2.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.3 राष्ट्रीय आय लेखांकन**:** उत्पादन**,** आय और व्यय का मापन *(National Income Accounting: The Measurement of Production, Income, and Expenditure)*

2.3.1 **तीनों दृष्टिकोण समतुल्य क्यों हैं** (Why the Three Approaches Are Equivalent?)

2.3.2 सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product):

2.3.2.1 **जीडीपी को मापने के लिए उत्पाद दृष्टिकोण** (The Product Approach to Measuring GDP):

2.3.2.2 **जीडीपी को मापने के लिए व्यय दृष्टिकोण** (The Expenditure Approach to Measuring GDP)

2.3.2.3 **जीडीपी को मापने के लिए आय दृष्टिकोण** (The Income Approach to Measuring GDP)

2.3.3 राष्ट्रीय बचत (National Saving)

2.3.3.1 **निजी बचत का उपयोग** (Uses of Private Saving)

2.3.3.2 **बचत और धन का संबंध** (Saving and Wealth)

2.4 **राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ** (Concepts of National Income)

2.5 **राष्ट्रीय आय और व्यय का चक्रीय प्रवाह** (Circular Flow of National Income and Expenditure)

2.5.1 **दो-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह** (**Circular Flow in a Two-Sector Closed Economy**)

2.5.2 तीन-क्षेत्रीय बंद अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह (**Circular Flow in a Three-Sector Closed Economy**)

2.5.3 विदेशी क्षेत्र को जोड़ना: चार-क्षेत्रीय खुली अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह (**Adding Foreign Sector: Circular Flow in a Four-Sector Open Economy**)

2.5.4 आय के चक्रीय प्रवाह का महत्व (Importance of the Circular Flow of Income)

2.6 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

2.7 सारांश **(Summary)**

2.8 सूचक शब्द **(Keywords)**

2.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assessment Questions-SAQs)**

2.10 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

2.11 संदर्भ ग्रंथ **/** निर्देशित पुस्तकें **(References / Suggested Readings)**

2.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय को पढ़ने के बाद विद्यार्थी:

- राष्ट्रीय आय की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- उत्पादन, आय और व्यय दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आय को मापने की विधियों को समझ सकेंगे।
- जीडीपी की विभिन्न मापन विधियों को परख सकेंगे।
- निजी एवं राष्ट्रीय बचत की अवधारणा और उसका महत्त्व समझ सकेंगे।
- विभिन्न क्षेत्रों वाली अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

समष्टि अर्थशास्त्र संपूर्ण अर्थव्यवस्था के व्यापक संकेतकों—जैसे राष्ट्रीय आय, निवेश, उपभोग, मुद्रास्फीति व रोजगार—का अध्ययन करता है और नीति-निर्धारण का आधार है। इसे व्यावहारिक रूप से समझने के लिए राष्ट्रीय आय का मापन आवश्यक है, जो आर्थिक प्रदर्शन तथा नीतियों के निर्माण में मार्गदर्शक है।

राष्ट्रीय आय का मापन तीन दृष्टिकोणों से किया जाता है—उत्पादन, व्यय और आय दृष्टिकोण—जो मूलतः समतुल्य हैं। इस अध्याय में GDP, GNP, NDP, व्यक्तिगत आय, बचत, निवेश और राष्ट्रीय बचत जैसी अवधारणाओं का अध्ययन होगा। साथ ही, चक्रीय आय प्रवाह को दो-क्षेत्रीय, तीन-क्षेत्रीय और चार-क्षेत्रीय मॉडल के माध्यम से समझाया जाएगा। बीसवीं सदी में साइमन कुज़नेट्स (राष्ट्रीय उत्पादन मापन), आर्थर बर्न्स और वेस्ले मिशेल (व्यावसायिक चक्र मापन) जैसे अर्थशास्त्रियों ने सिद्ध किया कि सटीक आर्थिक मापन संभव और अनिवार्य है। इनके प्रयासों से अर्थशास्त्र मात्रात्मक और सांख्यिकीय विज्ञान के रूप में विकसित हुआ। राष्ट्रीय आय लेखांकन (National Income Accounts) एक ढांचा प्रदान करता है, जिससे उत्पादन, आय और व्यय का मात्रात्मक विश्लेषण किया जाता है। यह न केवल शोधकर्ताओं बल्कि नीति-निर्माताओं और सरकारों के लिए भी उपयोगी है। इस अध्याय का उद्देश्य यह समझना है कि राष्ट्रीय आय खातों के माध्यम से प्रमुख आर्थिक चर और क्षेत्रों के आपसी संबंध कैसे उजागर होते हैं, जिससे आँकड़ों के पीछे की आर्थिक कहानी स्पष्ट होती है।

2.3 राष्ट्रीय आय लेखांकन: उत्पादन, आय और व्यय का मापन *(National Income Accounting: The Measurement of Production, Income, and Expenditure)*

जब हम किसी देश की आर्थिक गतिविधि को मापना चाहते हैं — यानी यह जानना चाहते हैं कि अर्थव्यवस्था एक निश्चित समय अवधि में कितना उत्पादन कर रही है, कितना व्यय हो रहा है, और लोगों को कितनी आय मिल रही है, तो उसके लिए एक विशेष ढाँचे की ज़रूरत होती है। यही ढाँचा है राष्ट्रीय आय लेखांकन **(National Income Accounting)**। लगभग हर देश के पास अब अपने आधिकारिक राष्ट्रीय आय खाते होते हैं, जो इस बात का ब्यौरा देते हैं कि देश में क्या और कितना उत्पादन हो रहा है, किसे कितनी आय मिल रही है, और किन वस्तुओं व सेवाओं पर कितना व्यय हो रहा है। इन खातों के पीछे एक बहुत सरल परंतु शक्तिशाली विचार है —

एक ही आर्थिक गतिविधि को तीन तरीकों से मापा जा सकता है**:**

1. उत्पादन के आधार पर **(The Product Approach)**

2. आय के आधार पर **(The Income Approach)**
3. व्यय के आधार पर **(The Expenditure Approach)**

इन तीनों दृष्टिकोणों से भले ही हम अलग-अलग तरीके अपनाएं, लेकिन एक मजबूत धारणा है कि अगर सारा डेटा सही और पूरा हो, तो इन तीनों तरीकों से मिलने वाला परिणाम समान होता है।

अब इस विचार को और बेहतर समझने के लिए हम एक सरल उदाहरण लेते हैं:

OrangeIndia Transactions Pvt. Ltd.	Dollar
Wages paid to OrangeIndia Transactions Pvt. Ltd. employees	15,000
Taxes paid to government	5000
Revenue received from sale of oranges	35000
Oranges sold to public	10000
Oranges sold to JuiceIndia	25000
JuiceIndia Transactions Pvt. Ltd.	
Wages paid to JuiceIndia Transactions Pvt. Ltd. employees	10000
Taxes paid to government	2000
Oranges purchased from OrangeIndia Transactions Pvt. Ltd.	25000
Revenue received from sale of orange juice	40000

कल्पना कीजिए एक छोटी सी अर्थव्यवस्था*, जिसमें केवल दो कंपनियाँ हैं:*

- **OrangeIndia Transactions Pvt. Ltd.** — जो संतरे उगाती और बेचती है,
- **JuiceIndia Transactions Pvt. Ltd.** — जो संतरे खरीदकर संतरे का रस बनाती और बेचती है।

ऑरेंजइंडिया **(OrangeIndia)** अपने कुछ संतरे सीधे घरों/ ग्राहकों को $10,000 में बेचती है और बाकी जूसइंडिया **(JuiceIndia)** को $25,000 में। इसके लिए वह अपने मज़दूरों को सालाना $15,000 मजदूरी देती है।

उसका कुल राजस्व $35,000 और कर-पूर्व लाभ $20,000 (यानी $35,000 - $15,000) है। वह $5,000 टैक्स चुकाती है, इसलिए कर-पश्चात लाभ $15,000 है।

जूसइंडिया **(JuiceIndia)** वह संतरे $25,000 में खरीदती है, $10,000 की मजदूरी देती है, और फिर रस को $40,000 में बेचती है। उसका कर-पूर्व लाभ $5,000 है और टैक्स चुकाने के बाद कर-पश्चात लाभ $3,000 है।

अब सवाल यह है कि इस छोटी अर्थव्यवस्था में कुल आर्थिक गतिविधि का मूल्य क्या है? आइए इसे तीन दृष्टिकोणों से मापते हैं:

1. **उत्पाद दृष्टिकोण (The Product Approach)**

यह दृष्टिकोण हमें बताता है कि किसी भी उत्पादक ने कितना मूल्य वर्धित **(Value Added)** किया है — यानी उसने जो उत्पादन किया, उसमें से उसने दूसरों से जो इनपुट खरीदे थे, उनका मूल्य घटा दिया जाए।

- ऑरेंजइंडिया **(OrangeIndia)** ने $35,000 का उत्पादन किया और उसने कोई इनपुट बाहर से नहीं खरीदे, इसलिए उसका मूल्य वर्धित = **$35,000**
- जूसइंडिया **(JuiceIndia)** ने $40,000 में रस बेचा, लेकिन $25,000 में संतरे खरीदे थे, इसलिए उसका मूल्य वर्धित = **$15,000**

➡ कुल मूल्य वर्धित = $35,000 + $15,000 = **$50,000**

यह है हमारी अर्थव्यवस्था की कुल गतिविधि का मूल्य।

2. **आय दृष्टिकोण (The Income Approach)**

अब हम वही मूल्य इस नजरिए से मापते हैं कि सारी आर्थिक गतिविधियों से किसे कितनी आय मिली:

- ऑरेंजइंडिया **(OrangeIndia)** ने $15,000 की मजदूरी दी और $20,000 का लाभ कमाया (कर-पूर्व)
- जूसइंडिया **(JuiceIndia)** ने $10,000 की मजदूरी दी और $5,000 का लाभ कमाया (कर-पूर्व)
- ➡ कुल आय = मजदूरी + लाभ
- मजदूरी ($15,000 + $10,000 = $25,000)
- लाभ ($20,000 +$5,000 = $25,000)

➡ कुल आय = मजदूरी ($25,000) + लाभ ($25,000) = **$50,000**

या फिर इसे आप कर-पश्चात लाभ + मजदूरी + टैक्स के रूप में भी लिख सकते हैं:

- लाभ = $15,000 + $3,000 = $18,000
- टैक्स = $5,000 + $2,000 = $7,000
- मजदूरी = $25,000

  ➡ कुल = $18,000 + $25,000 + $7,000 = **$50,000**

फिर से वही आंकड़ा मिला — यह दिखाता है कि आय **दृष्टिकोण** भी वही परिणाम देता है।

3. **व्यय दृष्टिकोण (The Expenditure Approach)**

अब इस नजरिए से सोचिए कि ग्राहकों **(consumers)** ने क्या-क्या खरीदा:

- उन्होंने ऑरेंजइंडिया **(OrangeIndia)** से सीधे $10,000 के संतरे खरीदे,
- और जूसइंडिया **(JuiceIndia)** से $40,000 का रस।

➡ कुल व्यय = $10,000 + $40,000 = **$50,000**

ध्यान रहे, **JuiceIndia** द्वारा खरीदे गए संतरे इंटरमीडिएट गुड्स हैं**, जो रस बनाने में उपयोग हुए हैं। इसलिए उन्हें नहीं गिनना है — नहीं तो दोहरी गिनती **(double counting)** हो जाएगी।

निष्कर्ष: तीनों दृष्टिकोण —**उत्पाद**, **आय**, और **व्यय**, हमें एक ही उत्तर तक ले जाते हैं — **$50,000**। और यही है **राष्ट्रीय आय लेखांकन की मूल भावना**। यह न केवल आर्थिक गतिविधियों को समझने का ज़रिया है, बल्कि यह **नीतियों की दिशा तय करने**, **विकास को ट्रैक करने**, और **अर्थव्यवस्था की संरचना को समझने** में भी बेहद मददगार है।

2.3.1 तीनों दृष्टिकोण समतुल्य क्यों हैं (Why the Three Approaches Are Equivalent?)

अब आपके मन में यह सवाल आ सकता है कि आख़िर ये तीनों दृष्टिकोण — **उत्पाद दृष्टिकोण** (Product Approach), **आय दृष्टिकोण** (Income Approach), और **व्यय दृष्टिकोण** (Expenditure Approach) — हर बार एक ही उत्तर क्यों देते हैं? क्या ये कोई संयोग है?

नहीं! यह बिलकुल भी संयोग नहीं है। इसके पीछे मजबूत तार्किक आधार है, और जब आप उस तर्क को समझ लेते हैं, तो आपको यह पहचान (identity) एकदम स्वाभाविक लगेगी।

पहला बिंदु: उत्पाद और व्यय दृष्टिकोण एक जैसे क्यों हैं?

जब भी किसी अर्थव्यवस्था में कोई वस्तु या सेवा तैयार की जाती है, तो उसका एक **बाजार मूल्य** (market value) होता है — यानी, वह कीमत जो लोग उसे खरीदने के लिए चुकाते हैं।

उदाहरण के लिए, जूसइंडिया ट्रांजैक्शंस प्राइवेट लिमिटेड के द्वारा बनाए गए संतरे के रस का मूल्य $40,000 है, **केवल इसलिए** क्योंकि उपभोक्ता उसे खरीदने के लिए तैयार हैं। मतलब यह कि:

जो उत्पादन हुआ है, उसका मूल्य = उस पर किया गया कुल खर्च।

तो अगर आप पूरे अर्थव्यवस्था में जितना उत्पादन हुआ है, उसका बाजार मूल्य जोड़ लें (उत्पाद दृष्टिकोण), या फिर यह देखें कि उपभोक्ताओं ने उस उत्पादन को खरीदने के लिए कितना खर्च किया (व्यय दृष्टिकोण) दोनों ही मामलों में आपको **समान उत्तर** मिलेगा। इसीलिए ये दोनों दृष्टिकोण स्वाभाविक रूप से बराबर होते हैं।

दूसरा बिंदु: व्यय और आय दृष्टिकोण एक जैसे क्यों हैं?

अब थोड़ा और गहराई से सोचें — जब कोई उपभोक्ता खर्च करता है, तो वह राशि जाती कहाँ है?

वह राशि उस उत्पाद को बेचने वाली फर्म के पास जाती है। और फिर वह फर्म उस राशि को इस प्रकार बाँटती है:

- श्रमिकों को **मजदूरी** के रूप में,
- पूंजीपतियों या मालिकों को **लाभ** के रूप में,
- सरकार को **कर** के रूप में।

तो जो खर्च हुआ (व्यय), वही किसी न किसी रूप में **किसी की आय** बन जाता है।

मतलब यह कि **व्यय = आय**, क्योंकि खरीदार का खर्च किसी न किसी विक्रेता की आय होती है।

इसलिए व्यय दृष्टिकोण और आय दृष्टिकोण भी एक जैसे परिणाम देंगे।

तीसरा बिंदु: उत्पाद और आय दृष्टिकोण क्यों बराबर हैं?

चूँकि हमने ऊपर देखा कि:

- **उत्पाद** = **व्यय**, और
- **व्यय** = **आय**, तो

उत्पाद = **आय** भी हो गया।

निष्कर्ष: **तीनों दृष्टिकोण क्यों एक जैसे होते हैं**?

इस तर्क श्रृंखला से हम यह साफ़ देख सकते हैं कि:

उत्पादन = **व्यय** = **आय**

और यही है राष्ट्रीय आय लेखांकन की **मूलभूत पहचान** (Fundamental Identity of National Income Accounting)। इसे हम इस रूप में लिखते हैं:

$$Total\ Production = Total\ Income = Total\ Expenditure \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (2.1)$$

यह पहचान हमेशा सत्य होती है, **परिभाषा के अनुसार।** इसे पहचान (identity) इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह कोई अनुमान या आकलन नहीं, बल्कि तर्क द्वारा सिद्ध किया गया सत्य है।

महत्वपूर्ण बात: जब हम आगे चलकर राष्ट्रीय आय खातों को समझेंगे, तो यही पहचान हमारी आधारशिला बनेगी। इस पहचान को समझना, समष्टि अर्थशास्त्र की समझ की ओर पहला ठोस कदम है।

2.3.2 सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product)

समग्र आर्थिक गतिविधि (aggregate economic activity) को मापने का सबसे व्यापक, प्रसिद्ध और सामान्यतः उपयोग किया जाने वाला तरीका सकल घरेलू उत्पाद या जीडीपी (Gross Domestic Product, GDP) है। जैसा कि हमने पिछले अनुभाग 2.3.1 में देखा, किसी देश के जीडीपी को तीन दृष्टिकोणों से मापा जा सकता है: उत्पाद दृष्टिकोण (product approach), व्यय दृष्टिकोण (expenditure approach), और आय दृष्टिकोण (income approach)। हालांकि तीनों दृष्टिकोण अंततः समान जीडीपी आंकड़े पर पहुंचते हैं, लेकिन हर दृष्टिकोण आर्थिक गतिविधि को अलग तरीके से देखता है। इन सभी दृष्टिकोणों का उपयोग करने से अर्थव्यवस्था की संरचना का ज्यादा समग्र और विस्तृत चित्र सामने आता है, जो कि किसी एक दृष्टिकोण से संभव नहीं है।

2.3.2.1 जीडीपी को मापने के लिए उत्पाद दृष्टिकोण (The Product Approach to Measuring

GDP)

उत्पाद दृष्टिकोण के अनुसार, किसी राष्ट्र के जीडीपी को एक निश्चित समयावधि में देश की सीमाओं के भीतर उत्पादित नई अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के बाजार मूल्य के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस परिभाषा के विभिन्न पहलुओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए हमें कुछ व्यावहारिक समस्याओं और उनके समाधानों पर भी ध्यान देना होगा।

बाजार मूल्य (Market Value): जीडीपी में वस्तुओं और सेवाओं को उनके बाजार मूल्य पर गिना जाता है, अर्थात् वे कीमतें जिन पर वे बेची जाती हैं। बाजार मूल्य का उपयोग करने से विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को एक ही इकाई (जैसे डॉलर) में जोड़ना संभव हो जाता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि कोई अर्थव्यवस्था 7 कारों और 100 जोड़ी जूतों का उत्पादन करती है। केवल संख्याएं जोड़कर 107 बताना अर्थहीन होगा क्योंकि कार और जूतों का मूल्य अलग-अलग होता है। यदि एक कार $20,000 में बिकती है और एक जोड़ी जूते $60 में, तो 7 कारों का कुल मूल्य $140,000 और 100 जोड़ी जूतों का मूल्य $6,000 होगा। इस प्रकार, कुल उत्पादन का बाजार मूल्य या जीडीपी $146,000 होगा। यह तरीका उत्पादन के सापेक्ष महत्व को बेहतर तरीके से मापने में मदद करता है।

हालांकि, बाजार मूल्य आधारित मापन की एक सीमा यह है कि कुछ उपयोगी वस्तुएं और सेवाएं बाजार में बेची ही नहीं जातीं, जैसे घर के अंदर बिना वेतन के किया गया काम या बच्चों की देखभाल। इनका कोई बाजार मूल्य नहीं होता, इसलिए इन्हें जीडीपी में शामिल नहीं किया जाता। इसी प्रकार, स्वच्छ हवा और पानी जैसे पर्यावरणीय संसाधनों के सुधार में लगे प्रयास भी आम तौर पर जीडीपी में नहीं आते, क्योंकि उनका कोई स्पष्ट बाजार मूल्य नहीं होता।

कुछ गैर-बाजार गतिविधियाँ जैसे भूमिगत अर्थव्यवस्था (underground economy) आंशिक रूप से जीडीपी मापन में शामिल की जाती हैं। इसमें वे कानूनी और अवैध दोनों प्रकार की गतिविधियां शामिल होती हैं जो सरकार के रिकॉर्ड से बाहर होती हैं — जैसे नकद भुगतान वाली सेवाएं, कर चोरी, नशीली दवाओं का व्यापार, और अवैध जुआ आदि। सरकारी सांख्यिकी एजेंसियां सीमित जानकारी के आधार पर इनमें से कुछ का अनुमान लगाकर जीडीपी आंकड़ों में आंशिक समायोजन करती हैं।

सरकारी सेवाओं का योगदान: चूंकि सरकारी सेवाएं जैसे रक्षा, शिक्षा, और बुनियादी ढांचे का निर्माण

सामान्यतः बाजारों में नहीं बेचे जाते हैं, इसलिए इनके लिए बाजार मूल्य नहीं होते। ऐसे में जीडीपी में इन्हें शामिल करने के लिए उनकी लागत (जैसे वेतन, निर्माण लागत आदि) को ही उनके योगदान के रूप में गिना जाता है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय रक्षा का जीडीपी में योगदान उस पर सरकार का कुल खर्च होता है।

नई उत्पादित वस्तुएं और सेवाएं (Newly Produced Goods and Services): जीडीपी में केवल वर्तमान अवधि के भीतर उत्पादित वस्तुएं और सेवाएं ही गिनी जाती हैं। किसी पुराने घर को बेचना, भले ही उसमें कीमत दी जा रही हो, जीडीपी में शामिल नहीं होता, क्योंकि वह घर पूर्व में निर्मित हो चुका था। हालांकि, उस बिक्री में शामिल रियल एस्टेट एजेंट की वर्तमान सेवा जीडीपी में शामिल होती है।

अंतिम बनाम मध्यवर्ती वस्तुएं (Final vs. Intermediate Goods): केवल अंतिम वस्तुएं और सेवाएं ही जीडीपी में गिनी जाती हैं। मध्यवर्ती वस्तुएं वे होती हैं जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन में इस्तेमाल की जाती हैं और उसी अवधि में उपभोग हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, एक बेकर के लिए आटा एक मध्यवर्ती वस्तु है। वहीं, बेकरी की रोटी अंतिम वस्तु है। पूंजीगत वस्तुएं (जैसे मशीन, फैक्टरी) जो लंबे समय तक इस्तेमाल होती हैं, उन्हें अंतिम वस्तु माना जाता है।

इन्वेंट्री निवेश (Inventory Investment) भी इसी श्रेणी में आता है। यदि किसी वर्ष में किसी फर्म की इन्वेंट्री में वृद्धि होती है, तो वह पूंजी निर्माण माना जाता है और अंतिम वस्तु के रूप में जीडीपी में गिना जाता है।

वर्धित मूल्य (Value Added): प्रत्येक फर्म के स्तर पर उत्पादन का मूल्य घटा (minus) मध्यवर्ती इनपुट के मूल्य को वर्धित मूल्य कहते हैं। जब सभी फर्मों का वर्धित मूल्य जोड़ दिया जाता है, तो हमें कुल आर्थिक गतिविधि या जीडीपी प्राप्त होती है। इससे मध्यवर्ती वस्तुओं की दोहराव से बचा जा सकता है।

जीएनपी बनाम जीडीपी (GNP Versus GDP): 1991 से पहले अमेरिका सहित कई देशों में आर्थिक गतिविधि को मापने के लिए GNP (Gross National Product) का अधिक उपयोग होता था। बाद में अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप जीडीपी को प्राथमिक माप के रूप में अपनाया गया।

GNP और GDP में मुख्य अंतर यह है कि GNP में देश के निवासियों द्वारा विदेशों में अर्जित आय शामिल होती है जबकि GDP में केवल देश की सीमाओं के भीतर उत्पन्न आय शामिल होती है। उदाहरण के लिए, अगर कोई अमेरिकी कंपनी सऊदी अरब में सड़कें बनाती है, तो उससे होने वाली आय अमेरिकी GNP में तो आएगी, लेकिन GDP में नहीं, क्योंकि उत्पादन विदेश में हुआ है। वहीं, अमेरिका में किसी जापानी कंपनी द्वारा बनाई गई कारों की

आय अमेरिकी GDP में तो होगी, लेकिन GNP में नहीं, क्योंकि वह आय जापान की है।

इस अंतर को मापने के लिए एक और संकल्पना प्रयोग की जाती है: विदेश से शुद्ध साधन भुगतान (Net Factor Payments from Abroad - NFP)। इसे इस प्रकार परिभाषित किया जाता है: विदेशों में घरेलू साधनों द्वारा अर्जित आय घटा (minus) देश में विदेशी कारकों को दी गई आय। इस आधार पर जीडीपी और जीएनपी का संबंध इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:

GDP = GNP - NFP ..... (2.2)

संयुक्त राज्य अमेरिका में GNP और GDP के आंकड़े करीब-करीब समान होते हैं। उदाहरण के लिए, 2011 में अमेरिकी GDP $15,076 बिलियन थी जबकि GNP $15,328 बिलियन, जो लगभग 2% का अंतर है। लेकिन मिस्र और तुर्की जैसे देशों में, जिनके नागरिक बड़ी संख्या में विदेशों में काम करते हैं, यह अंतर अधिक हो सकता है। क्योंकि उनकी विदेश में अर्जित आय उनके देश के GNP में शामिल होती है लेकिन GDP में नहीं।

2.3.2.2 जीडीपी को मापने के लिए व्यय दृष्टिकोण (The Expenditure Approach to Measuring GDP)

जब हम किसी देश की कुल आर्थिक गतिविधियों को समझना चाहते हैं, तो हमें उसकी GDP को ठीक से मापना होता है। इसके लिए कई दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं, और उनमें से एक बहुत ही महत्वपूर्ण और व्यवहार में सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाला तरीका है — **व्यय दृष्टिकोण** (Expenditure Approach)।

इस दृष्टिकोण में हम GDP को इस रूप में देखते हैं कि **एक निर्धारित अवधि के दौरान देश की सीमाओं के भीतर उत्पादित अंतिम वस्तुओं और सेवाओं पर कुल खर्च कितना हुआ**। कहने का मतलब ये है कि जितनी वस्तुएं और सेवाएं बनीं, उन पर देश में और देश के बाहर (विदेशियों द्वारा खरीदी गई वस्तुओं के माध्यम से) कितना खर्च हुआ – यही GDP है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार GDP को मापने के लिए **चार प्रमुख श्रेणियों के खर्च को जोड़ा जाता है** –

1. **उपभोग** (Consumption)
2. **निवेश** (Investment)
3. **सरकारी खरीद** (Government Purchases)

4. **शुद्ध निर्यात** (Net Exports=Exports-Imports)

इन सबको हम नीचे दिए गए सूत्र के रूप में लिख सकते हैं:

$$Y = C + I + G + NX \text{.....(2.3)}$$

जहाँ, Y = GDP = कुल उत्पादन = कुल आय = कुल व्यय

C = उपभोग, I = निवेश, G = सरकारी वस्तु व सेवा खरीद, NX = शुद्ध निर्यात (निर्यात – आयात)

यह समीकरण समष्टि अर्थशास्त्र में एक **मूलभूत पहचान** (identity) कहलाता है, जिसे **आय-व्यय पहचान** (income–expenditure identity) भी कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि अर्थव्यवस्था की कुल आय हमेशा उसके कुल व्यय के बराबर होती है। इसका सीधा सा तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी उत्पादित होता है, उस पर कोई न कोई खर्च करता है।

1. **उपभोग** (Consumption)

GDP में सबसे बड़ा हिस्सा **घरेलू परिवारों द्वारा अंतिम वस्तुओं और सेवाओं पर किया गया खर्च** होता है, जिसे हम उपभोग कहते हैं। इसमें ऐसी वस्तुएं भी शामिल होती हैं जो विदेशों में बनी हों लेकिन घरेलू उपभोक्ताओं ने खरीदी हों। अमेरिका जैसे देशों में उपभोग आमतौर पर GDP का **दो-तिहाई से भी अधिक हिस्सा** होता है।

उपभोग को तीन प्रमुख श्रेणियों में बांटा गया है:

- (i) **टिकाऊ वस्तुएं** (Consumer Durables): ये वे वस्तुएं होती हैं जो कई वर्षों तक चलती हैं, जैसे – कार, टीवी, फ्रिज, वॉशिंग मशीन, फर्नीचर आदि।
- (ii) **गैर-टिकाऊ वस्तुएं** (Nondurable Goods): ये कम समय तक चलती हैं, जैसे – खाने-पीने का सामान, कपड़े, तेल या ईंधन।
- (iii) **सेवाएं** (Services): जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, बैंकिंग सेवाएं, परिवहन आदि। आज के समय में सेवाएं उपभोग का सबसे बड़ा भाग बनती जा रही हैं।

2. **निवेश** (Investment)

निवेश का मतलब होता है वर्तमान में खर्च करके भविष्य के लिए उत्पादन क्षमता बढ़ाना। यह खर्च दो भागों में होता है –

1. **स्थिर निवेश** (Fixed Investment)
2. **इन्वेंट्री निवेश** (Inventory Investment)

स्थिर निवेश में दो मुख्य भाग आते हैं:

(i) **व्यापारिक स्थिर निवेश** (Business Fixed Investment): इसमें व्यवसायों द्वारा भवन, कारखाने, गोदाम, मशीनें, कंप्यूटर, वाहन और सॉफ़्टवेयर आदि पर किया गया खर्च आता है।

(ii) **आवासीय निवेश** (Residential Investment): इसमें घरों और अपार्टमेंट का निर्माण शामिल है। ये घर "पूंजीगत वस्तुएं" मानी जाती हैं क्योंकि वे लंबे समय तक सेवा देती हैं (आश्रय के रूप में)।

ध्यान दें कि **निवेश में विदेशी उत्पादों पर खर्च भी शामिल होता है**, अगर वे घरेलू फर्मों या व्यक्तियों द्वारा खरीदे गए हों।

इन्वेंट्री निवेश का मतलब है किसी फर्म के पास **बिकने के लिए रखी गई वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि**। अगर कोई वस्तु बनाई गई है लेकिन अभी नहीं बिकी है, तो वह वस्तु भी GDP में गिनी जाएगी, क्योंकि उसका उत्पादन हो चुका है। यह इस विचार पर आधारित है कि फर्म ने वो वस्तु खुद से "खरीद" ली है। इस तरह, **राष्ट्रीय आय खातों में हमेशा उत्पादन और व्यय बराबर रहते हैं**, क्योंकि हर उत्पादन या तो किसी उपभोक्ता द्वारा खरीदा गया है या फर्म द्वारा स्टोर किया गया है।

3. **सरकारी खरीद** (Government Purchases)

सरकारी खरीद में सरकार द्वारा की गई **वर्तमान वस्तुओं और सेवाओं की खरीद** शामिल होती है – चाहे वे घरेलू हों या विदेशी। अमेरिका जैसे देश में, यह GDP का लगभग **एक-पांचवां हिस्सा** होता है। यहाँ यह भी ध्यान देने की जरूरत है कि अमेरिका में अधिकांश सरकारी खरीदें **राज्य और स्थानीय सरकारों** द्वारा की जाती हैं, न कि केवल संघीय सरकार द्वारा।

हालांकि, सरकार द्वारा किया गया हर भुगतान GDP में नहीं आता। उदाहरण के लिए:

- **स्थानांतरण भुगतान** (Transfer Payments) – जैसे कि सामाजिक सुरक्षा, बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेंशन, मेडिकेयर आदि – ये वो पैसे हैं जो सरकार व्यक्तियों को देती है लेकिन उसके बदले कोई वस्तु या सेवा नहीं मिलती। इसलिए इन्हें GDP में शामिल नहीं किया जाता।

- **ऋण पर ब्याज** – सरकार द्वारा कर्ज पर दिए गए ब्याज को भी GDP में नहीं गिना जाता क्योंकि यह किसी वर्तमान उत्पादन के बदले नहीं दिया जा रहा होता।

सरकारी खर्च भी दो हिस्सों में बँटा होता है –

1. एक हिस्सा कर्मचारियों के वेतन जैसे **वर्तमान खर्च** के रूप में होता है।
2. दूसरा हिस्सा जैसे स्कूल भवन, पुल, सड़कों के रूप में **पूंजीगत वस्तुओं की खरीद** होता है।

हालांकि ये पूंजीगत खर्च भी निवेश ही है, परंतु **सरलता के लिए** इन्हें हम G में ही शामिल करते हैं, और I (निवेश) को केवल निजी क्षेत्र के निवेश के रूप में रखते हैं।

4. **शुद्ध निर्यात** (Net Exports)

शुद्ध निर्यात का मतलब है:

शुद्ध निर्यात (NX) = **निर्यात** (Export) – **आयात** (Import)

निर्यात (Exports) वे वस्तुएं और सेवाएं होती हैं जो **देश में बनती हैं लेकिन विदेशी खरीदारों द्वारा खरीदी जाती हैं**। आयात (Imports) वे होती हैं जो **विदेशों में बनती हैं लेकिन देश में खरीदी जाती हैं**।

अगर निर्यात > आयात, तो NX सकारात्मक होगा।
अगर आयात > निर्यात, तो NX नकारात्मक होगा।

निर्यात GDP में इसलिए जोड़ा जाता है क्योंकि वो देश के **उत्पादन** पर विदेशी खर्च को दर्शाता है। आयात को घटाया जाता है क्योंकि उपभोग, निवेश और सरकारी खर्च में वे वस्तुएं भी शामिल हो जाती हैं जो विदेशों से आयी होती हैं। यदि हम आयात को नहीं घटाएँगे तो GDP में **दोहरी गणना** हो जाएगी – एक बार खर्च के रूप में और दूसरी बार उत्पादन के रूप में, जबकि वो घरेलू उत्पादन है ही नहीं।

उदाहरण के लिए, अगर कोई अमेरिकी जापानी कार खरीदता है, तो यह उपभोग में शामिल होता है। लेकिन चूंकि वह कार अमेरिका में नहीं बनी है, इसलिए उसे GDP में से **घटाना जरूरी होता है**, ताकि हम केवल **घरेलू उत्पादन पर खर्च** को माप सकें।

इस प्रकार, व्यय दृष्टिकोण से हम GDP को **इस पहचान** के आधार पर मापते हैं कि **जो कुछ भी देश में उत्पादित होता है**, **उस पर खर्च होता ही है**, और यह खर्च उपभोग, निवेश, सरकारी खरीद और शुद्ध निर्यात के

माध्यम से किया जाता है।

2.3.2.3 जीडीपी को मापने के लिए आय दृष्टिकोण (The Income Approach to Measuring GDP)

जीडीपी को मापने का तीसरा और अंतिम तरीका है **आय दृष्टिकोण** (Income Approach)। इस दृष्टिकोण में, हम उन सभी आयों को जोड़ते हैं जो उत्पादकों को उनके उत्पादन से प्राप्त होती हैं — जिसमें लाभ (profits) और सरकार को दिए गए कर (taxes) भी शामिल होते हैं। इस दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण भाग है "**राष्ट्रीय आय**" (National Income) की अवधारणा। राष्ट्रीय आय वास्तव में **आठ प्रकार की आयों का योग** होती है।

1. **कर्मचारियों का मुआवजा** (Compensation of Employees): यह श्रमिकों (स्व-रोज़गार को छोड़कर) को दी गई आय होती है। इसमें मजदूरी, वेतन, कर्मचारी लाभ (जैसे पेंशन योजनाओं में योगदान), और सामाजिक सुरक्षा में नियोक्ताओं द्वारा दिया गया अंशदान शामिल होता है।

2. **मालिकाना आय** (Proprietors' Income): यह उन **स्व-रोजगार व्यक्तियों की आय** है जो गैर-निगमित व्यवसाय चलाते हैं। चूंकि कई स्व-रोजगार लोग कुछ पूंजी का भी स्वामी होते हैं (जैसे किसान का ट्रैक्टर या दंत चिकित्सक की X-ray मशीन), इस आय में **श्रम और पूंजी दोनों से आय** शामिल होती है।

3. **व्यक्तियों की किराये की आय** (Rental Income of Persons): यह उन लोगों की आय होती है जो भूमि या इमारतों को किराए पर देते हैं। इसके साथ-साथ, इसमें लेखकों और कलाकारों को मिली रॉयल्टी जैसी **विविध प्रकार की आय** भी शामिल है।

4. **कॉर्पोरेट लाभ** (Corporate Profits): यह निगमों द्वारा अर्जित लाभ हैं, जो सभी लागतों (जैसे मजदूरी, ब्याज, किराया आदि) को घटाने के बाद बचते हैं। इन्हें तीन भागों में बांटा जाता है: (i) करों का भुगतान, (ii) शेयरधारकों को लाभांश, और (iii) **प्रतिधारित आय** (Retained Earnings)।

5. **शुद्ध ब्याज** (Net Interest): यह वह ब्याज है जो व्यक्तियों को व्यापारों और विदेशी स्रोतों से प्राप्त होता है, जिसमें वे जो ब्याज दूसरों को चुकाते हैं, उसे घटाया जाता है।

6. **उत्पादन और आयात पर कर** (Taxes on Production and Imports): इसमें बिक्री कर, उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क, और अन्य अप्रत्यक्ष कर शामिल होते हैं। साथ ही, इसमें मोटर वाहन लाइसेंस और संपत्ति कर जैसे शुल्क भी आते हैं।

7. **व्यवसाय वर्तमान हस्तांतरण भुगतान** (Business Current Transfer Payments - Net): यह वे भुगतान हैं जो व्यापार द्वारा **दान**, **बीमा**, **एफडीआईसी प्रीमियम**, और कानूनी निपटान जैसी चीज़ों के लिए किए जाते हैं — यानी न मजदूरी, न सेवाओं के बदले भुगतान।

8. **सरकारी उद्यमों का वर्तमान अधिशेष** (Current Surplus of Government Enterprises): यह सरकार के स्वामित्व वाले उद्यमों जैसे जल आपूर्ति, सीवर, ट्रांसपोर्ट आदि की आय होती है। यह अधिशेष अक्सर **ऋणात्मक** होता है यानी घाटे में चलता है, लेकिन इन घाटों का आकार बहुत छोटा होता है (कभी भी GDP का 0.2% से ज़्यादा नहीं रहा)।

जीडीपी प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त तीन मदें

इन आठ आयों के अलावा, **तीन और मदें** हैं जिन्हें जोड़ने या घटाने की आवश्यकता होती है:

1. **सांख्यिकीय विसंगति** (Statistical Discrepancy):
   यह उस स्थिति को दिखाती है जब उत्पादन और आय दोनों डेटा अलग स्रोतों से लिए जाते हैं और मेल नहीं खाते। यदि आय का मापन उत्पादन से कम है, तो विसंगति **सकारात्मक** होगी। *राष्ट्रीय आय + सांख्यिकीय विसंगति = शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP)* होता है।

2. **मूल्यह्रास** (Depreciation):
   इसे **स्थिर पूंजी का उपभोग** (Consumption of Fixed Capital) भी कहते हैं — यानी पूंजी का वह भाग जो समय के साथ घिस जाता है। जब हम सकल आय की बात करते हैं, तो हमें मूल्यह्रास को फिर से जोड़ना होता है। *NNP + मूल्यह्रास = GNP (Gross National Product)* होता है।

3. **शुद्ध साधन भुगतान** (Net Factor Payments - NFP):
   यह विदेश से प्राप्त और विदेश को दिए गए साधन आयों के बीच का अंतर होता है। अमेरिका जैसे देशों में यह बहुत कम होता है, इसलिए GDP और GNP में बहुत अंतर नहीं आता।

निजी और सरकारी क्षेत्र की आय (Private and Government Sector Income)

अब बात करते हैं **कुल आय के विभाजन** की — निजी क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र के बीच। अक्सर, नीति निर्धारण में यह जानना जरूरी होता है कि GDP का कितना हिस्सा **निजी हाथों में** जा रहा है और कितना **सरकारी क्षेत्र** को।

निजी प्रयोज्य आय (Private Disposable Income)

यह वह आय होती है जो निजी क्षेत्र (घर और व्यवसाय) के पास खर्च करने के लिए उपलब्ध होती है। इसे निम्नलिखित सूत्र से मापा जाता है:

Private Disposable Income = Y + NFP + TR + INT – T.....(2.4)

जहाँ: Y = GDP, NFP = **विदेश से शुद्ध साधन भुगतान**, TR = **सरकार से मिले ट्रांसफर**, INT = **सरकार के ऋण पर भुगतान किए गए ब्याज**, T = **सरकार को दिए गए कर**।

इसका मतलब यह है कि निजी प्रयोज्य आय में घरेलू और विदेशी स्रोतों से प्राप्त आय के अलावा, सरकार से प्राप्त भुगतान शामिल होते हैं, और सरकार को किए गए भुगतान घटाए जाते हैं।

शुद्ध सरकारी आय (Net Government Income)

सरकारी आय वह हिस्सा है जो करों के रूप में सरकार को प्राप्त होता है, लेकिन इसमें से सरकार द्वारा लोगों को दी गई सहायता (TR और INT) को घटा दिया जाता है:

Net Government Income = T - TR – INT.....(2.5)

जब हम Private Disposable Income और Net Government Income को जोड़ते हैं, तो हमें GDP + NFP = GNP मिलता है — यानी पूरे देश द्वारा घरेलू और विदेशी स्रोतों से अर्जित कुल आय।

2.3.3 राष्ट्रीय बचत (National Saving)

राष्ट्रीय बचत को हम पूरी अर्थव्यवस्था की कुल बचत के रूप में समझते हैं। यह दो भागों का योग होता है – निजी बचत और सरकारी बचत। इसे हम समीकरण के रूप में ऐसे लिख सकते हैं:

$$Spvt = Private\ Disposable\ Income - Consumption$$

$$Spvt = \mathrm{Y} + \mathrm{NFP} + \mathrm{TR} + \mathrm{INT} - \mathrm{T} - \mathrm{C} \ldots\ldots\ldots\ldots 2.6$$

$$Sgovt = \text{Net Govt. Income} - \text{Govt. Purchases}$$

$$Sgovt = \mathrm{T} - \mathrm{TR} - \mathrm{INT} \ldots\ldots\ldots\ldots 2.7$$

$$S = Spvt + Sgovt \ldots\ldots\ldots\ldots .2.8$$

यहां, Spvt निजी बचत को दर्शाता है और Sgovt सरकारी बचत को। अगर हम Spvt और Sgovt की पूर्व निर्धारित परिभाषाओं को समीकरण (2.6) और (2.7) से लें, तो हमें राष्ट्रीय बचत मिलती है वह है:

S = (Y + NFP − T + TR + INT − C) + (T − TR − INT − G)

इसे सरल करने पर हमें मिलता है:

S = Y + NFP − C − G

इसका अर्थ यह हुआ कि राष्ट्रीय बचत अर्थव्यवस्था की कुल आय (Y + NFP), जो कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद यानी GNP के बराबर होती है, में से उपभोग (C) और सरकारी खर्च (G) को घटाने के बाद जो बचता है, वही राष्ट्रीय बचत होती है। इस तरह यह बचत बताती है कि वर्तमान उपभोग जरूरतों को पूरा करने के बाद कितनी आय बचाई जा रही है।

2.3.3.1 निजी बचत का उपयोग (Uses of Private Saving)

अब सवाल उठता है कि एक अर्थव्यवस्था में जो निजी बचत होती है, उसका उपयोग कहां-कहां होता है? इसका उत्तर यह है कि निजी बचत का उपयोग तीन मुख्य कार्यों में होता है: एक, नई पूंजी वस्तुओं (जैसे कारखाने, मकान, मशीनें आदि) में निवेश के लिए; दो, सरकार को उसके बजट घाटे की पूर्ति के लिए उधार देने में; और तीन, विदेशी संपत्तियों को खरीदने या विदेशियों को ऋण देने में।

इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए हम राष्ट्रीय बचत के समीकरण S = Y + NFP − C − G में Y के लिए समष्टि आर्थिक पहचान (Y = C + I + G + NX) को प्रतिस्थापित करते हैं:

S = (C + I + G + NX) + NFP − C − G

इसे सरल करने पर:

S = I + (NX + NFP).....2.9

यहां (NX + NFP) को हम चालू खाता शेष (Current Account Balance या CA) कहते हैं। यह चालू खाता शेष दर्शाता है कि एक देश द्वारा विदेश से प्राप्त आय और विदेश को किए गए भुगतान के बीच क्या अंतर है।

अब, अगर हम इस समीकरण में CA को सीधे प्रतिस्थापित करें, तो समीकरण बनता है:

S = I + CA 2.10

अब हम जानते हैं कि S = Spvt + Sgovt होता है। अगर इस समीकरण से हम सरकारी बचत घटा दें, तो:

Spvt = I + (−Sgovt) + CA 2.11

इस समीकरण को "बचत के उपयोग की पहचान" कहा जाता है। यह हमें यह समझने में मदद करता है कि निजी बचत का तीन तरह से उपयोग होता है:

1. निवेश **(I):** कंपनियां और फर्में पूंजी निर्माण और इन्वेंट्री के लिए निजी बचतकर्ताओं से ऋण लेती हैं।
2. सरकारी बजट घाटा **(−Sgovt):** जब सरकार खर्च अपनी आमदनी से ज्यादा करती है, तो उसे यह अंतर भरने के लिए निजी बचतकर्ताओं से उधार लेना पड़ता है।
3. चालू खाता शेष **(CA):** अगर चालू खाता अधिशेष है, तो विदेशियों को अमेरिका से अधिक भुगतान मिल रहे हैं। इसका मतलब वे अमेरिका को ऋण दे रहे हैं या अमेरिकी संपत्तियां खरीद रहे हैं। लेकिन अगर चालू खाता घाटे में है, तो अमेरिका को विदेशियों से उधार लेना पड़ता है या अपनी संपत्तियां उन्हें बेचनी पड़ती हैं।

इस प्रकार चालू खाता भी निजी बचत के उपयोग का एक माध्यम बनता है – चाहे वो दूसरों को ऋण देने के रूप में हो या विदेशों से ऋण लेने के रूप में।

2.3.3.2 बचत और धन का संबंध (Saving and Wealth)

अब हम बात करते हैं बचत और धन के आपसी संबंध की, जो समष्टि अर्थशास्त्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है। इसे समझने के लिए सबसे पहले हमें "स्टॉक" और "प्रवाह" (Stock and Flow) की अवधारणाओं को जानना होगा।

► स्टॉक बनाम प्रवाह (Stocks vs Flows)

प्रवाह (Flow) वह आर्थिक चर होते हैं जिनको किसी अवधि (जैसे प्रति वर्ष, प्रति तिमाही) में मापा जाता है। उदाहरण के लिए: आय, बचत, खर्च, GDP इत्यादि सभी प्रवाह हैं क्योंकि ये समय के साथ घटित होते हैं।

वहीं, स्टॉक (Stock) वह आर्थिक चर हैं जो किसी विशेष समय बिंदु पर मापे जाते हैं। उदाहरण के लिए: किसी व्यक्ति का बैंक बैलेंस, किसी देश की कुल संपत्ति – ये सभी स्टॉक चर हैं क्योंकि ये "एक समय पर मौजूद कुल मूल्य" को दर्शाते हैं।

एक आम उदाहरण से इसे समझा जा सकता है: यदि हम एक बाथटब में नल खोलें, तो टब में पानी की मात्रा स्टॉक है, और नल से बहने वाला पानी प्रवाह है। जितना अधिक प्रवाह होगा, उतना ही स्टॉक बढ़ेगा।

► बचत और धन का संबंध

बिल्कुल इसी तरह, बचत एक प्रवाह है और धन एक स्टॉक है। जब कोई व्यक्ति, संस्था या देश बचत करता है, तो उसका सीधा असर उनके धन यानी संपत्ति पर होता है। बचत का अर्थ होता है – उपभोग पर कम खर्च करना और बाकी आय को संरक्षित करना। यह संरक्षित हिस्सा या तो संपत्ति खरीदने में जाता है या ऋण चुकाने में। इस तरह, बचत सीधे तौर पर किसी की शुद्ध संपत्ति या कुल धन को बढ़ाती है।

► **राष्ट्रीय धन** (National Wealth)

जब हम किसी देश की बात करते हैं, तो राष्ट्रीय धन में दो मुख्य भाग होते हैं:

1. देश की घरेलू भौतिक संपत्ति – जैसे कि पूंजीगत वस्तुएं, भूमि, भवन आदि।
2. शुद्ध विदेशी संपत्ति **(Net Foreign Assets)** – जो यह दर्शाती है कि एक देश की विदेशों में कितनी संपत्ति है बनाम विदेशियों की उस देश में।

यह जरूरी है कि घरेलू वित्तीय संपत्तियों को राष्ट्रीय धन में न गिना जाए, क्योंकि किसी की वित्तीय संपत्ति किसी और की देनदारी होती है – जैसे बैंक में जमा पैसा ग्राहक के लिए संपत्ति है लेकिन बैंक के लिए देनदारी। लेकिन अगर वह पैसा विदेशी बैंक में हो, तो वह राष्ट्रीय संपत्ति मानी जाती है क्योंकि वह किसी घरेलू देनदारी से नहीं जुड़ी होती।

► राष्ट्रीय धन में परिवर्तन कैसे होता है?

1. मौजूदा संपत्तियों और देनदारियों के मूल्य में परिवर्तन से – जैसे शेयर बाजार में तेजी, या संपत्तियों का मूल्य गिरना।
2. राष्ट्रीय बचत के माध्यम से – यानी जितनी अधिक राष्ट्रीय बचत होगी, उतना ही अधिक राष्ट्रीय धन बढ़ेगा।

यदि हम मौजूदा संपत्तियों के मूल्य को स्थिर मानें, तो हर एक अतिरिक्त डॉलर की राष्ट्रीय बचत सीधे राष्ट्रीय धन में एक डॉलर जोड़ता है। यही समीकरण (2.10) कहता है:

$$S = I + CA$$

जहां निवेश से घरेलू पूंजी स्टॉक बढ़ता है और चालू खाता अधिशेष से विदेशी संपत्ति का स्टॉक।

इस प्रकार, यह एकदम वैसा ही है जैसे नल से बाथटब में जितना तेज पानी आएगा, टब में पानी उतना ही तेज़ी से भरता जाएगा – ठीक वैसे ही जितनी ज्यादा बचत, उतनी तेजी से राष्ट्रीय धन में वृद्धि। अमेरिका और अन्य देशों की तुलना आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका की बचत दर अन्य विकसित देशों की तुलना में कम रही है। उसकी निवेश दरें भी तुलनात्मक रूप से कम हैं, लेकिन फिर भी कई बार निवेश दरें बचत दरों से अधिक रही हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अमेरिका को अंतर को भरने के लिए विदेशी ऋण की आवश्यकता होती है – यानी चालू खाता घाटा। इसके विपरीत, चीन जैसे देश जहां बचत दर बहुत अधिक है और निवेश दर तुलनात्मक रूप से कम, वहां चालू खाता अधिशेष की स्थिति बनी रहती है – मतलब वे देश विदेशों को ऋण देते हैं और संपत्तियाँ खरीदते हैं।

2.4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ (Concepts of National Income)

राष्ट्रीय आय से तात्पर्य एक देश की किसी विशेष अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य से होता है। यह देश की आर्थिक प्रगति को मापने का एक मुख्य पैमाना है। इसमें विभिन्न अवधारणाएँ आती हैं, जो अलग-अलग कोणों से आर्थिक गतिविधियों को मापती हैं।

1. **सकल घरेलू उत्पाद** (GDP – Gross Domestic Product)

परिभाषा**:**

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) एक देश की भौगोलिक सीमाओं के भीतर एक वर्ष में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य का योग होता है, बिना विदेशी आय को शामिल किए।

GDP के दो प्रकार होते हैं**:**

➢ (A) *बाजार मूल्य पर* GDP (GDP at Market Price)

यह वह मूल्य होता है जिस पर वस्तुएं और सेवाएं बाजार में बेची जाती हैं, यानी इसमें कर **(Taxes)** और सब्सिडी **(Subsidies)** शामिल होते हैं।

GDP at Market Price = GDP at Factor Cost + Indirect Taxes – Subsidies

➢ (B) *फैक्टर कॉस्ट पर* GDP (GDP at Factor Cost)

यह वह मूल्य होता है जो उत्पादकों को उत्पादन में लगे कारकों के लिए भुगतान के रूप में मिलता है – जैसे मजदूरी, किराया, ब्याज, लाभ आदि। इसमें अप्रत्यक्ष कर नहीं जुड़ा होता और सब्सिडी को जोड़ा जाता है।

GDP at Factor Cost = GDP at Market Price – Indirect Taxes + Subsidies

2. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद** (GNP – Gross National Product)

परिभाषा**:**

GNP वह मूल्य है जो देश के नागरिकों द्वारा **(**देश और विदेश दोनों में**)** एक वर्ष में उत्पन्न की गई अंतिम वस्तुओं और सेवाओं से प्राप्त होता है।

GNP = GDP + Net Factor Income from Abroad (NFIA)

यहाँ,

NFIA = विदेशों से प्राप्त आय **–** विदेशियों को दी गई आय

▸ यदि कोई भारतीय विदेश में आय अर्जित करता है, तो वह GNP में जुड़ती है।
▸ लेकिन यदि कोई विदेशी भारत में कमाता है, तो वह GNP में नहीं जोड़ी जाती।

3. **शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद** (NNP – Net National Product)

परिभाषा**:**

जब हम GNP से मूल पूंजी **(Capital goods)** के घिसने-पिटने यानी मूलघटन **(Depreciation)** को घटा देते हैं, तो हमें NNP मिलता है।

NNP = GNP – Depreciation

NNP यह दिखाता है कि अर्थव्यवस्था ने एक वर्ष में वास्तव में कितना "शुद्ध" उत्पादन किया है।

NNP *के दो रूप होते हैं*:

NNP at Market Price:

बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, जिसमें कर और सब्सिडी शामिल होती हैं।

NNP (MP) = GNP (MP) – Depreciation

NNP at Factor Cost (राष्ट्रीय आय**):**

यह सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा है। इसी को हम राष्ट्रीय आय **(National Income)** भी कहते हैं।

NNP (FC) = NNP (MP) – Indirect Taxes + Subsidies

4. **राष्ट्रीय आय** (National Income)

राष्ट्रीय आय उस कुल आय को कहते हैं, जो देश के नागरिकों को उनके उत्पादन के लिए उत्पादन कारकों के रूप में प्राप्त होती है – जैसे मजदूरी, ब्याज, किराया, लाभ आदि।

सरल शब्दों में: **National Income = NNP at Factor Cost**

व्यक्तिगत आय की अवधारणाएँ (Concepts of Personal Income)

अब जब हमने राष्ट्रीय आय की सभी अवधारणाएँ समझ ली हैं, तो आइए अब समझते हैं कि व्यक्तिगत आय **(Personal Income)** क्या होती है और यह कैसे निकाली जाती है।

5. **व्यक्तिगत आय** (Personal Income – PI)

परिभाषा**:** व्यक्तिगत आय वह कुल आय है जो एक देश के नागरिकों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त होती है, चाहे उन्होंने कोई उत्पादक कार्य किया हो या नहीं। इसमें ट्रांसफर पेमेंट जैसे पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, सामाजिक सुरक्षा भुगतान आदि भी शामिल होते हैं।

Personal Income = National Income – Undistributed Profits – Corporate Taxes + Transfer Payments

जहां**:**

- **Undistributed Profits** = कंपनियों द्वारा शेयरधारकों को नहीं बांटा गया लाभ।
- **Corporate Tax** = कंपनियों द्वारा सरकार को दिए गए कर।
- **Transfer Payments** = सरकार द्वारा नागरिकों को बिना सेवा के बदले दी गई राशि (जैसे पेंशन, सब्सिडी)।

6. **व्यक्तिगत उपभोग योग्य आय** (Personal Disposable Income – PDI)

परिभाषा**:**

यह वह आय होती है जो व्यक्ति के पास वास्तव में खर्च करने या बचत करने के लिए उपलब्ध होती है, यानी व्यक्तिगत आय में से प्रत्यक्ष कर (जैसे इनकम टैक्स) घटाने के बाद बची राशि।

Disposable Income = Personal Income – Direct Taxes

यह आय नागरिकों के पास निजी उपभोग और बचत के लिए होती है।

2.5 राष्ट्रीय आय और व्यय का चक्रीय प्रवाह

राष्ट्रीय आय और व्यय का चक्रीय प्रवाह उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें किसी अर्थव्यवस्था की कुल आय और व्यय लगातार एक गोल चक्र की तरह एक-दूसरे के बीच प्रवाहित होते रहते हैं। यह प्रवाह इसलिए चक्रीय कहलाता है क्योंकि जो आय किसी एक क्षेत्र को मिलती है, वही व्यय किसी दूसरे क्षेत्र के लिए होता है। उदाहरण के लिए, यदि व्यवसायों ने मजदूरों को वेतन दिया तो वह मजदूरों की आय बन गई। अब वही मजदूर जब बाजार से सामान खरीदेंगे तो वह व्यापारियों का राजस्व बन जाएगा। यही प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

इस प्रवाह को समझने के लिए हम इसे तीन हिस्सों में बाँटकर समझते हैं: (1) दो-क्षेत्रीय मॉडल, (2) तीन-क्षेत्रीय मॉडल, और (3) चार-क्षेत्रीय मॉडल। सबसे पहले, हम दो-क्षेत्रीय मॉडल की बात करते हैं जिसमें सिर्फ परिवार और व्यवसाय शामिल होते हैं।

2.5.1 दो-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह (**Circular Flow in a Two-Sector Closed Economy**)

दो-क्षेत्रीय मॉडल को समझना आसान होता है क्योंकि इसमें सिर्फ दो प्रमुख क्षेत्र होते हैं: एक है परिवार क्षेत्र **(households)**, और दूसरा व्यवसाय क्षेत्र **(firms)**। परिवार क्षेत्र उत्पादन के सभी कारकों का स्वामी होता है जैसे भूमि, श्रम और पूंजी। ये परिवार इन कारकों को व्यवसाय क्षेत्र को प्रदान करते हैं और इसके बदले में उन्हें मजदूरी, किराया, ब्याज और लाभ के रूप में आय प्राप्त होती है।

अब व्यवसाय क्षेत्र उन सभी संसाधनों का इस्तेमाल करके वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है, जिन्हें ये परिवारों को बेचते हैं। परिवार इन वस्तुओं और सेवाओं को खरीदते हैं, और बदले में व्यवसाय क्षेत्र को भुगतान करते हैं। इस प्रकार, परिवारों की आय से जो व्यय किया जाता है, वह व्यवसायों की आय बन जाता है और

व्यवसायों का जो व्यय होता है (जैसे मजदूरी आदि), वह परिवारों की आय बन जाती है। इस तरह एक सतत चक्रीय प्रवाह बनता है। इस मॉडल में दो प्रकार के प्रवाह होते हैं—एक वास्तविक प्रवाह (goods and services) और दूसरा मौद्रिक प्रवाह (money flow)। वस्तुएँ व्यवसाय से परिवारों की ओर जाती हैं, जबकि सेवाएँ परिवारों से व्यवसाय की ओर। वहीं, धन का प्रवाह वस्तुओं की खरीद पर व्यवसायों की ओर, और सेवाओं के बदले में परिवारों की ओर होता है। (See Figure 2.1)

Figure 2.1

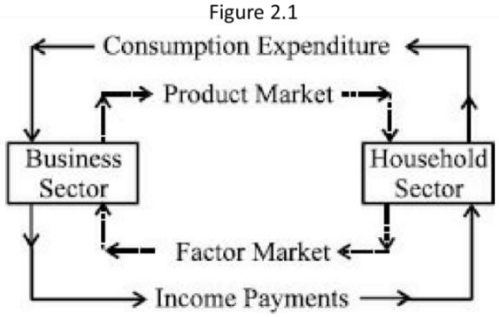

बचत और निवेश के साथ चक्रीय प्रवाह: अब जब हम थोड़ा आगे बढ़ते हैं और अर्थव्यवस्था की थोड़ी अधिक यथार्थवादी तस्वीर समझते हैं, तो हमें दो और तत्व देखने को मिलते हैं—बचत **(saving)** और निवेश **(investment)**। असल ज़िंदगी में परिवार अपनी पूरी आय खर्च नहीं करते, वे उसका एक हिस्सा बचा लेते हैं। इसी तरह, व्यवसाय भी केवल वस्तुएँ नहीं बेचते, बल्कि वे अपनी उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए पूंजीगत वस्तुओं में निवेश भी करते हैं।

इस स्थिति में, आय और व्यय का प्रवाह कुछ हद तक बदल जाता है। जब परिवार अपनी आय का कुछ हिस्सा बचाते हैं, तो वह सीधा व्यवसायों तक नहीं पहुँचता। इसके बजाय यह पूंजी बाजार (जैसे बैंक, वित्तीय संस्थान, स्टॉक एक्सचेंज आदि) में चला जाता है। अब वही बचत जब व्यवसायों द्वारा निवेश के रूप में प्रयोग की जाती है, तब यह आय का फिर से हिस्सा बन जाती है।

Figure 2.2

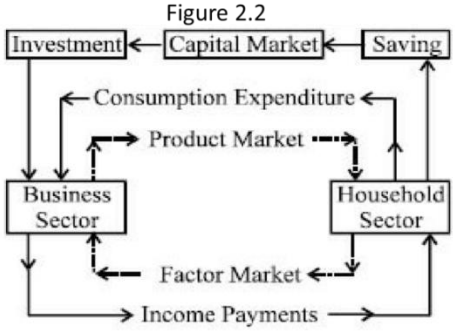

इसलिए इस नए मॉडल में परिवारों की आय अब दो रास्तों में बंट जाती है—एक हिस्सा सीधा उपभोग पर खर्च होता है, और दूसरा हिस्सा बचत के रूप में पूंजी बाजार में चला जाता है। व्यवसाय पूंजी बाजार से ऋण लेकर या निवेश निधि प्राप्त कर उत्पादन में निवेश करते हैं, जिससे आगे जाकर उत्पादन बढ़ता है और फिर से परिवारों को रोजगार मिलता है। इस तरह यह एक नया चक्र बनता है।

इस मॉडल में यदि बचत और निवेश का स्तर एक समान होता है तो अर्थव्यवस्था स्थिर बनी रहती है। लेकिन अगर बचत ज़्यादा हो और निवेश कम, तो माँग घट सकती है और मंदी की स्थिति आ सकती है। इसके विपरीत, अगर निवेश अधिक हो और बचत कम, तो माँग बहुत तेज़ी से बढ़ सकती है जिससे महंगाई का दबाव उत्पन्न हो सकता है।

इस प्रकार, राष्ट्रीय आय का चक्रीय प्रवाह हमें यह समझने में मदद करता है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न घटक आपस में कैसे जुड़े हुए हैं और कैसे एक क्षेत्र का व्यय दूसरे की आय बन जाता है। दो-क्षेत्रीय मॉडल हमें इसका आधार देता है, जबकि बचत और निवेश को जोड़ने से हमें वास्तविक दुनिया की तस्वीर दिखाई देती है। इस पूरी प्रक्रिया में पूंजी बाजार एक सेतु की तरह काम करता है जो बचत और निवेश के बीच संतुलन बनाए रखता है। अगर यह संतुलन बना रहे तो राष्ट्रीय आय स्थिर रहती है और अर्थव्यवस्था संतुलन में चलती है। (See Figure 2.2)

2.5.2 तीन-क्षेत्रीय बंद अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह (**Circular Flow in a Three-Sector Closed Economy**)

अब तक हम केवल दो क्षेत्रों — परिवार **(Household)** और व्यवसाय **(Business)** — के बीच चक्रीय प्रवाह की बात कर रहे थे। लेकिन वास्तविक अर्थव्यवस्था में केवल ये दो ही नहीं होते। इसमें सरकार **(Government)** भी एक अहम भूमिका निभाती है। जैसे ही हम सरकार को इस मॉडल में शामिल करते हैं, हमारा मॉडल तीन-क्षेत्रीय बंद अर्थव्यवस्था (Three-Sector Closed Economy) का बन जाता है। इसमें हम अब कराधान **(Taxation)** और सरकारी खर्च **(Government Expenditure)** को भी चक्रीय प्रवाह का हिस्सा मानते हैं।

इस मॉडल में सबसे पहले बात करें परिवार क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र के आपसी संबंधों की। परिवारों की आय से जब सरकार आयकर**,** वस्तु और सेवा कर (जैसे GST) के रूप में कर लेती है, तो यह प्रवाह से बाहर निकल जाने वाला रिसाव **(Leakage)** होता है। लेकिन यह रिश्ता सिर्फ एकतरफा नहीं होता। सरकार भी परिवारों को कई तरह से भुगतान करती है — जैसे वृद्धावस्था पेंशन**,** बेरोजगारी भत्ता**,** बीमारी में सहायता, आदि। इन हस्तांतरण भुगतानों

(Transfer Payments) के अलावा सरकार स्वास्थ्य**,** शिक्षा**,** आवास**,** पानी और पार्क जैसी सेवाएं भी प्रदान करती है। ये सभी खर्च सरकार द्वारा किए गए अंतःक्षेपण **(Injections)** माने जाते हैं, जो आय के प्रवाह को पुनः गति देते हैं।

अब आते हैं व्यवसाय क्षेत्र और सरकार के संबंधों पर। जब फर्में सरकार को कॉर्पोरेट टैक्स**,** उत्पादन कर**,** लाइसेंस फीस जैसे कर देती हैं, तो यह भी प्रवाह से रिसाव है। लेकिन सरकार फर्मों से सड़क**,** भवन**,** मशीनें**,** औजार आदि की खरीदारी करती है, और कई बार उन्हें सब्सिडी या अनुदान भी देती है। ये सभी चीजें सरकार की ओर से की गई अंतःक्षेपण होती हैं, जिससे फर्मों को निवेश और उत्पादन में मदद मिलती है।

अब जब हम इन तीनों क्षेत्रों — परिवार**,** व्यवसाय और सरकार — को एक साथ जोड़ते हैं, तो हमें पता चलता है कि आय और व्यय का प्रवाह कितना जीवंत और संतुलित है। सरकार द्वारा कर वसूली से परिवारों और फर्मों की आय में थोड़ी कमी आती है, जिससे उनका उपभोग और निवेश घट सकता है। लेकिन वही सरकार यदि उसी कर राशि को सामाजिक सेवाओं पर खर्च करती है या फर्मों से खरीद करती है, तो वही पैसे फिर से प्रवाह में वापस आ जाते हैं। इस तरह, चाहे सरकार कर ले या खर्च करे, यदि वह रिसाव और अंतःक्षेपण का संतुलन बनाए रखे, तो पूरी अर्थव्यवस्था का चक्रीय प्रवाह संतुलन में बना रहता है। इसका मतलब है कि जो पैसे बाहर जा रहे हैं (करों के रूप में), वे किसी न किसी रूप में वापस भी आ रहे हैं (खर्च के रूप में) — जिससे मांग और आपूर्ति, उत्पादन और आय सब संतुलित रहते हैं। (See Figure 2.3).

Figure 2.3

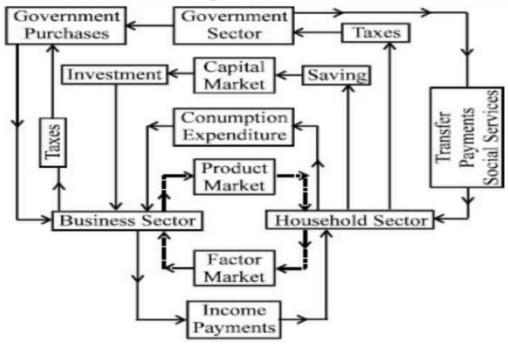

अब यदि सरकार का खर्च उसके कर संग्रह से अधिक हो, तो उसके पास राजकोषीय घाटा **(Fiscal Deficit)** होगा। इसे पूरा करने के लिए सरकार पूंजी बाजार **(Capital Market)** से ऋण लेती है — यानी वही जगह जहाँ परिवार अपनी बचत जमा करते हैं। इसका मतलब यह कि सरकार जनता से ही उधार लेकर फर्मों से वस्तुएं और

सेवाएं खरीदती है। दूसरी ओर, यदि सरकार करों से अधिक राशि वसूल कर रही है और कम खर्च कर रही है, तो उसे बजट अधिशेष **(Budget Surplus)** मिलेगा। ऐसी स्थिति में सरकार पूंजी बाजार में पैसा डालती है जिससे फर्मों को निवेश के लिए अधिक धन मिलता है।

2.5.3 विदेशी क्षेत्र को जोड़ना: चार-क्षेत्रीय खुली अर्थव्यवस्था में चक्रीय प्रवाह (**Adding Foreign Sector: Circular Flow in a Four-Sector Open Economy**)

अब तक हमने जिन मॉडलों की चर्चा की, वे सभी बंद अर्थव्यवस्था **(closed economy)** के थे — यानी जिनमें विदेशी व्यापार शामिल नहीं था। लेकिन असल दुनिया की अर्थव्यवस्थाएं ऐसी नहीं होतीं। वे खुली अर्थव्यवस्थाएं **(open economies)** होती हैं जहाँ देशों के बीच निर्यात-आयात का लेन-देन होता है। इस कारण जब हम विदेशी क्षेत्र **(foreign sector)** को चक्रीय प्रवाह में शामिल करते हैं, तो हमारा मॉडल चार-क्षेत्रीय खुली अर्थव्यवस्था **(four-sector open economy)** बन जाता है।

सबसे पहले समझते हैं कि निर्यात **(Exports)** क्या होता है। जब हमारी घरेलू फर्में जो भी सामान और सेवाएं विदेशों को बेचती हैं, तो उनसे हमें विदेशी मुद्रा में आय होती है। यह हमारी अर्थव्यवस्था में आय का अंतःप्रवाह **(injection)** है, यानी पैसे का अंदर आना। इसके ठीक उलट, जब हम विदेशों से सामान खरीदते हैं यानी आयात **(Imports)** करते हैं, तो वह रिसाव **(leakage)** बन जाता है क्योंकि हमारी मुद्रा बाहर चली जाती है।

अब जब हम परिवार, व्यवसाय और सरकार — तीनों क्षेत्रों को विदेशी क्षेत्र से जोड़ते हैं, तो कई तरह के अंतःप्रवाह और बहिर्वाह दिखाई देते हैं।

उदाहरण के लिए, परिवार विदेशी वस्तुएं खरीदते हैं (जैसे मोबाइल, कार, इलेक्ट्रॉनिक्स आदि), जिससे पैसा बाहर जाता है — यह रिसाव है। लेकिन कभी-कभी परिवारों को विदेशों से भुगतान भी मिल सकता है, जैसे विदेश में काम करने वाले रिश्तेदारों से पैसा आना — जिसे हम हस्तांतरण भुगतान **(transfer payments)** कहते हैं।

व्यवसाय क्षेत्र की बात करें तो वह विदेशों को वस्तुएं और सेवाएं बेचता है — जैसे कपड़े, स्टील, सॉफ्टवेयर, इंजीनियरिंग सेवाएं आदि। इसके बदले उसे विदेशी मुद्रा में भुगतान मिलता है, जो आय के प्रवाह में एक अंतःप्रवाह है। व्यवसाय क्षेत्र शिपिंग, बीमा, बैंकिंग जैसी सेवाएं भी निर्यात करता है और साथ ही विदेशों से रॉयल्टी, ब्याज, लाभांश आदि के रूप में भी आय प्राप्त करता है। लेकिन ये फर्में मशीनरी, कच्चा माल और तकनीकी सेवाएं विदेशों से खरीदती भी हैं, जो फिर से एक रिसाव है।

अब सरकारी क्षेत्र भी पीछे नहीं है। आज की दुनिया में सरकारें भी विदेशी व्यापार और निवेश में शामिल होती हैं। भारत सरकार अगर किसी देश को अनाज या दवा भेजती है तो वह निर्यात है। सरकार को विदेश से भुगतान मिलता है जब विदेशी पर्यटक भारत आते हैं, विदेशी छात्र यहाँ पढ़ने आते हैं, या जब सरकार द्वारा नियंत्रित संस्थाएँ — जैसे भारतीय डाक या शिपिंग निगम — विदेशों को सेवाएं देती हैं। वहीं, सरकार भी कई बार विदेश से उपकरण**,** सेवाएं या तकनीक खरीदती है, जो एक रिसाव बनता है।

Figure 2.4

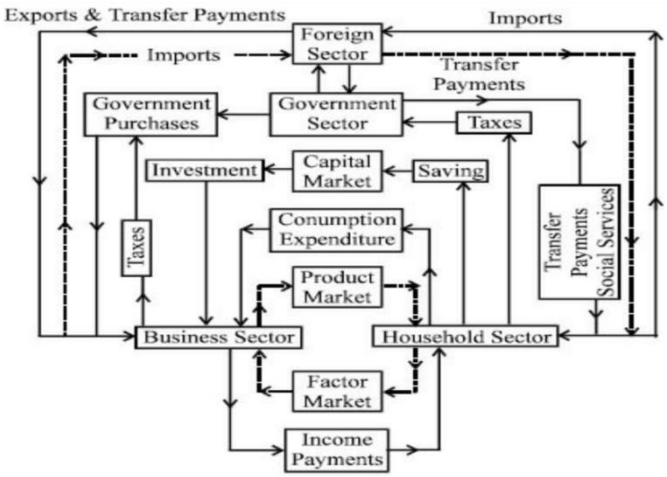

अब इन सभी प्रवाहों को एक चित्र में दिखाएं तो हमें मिलेगा कि बचत **(S),** कर **(T)** और आयात **(M)** दाहिनी ओर से निकलते हुए दिखाई देते हैं — ये सभी रिसाव हैं। जबकि निवेश **(I),** सरकारी खर्च **(G)** और निर्यात **(X)** बाईं ओर से आते हैं — ये सभी अंतःप्रवाह हैं। इन तीनों घरेलू क्षेत्रों से जुड़े विदेशी लेन-देन को **"**भुगतान संतुलन क्षेत्र **(Balance of Payments Sector)"** कहा जाता है। (See Figure 2.4).

यदि निर्यात **>** आयात, तो देश के पास विदेशी मुद्रा की अधिकता होती है — इसे कहते हैं अधिशेष **(Surplus)**। और यदि आयात **>** निर्यात, तो देश को अधिक भुगतान करना पड़ता है — इसे कहते हैं घाटा **(Deficit)**। लेकिन लंबी अवधि में इन दोनों को संतुलित करना ज़रूरी होता है ताकि अर्थव्यवस्था स्थिर रह सके। इसके लिए सरकारें विभिन्न विदेश व्यापार नीतियाँ अपनाती हैं।

अब इन प्रवाहों को हम एक सरल गणितीय रूप में भी समझ सकते हैं।

हमारी अर्थव्यवस्था में कुल आय का निर्धारण इस प्रकार होता है:

Y = C + I + G.....(2.A)

जहाँ: **Y** = राष्ट्रीय आय, **C** = उपभोग, **I** = निवेश, **G** = सरकारी खर्च

अब क्योंकि सरकार कर भी लगाती है और परिवार बचत भी करते हैं, तो:

Y = C + S + T ...(2.B)

जहाँ: **S** = बचत, **T** = कर, इन दोनों को बराबर करें:

C + I + G = C + S + T

घटाकर हमें मिलेगा:

I + G = S + T.....(2.C)

अब यदि हम विदेशी क्षेत्र जोड़ते हैं और निवेश को दो भागों में बाँटते हैं —
घरेलू निवेश **(Id)** और विदेशी निवेश **(If)** — तो:

Id + If + G = S + T.....(2.D)

चूँकि **If = X - M** (निर्यात - आयात),
इसलिए अंतिम समीकरण बनता है:

Id + (X − M) + G = S + T.....(2.E)

या,

Id + (X − M) = S + (T − G).....(2.F)

यह समीकरण दर्शाता है कि आय और व्यय का चक्रीय प्रवाह तब संतुलन में होता है जब घरेलू निवेश और शुद्ध निर्यात मिलकर कुल बचत और सरकार के बजट अधिशेष/घाटे के बराबर हो।

2.5.4 आय के चक्रीय प्रवाह का महत्व (Importance of the Circular Flow of Income)

आय का चक्रीय प्रवाह अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली और विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंध को समझने की मूलभूत अवधारणा है। इसका महत्व इस प्रकार है—

1. **असंतुलन का अध्ययन** – बचत व निवेश में असमानता से मंदी या मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है। यह मॉडल कारण व परिणाम स्पष्ट करता है।

2. **रिसाव व अंतःप्रवाह** – बचत, कर और आयात रिसाव हैं; जबकि निवेश, सरकारी व्यय और निर्यात अंतःप्रवाह हैं। ये कुल मांग व गतिविधि को प्रभावित करते हैं।
3. **उत्पादक–उपभोक्ता संबंध** – परिवार का व्यय व्यवसाय की आय बनता है, और व्यवसाय का भुगतान परिवार की आय। यह परस्पर निर्भरता दिखाता है।
4. **बाजारों का नेटवर्क** – उत्पाद, कारक, पूंजी और विदेशी मुद्रा बाजारों का परस्पर संबंध समझाता है।
5. **मुद्रास्फीति/अपस्फीति** – कुल मांग–आपूर्ति में अंतर से कीमतें व उत्पादन घटते-बढ़ते हैं।
6. **गुणक का आधार** – प्रारंभिक निवेश कई गुना आय वृद्धि ला सकता है क्योंकि व्यय आय में बदलता है।
7. **मौद्रिक नीति** – ब्याज दर व मुद्रा आपूर्ति से निवेश व आर्थिक गतिविधि प्रभावित होती है।
8. **राजकोषीय नीति** – सरकारी व्यय व कराधान द्वारा मांग नियंत्रित की जाती है।
9. **व्यापार नीति** – निर्यात अंतःप्रवाह और आयात रिसाव होते हैं; नीति इन्हें संतुलित करती है।
10. **निधि प्रवाह खाते** – विभिन्न क्षेत्रों के वित्तीय लेन-देन का आधार प्रदान करते हैं।

2.6 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

2.6.1 सही विकल्प चुनिए

1. निम्नलिखित में से कौन-सा राष्ट्रीय आय को मापने का दृष्टिकोण नहीं है?
A. उत्पाद दृष्टिकोण B. व्यय दृष्टिकोण C. आय दृष्टिकोण D. उपभोक्ता संतोष दृष्टिकोण

2. **निम्नलिखित में से कौन-सा व्यय दृष्टिकोण में शामिल नहीं होता**?
A. **उपभोग व्यय** (Consumption Expenditure) B. **निवेश व्यय** (Investment Expenditure)
C. **कर राजस्व** (Tax Revenue) D. **सरकार का व्यय** (Government Expenditure)

3. चार-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में निम्न में से कौन-सा क्षेत्र शामिल होता है जो तीन-क्षेत्रीय में नहीं होता?
A. परिवार क्षेत्र B. उत्पादक क्षेत्र C. सरकारी क्षेत्र D. विदेशी क्षेत्र

4. सकल घरेलू उत्पाद (GDP) को मापने के लिए निम्नलिखित में से कौन-सी विधि का प्रयोग किया जाता है?
A. मनोवैज्ञानिक विधि B. समाजशास्त्रीय विधि C. उत्पाद दृष्टिकोण D. मनमाना दृष्टिकोण

5. यदि राष्ट्रीय आय > राष्ट्रीय व्यय हो, तो इसका अर्थ है:

A. सरकार घाटे में है B. अर्थव्यवस्था संतुलन में है C. अर्थव्यवस्था में अधिशेष है D. विदेशी क्षेत्र को हटा दिया गया है

2.6.2 सही या गलत बताइए

1. **राष्ट्रीय आय मापन के तीन दृष्टिकोण — उत्पाद, आय और व्यय — परस्पर समतुल्य होते हैं।**
2. **सकल घरेलू उत्पाद** (GDP) **में केवल अंतिम वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया जाता है।**
3. **दो-क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में सरकार और विदेश क्षेत्र शामिल होते हैं।**
4. **राष्ट्रीय बचत** = **निजी बचत** + **सार्वजनिक बचत** - **विदेशी बचत।**
5. **चक्रीय प्रवाह मॉडल यह दिखाता है कि किस प्रकार आय और व्यय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवाहित होते हैं।**

2.7 सारांश (Summary)

इस अध्याय में राष्ट्रीय आय की अवधारणा, उसके मापन की विधियाँ और चक्रीय आय प्रवाह का अध्ययन किया गया। समष्टि अर्थशास्त्र में सटीक मापन हेतु राष्ट्रीय आय लेखांकन विकसित हुआ, जो अर्थव्यवस्था को समझने का ढांचा प्रदान करता है। राष्ट्रीय आय को मापने के तीन दृष्टिकोण हैं—उत्पाद, व्यय और आय दृष्टिकोण—जिनसे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का निर्धारण होता है। इसके साथ राष्ट्रीय एवं निजी बचत, व्यक्तिगत आय और उपभोग व्यय के संबंधों को समझा गया। चक्रीय आय प्रवाह में दो-क्षेत्रीय, तीन-क्षेत्रीय और चार-क्षेत्रीय मॉडल से यह स्पष्ट हुआ कि एक क्षेत्र की आय दूसरे का व्यय बनकर आर्थिक संतुलन स्थापित करती है। अंततः, राष्ट्रीय आय लेखांकन केवल आँकड़ों का संग्रह नहीं, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझने का वैज्ञानिक माध्यम है।

2.8 सूचक शब्द (Keywords)

- **राष्ट्रीय आय (National Income):** किसी देश की सीमाओं के भीतर एक वर्ष में उत्पन्न सभी वस्तुओं और सेवाओं की कुल आय को राष्ट्रीय आय कहा जाता है। यह देश की आर्थिक स्थिति को मापने का प्रमुख संकेतक है।
- **सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product - GDP):** किसी देश की भौगोलिक सीमाओं के भीतर एक निश्चित अवधि (आमतौर पर एक वर्ष) में उत्पादित सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य होता है।

- **उत्पाद दृष्टिकोण (Product Approach):** इस दृष्टिकोण में सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के मूल्य को जोड़कर GDP का अनुमान लगाया जाता है।
- **व्यय दृष्टिकोण (Expenditure Approach):** इसमें GDP को मापने के लिए कुल व्यय — जैसे उपभोग, निवेश, सरकारी खर्च और निर्यात-आयात को जोड़ा जाता है।
- **आय दृष्टिकोण (Income Approach):** इसमें GDP का मापन सभी आय घटकों — जैसे मजदूरी, किराया, ब्याज और लाभ — को जोड़कर किया जाता है।
- **राष्ट्रीय बचत (National Saving):** यह कुल आय से उपभोग खर्च घटाने के बाद बची राशि होती है। इसमें निजी और सार्वजनिक दोनों प्रकार की बचत शामिल होती है।
- **निजी बचत (Private Saving):** परिवारों और फर्मों की कुल आय में से उपभोग व्यय और करों को घटाने के बाद बची राशि को निजी बचत कहते हैं।
- **चक्रीय प्रवाह (Circular Flow):** यह मॉडल यह दर्शाता है कि आय और व्यय किस प्रकार एक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों — परिवार, फर्म, सरकार और विदेशी क्षेत्र — में प्रवाहित होते हैं।
- **व्यक्तिगत आय (Personal Income):** वह कुल आय जो व्यक्तियों को विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होती है, चाहे वह उत्पादक गतिविधियों से हो या हस्तांतरण भुगतानों से।
- **उपभोग (Consumption):** वह भाग जो घर-परिवार अपनी आय से दैनिक उपयोग की वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च करते हैं।

2.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions-SAQs)

1. **राष्ट्रीय आय लेखांकन क्या है? इसके प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?**
   (What is National Income Accounting? What are its main objectives?)
2. **सकल घरेलू उत्पाद** (GDP) **को मापने की तीन विधियों का वर्णन कीजिए। ये आपस में समतुल्य क्यों मानी जाती हैं?**
   (Explain the three methods of measuring GDP. Why are they considered theoretically equivalent?)

3. **राष्ट्रीय बचत और निजी बचत में क्या अंतर है? साथ ही निजी बचत के उपयोगों पर प्रकाश डालिए।**
   (Differentiate between national saving and private saving. Also explain the uses of private saving.)
4. **व्यक्तिगत आय और व्यक्तिगत व्यय क्या होते हैं? इनमें क्या संबंध है?**
   (What is personal income and personal expenditure? What is the relationship between them?)
5. **चक्रीय प्रवाह मॉडल क्या होता है? दो-क्षेत्रीय और चार-क्षेत्रीय मॉडल की तुलना कीजिए।**
   (What is the circular flow model? Compare the two-sector and four-sector models.)
6. **राष्ट्रीय आय के आँकड़े नीति-निर्माताओं और अर्थशास्त्रियों के लिए क्यों महत्वपूर्ण होते हैं?**
   (Why are national income statistics important for policymakers and economists?)
7. **बचत और धन के बीच क्या संबंध होता है? उदाहरण सहित समझाइए।**
   (What is the relationship between saving and wealth? Explain with an example.)

2.10 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

2.6.1 => सही उत्तर: 1. D. उपभोक्ता संतोष दृष्टिकोण, 2. C. कर राजस्व (Tax Revenue), 3. D. विदेशी क्षेत्र, 4. C. उत्पाद दृष्टिकोण, 5. C. अर्थव्यवस्था में अधिशेष है।

2.6.2=> सही उत्तर: 1. सही, 2. सही, 3. गलत, 4. गलत (सही होगा: राष्ट्रीय बचत = निजी बचत + सार्वजनिक बचत), 5. सही।

2.11 संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

1. Abel, Andrew B., Ben S. Bernanke & Dean Croushore – Macroeconomics (8th Edition), Pearson Education.
2. Ackley, G. – *Macroeconomics: Theory and Policy*, Macmillan Publishing
3. Dornbusch, R., Fischer, S. and Startz, R. – *Macroeconomics*, McGraw Hill
4. Branson, W. A. – *Macroeconomic Theory and Policy*, Harper & Row
5. Jhingan, M.L. – *Samasti Arthashastra (समष्टि अर्थशास्त्र)*, Vrinda Publications, Delhi

विषय: अर्थशास्त्र (समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत I)	
विषय क्रमांक: बीए BECO-301	लेखक: डॉ. सोमनाथ परूथी
अध्याय: 3	वेट्टर:
उपभोग फलन: औसत एवं सीमांत उपभोग प्रवृत्ति, उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम	

अध्याय की संरचना (Structure of the Chapter)

3.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 **उपभोग फलन: कीन्सियन विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण उपकरण** (Consumption function: An Important Tool of Keynesian Analysis)

3.2.1 **उपभोग फलन के गुण या तकनीकी विशेषताएँ** (Properties or Technical Attributes of the Consumption Function)

3.2.2 MPC **का महत्व** (Significance of MPC)

3.3 **कीन्स का उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम** (Keynes's Psychological Law of Consumption) 3.3.1 कीन्स के नियम के निहितार्थ या उपभोग फलन का महत्व (Implications of Keynes's Law or Importance of the Consumption Function)

3.4 उपभोग फलन के निर्धारक (Determinants of the Consumption Function)

3.5 उपभोग प्रवृत्ति बढ़ाने के उपाय (Measures to Raise the Propensity to Consume)

3.6 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

3.7 सारांश **(Summary)**

3.8 सूचक शब्द **(Keywords)**

3.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assessment Questions-SAQs)**

3.10 **अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर** (Answers to Check Your Progress)

3.11 **संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)**

3.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय को अध्ययन करने के पश्चात आप:

- उपभोग फलन (Consumption Function) की अवधारणा को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना एवं उसकी व्याख्या करना।
- औसत उपभोग प्रवृत्ति (Average Propensity to Consume - APC) तथा सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume - MPC) के अर्थ, गणना तथा अंतर को समझना।
- कीन्स द्वारा प्रतिपादित उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम (Psychological Law of Consumption) को समझना और उसके अर्थव्यवस्था पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
- उपभोग फलन की तकनीकी विशेषताओं (Technical Attributes) को पहचानना और उनका व्यवहारिक महत्त्व समझना।
- उपभोग व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न निर्धारकों (Determinants) की पहचान करना और उनका विश्लेषण करना।
- उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिए अपनाए जाने वाले उपायों का अध्ययन करना एवं उनकी प्रासंगिकता को समझना।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में हमने राष्ट्रीय आय की अवधारणा, उसके मापन की विधियाँ, तथा चक्रीय आय प्रवाह के विभिन्न मॉडलों का विस्तार से अध्ययन किया था। वहाँ यह स्पष्ट हुआ था कि किसी अर्थव्यवस्था में उत्पन्न की गई आय

किस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों — जैसे परिवार, फर्म, सरकार और विदेश — के बीच प्रवाहित होती है और किस प्रकार उत्पादन, आय और व्यय परस्पर रूप से जुड़े होते हैं। अब, राष्ट्रीय आय के इस समग्र चित्र को और गहराई से समझने के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि इस आय का उपयोग किस प्रकार किया जाता है, विशेषतः उसमें से कितना भाग उपभोग (Consumption) में व्यय किया जाता है और कितना बचाया जाता है।

यहीं से उपभोग फलन (Consumption Function) की भूमिका आरंभ होती है। समष्टि अर्थशास्त्र में उपभोग का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उपभोग व्यय राष्ट्रीय आय का सबसे बड़ा घटक होता है। लोगों की आय में परिवर्तन होने पर उनका उपभोग किस प्रकार बदलता है — यह जानना आर्थिक स्थिरता और नीति-निर्माण दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह अध्याय इसी संदर्भ में कीन्स (Keynes) द्वारा प्रतिपादित उपभोग फलन की अवधारणा और उसके मनोवैज्ञानिक नियम को विस्तार से प्रस्तुत करता है।

कीन्स का उपभोग फलन यह प्रस्तावित करता है कि उपभोग, आय का एक फलन (Function) है, अर्थात् जैसे-जैसे व्यक्ति की आय बढ़ती है, वैसे-वैसे उसका उपभोग भी बढ़ता है, लेकिन पूरी आय में से नहीं। इस व्यवहारिक सिद्धांत को सांख्यिकीय रूप में औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) के माध्यम से मापा जाता है, जो यह दर्शाते हैं कि उपभोक्ता अपनी आय का कितना भाग उपभोग पर खर्च करते हैं और कितना भाग बचाते हैं।

इस अध्याय में हम उपभोग फलन की तकनीकी विशेषताओं, MPC के महत्त्व, उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम, उसके निहितार्थ, तथा उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न निर्धारकों का गहन अध्ययन करेंगे। साथ ही, यह भी देखा जाएगा कि किस प्रकार से उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने के उपाय समष्टि अर्थव्यवस्था को सक्रिय और संतुलित बनाए रखने में सहायक हो सकते हैं।

इस प्रकार, यह अध्याय राष्ट्रीय आय के मापन से आगे बढ़ते हुए हमें यह समझने में सहायता करेगा कि आय का उपभोग किस प्रकार अर्थव्यवस्था के समग्र व्यवहार को प्रभावित करता है, और यह कि उपभोग से संबंधित प्रवृत्तियाँ आर्थिक गतिविधियों की दिशा और गति को किस प्रकार निर्धारित करती हैं।

3.2 उपभोग फलन: कीन्सियन विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण उपकरण (Consumption Function: An Important Tool of Keynesian Analysis)

जब हम कीन्सियन अर्थशास्त्र की बात करते हैं, तो उसमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण विचार आता है — **उपभोग**

फलन। यह वह विचार है जो हमें यह समझने में मदद करता है कि किसी व्यक्ति या समाज की **आय** में बदलाव होने पर वह **उपभोग** (consumption) कितना बढ़ाता है या घटाता है।

कीन्स ने यह बताया कि उपभोग और आय के बीच एक सीधा संबंध होता है, जिसे हम इस रूप में लिख सकते हैं:

$$C = f(Y) \text{ .....(3.1)}$$

यहाँ C उपभोग को और Y आय को दर्शाता है। मतलब यह कि जैसे-जैसे लोगों की आय बदलती है, वैसे-वैसे उनका उपभोग भी बदलता है। इस मॉडल में C **एक आश्रित चर** (dependent variable) है और Y **एक स्वतंत्र चर** (independent variable), यानी उपभोग पूरी तरह से आय पर निर्भर करता है।

लेकिन यह पूरा विश्लेषण एक **महत्वपूर्ण शर्त** पर आधारित होता है, जिसे हम कहते हैं **सिटेरिस पैरिबस** (ceteris paribus) — यानी "अन्य सभी चीजें समान रहें"। इसका मतलब यह हुआ कि जब हम उपभोग और आय के बीच संबंध को देख रहे हैं, तब हम बाकी सभी कारकों (जैसे ब्याज दर, उपभोक्ता की पसंद, मूल्य स्तर आदि) को स्थिर मानते हैं।

अब सोचिए कि अगर हम इस विचार को और ठोस तरीके से समझना चाहें, तो हमें एक **उपभोग अनुसूची** (consumption schedule) की ज़रूरत पड़ेगी। इसमें हम दिखाते हैं कि अलग-अलग आय स्तरों पर लोग कितनी राशि खर्च करते हैं। उदाहरण के लिए, अगर किसी की आय शून्य है — जैसे कि किसी **मंदी** (recession) की स्थिति में — तो भी वह **पिछली बचतों** से कुछ न कुछ खर्च करता है, ताकि ज़रूरत की चीजें खरीदी जा सकें। मान लो उस समय उपभोग ₹70 करोड़ है जबकि आय शून्य है — इसका मतलब है कि लोग ₹70 करोड़ की **ऋणात्मक बचत** (dis-saving) कर रहे हैं।

अब जैसे-जैसे आय बढ़ती है, उपभोग भी बढ़ता है — लेकिन ध्यान दो, यह बढ़ोतरी **बराबर नहीं होती**। किसी बिंदु पर जाकर, आय और उपभोग दोनों बराबर हो जाते हैं — इसे हम कहते हैं **ब्रेक-ईवन बिंदु** (Break-even Point)। उस बिंदु के बाद, आय तो और बढ़ती है, लेकिन उपभोग **उतनी तेज़ी से नहीं** बढ़ता। इस फर्क को हम चित्र में देख सकते हैं।

अब ज़रा चित्र की कल्पना करो — क्षैतिज अक्ष (horizontal axis) पर **आय** (Y) और लंबवत अक्ष (vertical axis) पर **उपभोग** (C) को मापा गया है। चित्र में एक 45 डिग्री की रेखा खींची गई है — इसे कहते हैं **एकरूपता**

रेखा (unity line)। इस पर हर बिंदु पर C = Y होता है यानी उपभोग = आय।

अब उपभोग फलन को दिखाने वाली एक वक्र C है जो बिंदु B के बाद उस 45 डिग्री रेखा से नीचे रहती है, सिवाय एक बिंदु के जहाँ दोनों बराबर हो जाते हैं (Break-even point)। जब आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ता है, लेकिन धीरे-धीरे। आय और उपभोग के बीच का जो अंतर है — यानी आय का वह हिस्सा जो खर्च नहीं होता — वही **बचत** (savings) है।

Figure 3.1

TABLE I : CONSUMPTION SCHEDULE

Income *(Rs Crores)*	Consumption
(*Y*)	$C = f(Y)$
0	20
60	70
120	120
180	170
240	220
300	270
360	320

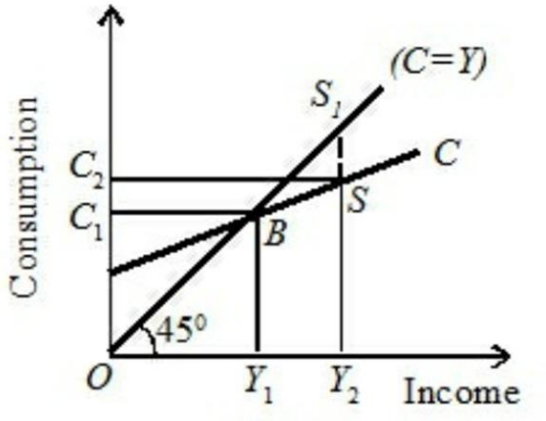

उदाहरण के लिए, अगर आय में बढ़ोतरी Y_1 से Y_2 तक है, और उपभोग बढ़ता है C_1 से C_2 तक, तो $C_1C_2 < Y_1Y_2$ होगा — यानी उपभोग की दर आय से कम बढ़ी है। और जो अंतर बचता है, उसे हम SS_1 द्वारा दर्शाते हैं।

इसलिए, उपभोग फलन से सिर्फ यह नहीं पता चलता कि लोग कितना खर्च कर रहे हैं, बल्कि यह भी दिखता है कि वे **कितना बचा रहे हैं**। यही वजह है कि 45 डिग्री की रेखा को **शून्य-बचत रेखा** (zero-saving line) कहा जाता है — इस पर आय और उपभोग बराबर होते हैं यानी बचत शून्य होती है। जैसे-जैसे उपभोग वक्र इस रेखा से नीचे जाता है, बचत बढ़ती है।

3.2.1 उपभोग फलन के गुण या तकनीकी विशेषताएँ (Properties or Technical Attributes of the Consumption Function)

उपभोग फलन की दो प्रमुख तकनीकी विशेषताएँ होती हैं: (i) औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC – Average Propensity to Consume), और (ii) सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC – Marginal Propensity to Consume)। ये दोनों उपभोग-आय संबंध को गहराई से समझने में मदद करती हैं।

(1) **औसत उपभोग प्रवृत्ति** (APC)

औसत उपभोग प्रवृत्ति को किसी भी निश्चित आय स्तर पर उपभोग व्यय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जाता है:

$$APC = C / Y \quad \text{.....(3.2)}$$

जहाँ C उपभोग व्यय है और Y आय है। यह हमें बताता है कि कुल आय का कितना हिस्सा उपभोग पर खर्च किया जा रहा है। APC को हम प्रतिशत या अनुपात दोनों रूपों में व्यक्त कर सकते हैं। तालिका II में यह दिखाया गया है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, APC घटता जाता है। इसका कारण यह है कि आय बढ़ने पर व्यक्ति आय का कम अनुपात उपभोग पर खर्च करता है और ज्यादा बचत करता है। यही वजह है कि APC के उलट औसत बचत प्रवृत्ति (APS) बढ़ती है। और चूंकि कुल आय का उपयोग या तो उपभोग में होता है या बचत में, इसलिए

$$APS = 1 - APC \quad \text{.....(3.3)}$$

का सूत्र लागू होता है।

यदि हम APC को ग्राफ में समझें, तो C वक्र पर किसी भी बिंदु पर उसका मापन किया जा सकता है। चित्र 3.2 के पैनल (A) में, बिंदु R हमें APC को दिखाता है, जो OC_1/OY_1 के बराबर है। C वक्र का दाहिनी ओर चपटा होते जाना इस बात को दर्शाता है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, APC घटता जाता है, यानी हर अतिरिक्त आय का छोटा हिस्सा उपभोग में जाता है।

Figure 3.2

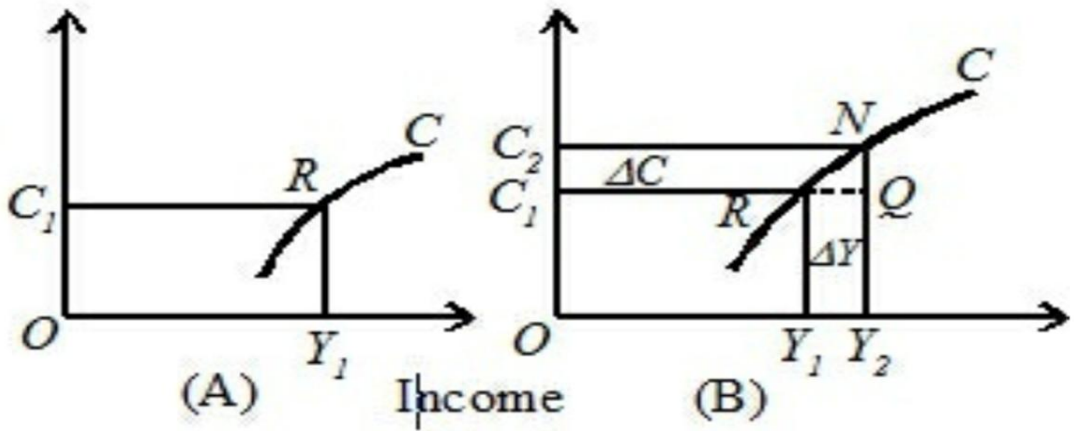

(2) **सीमांत उपभोग प्रवृत्ति** (MPC)

सीमांत उपभोग प्रवृत्ति को उपभोग में परिवर्तन और आय में परिवर्तन के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसे इस प्रकार लिखा जाता है:

$$MPC = \Delta C / \Delta Y \text{.....(3.4)}$$

जहाँ ΔC उपभोग में परिवर्तन और ΔY आय में परिवर्तन है। इसका अर्थ यह है कि आय में जो परिवर्तन होता है, उसमें से कितना हिस्सा उपभोग में परिवर्तित होता है। उदाहरण के लिए, यदि आय में ₹60 करोड़ की वृद्धि होती है और उपभोग में ₹50 करोड़ की वृद्धि होती है, तो MPC होगा:

$$MPC = 50 / 60 = 0.83$$

अर्थात् 83 प्रतिशत। इसका अर्थ यह है कि आय के प्रत्येक ₹100 की वृद्धि में से ₹83 उपभोग पर खर्च किए जाते हैं और ₹17 बचत में जाते हैं। इस प्रकार सीमांत बचत प्रवृत्ति (MPS) होगी:

$$MPS = 1 - MPC = 0.17 \text{.....(3.5)}$$

MPC के स्थिर रहने की बात तालिका II के कॉलम 5 और 6 में स्पष्ट दिखाई देती है।

ग्राफ में MPC को C वक्र की ढलान से मापा जाता है। चित्र 2 के पैनल (B) में, यह ढलान NQ/RQ के रूप में प्रदर्शित है, जहाँ NQ उपभोग में परिवर्तन (ΔC) और RQ आय में परिवर्तन (ΔY) है। इसका अनुपात MPC को दर्शाता है।

3.2.2 MPC का महत्व (Significance of MPC)

MPC दरअसल APC में परिवर्तन की दर है। जब आय बढ़ती है तो MPC में गिरावट होती है, लेकिन यह अभी भी APC से अधिक रहता है। और जब आय घटती है, तो MPC बढ़ जाता है और APC भी बढ़ता है, लेकिन MPC की तुलना में कम दर से। यह परिवर्तन विशेष रूप से चक्रीय उतार-चढ़ाव (cyclical fluctuations) के समय देखा जा सकता है, जैसे मंदी और विस्तार के दौर में। अल्पकालिक में MPC में परिवर्तन देखा जा सकता है और इस अवधि में आमतौर पर MPC < APC होता है।

कीन्सियन सिद्धांत में MPC को बहुत महत्व दिया गया है क्योंकि यह विश्लेषण अल्पकालिक होता है, जबकि APC का उपयोग दीर्घकालिक विश्लेषण में किया जाता है। उत्तर-कीन्सियन अर्थशास्त्रियों ने यह पाया है कि दीर्घकालिक में APC और MPC का मान एक-दूसरे के बराबर हो जाते हैं और यह लगभग 0.9 (90%) होता है।

कीन्स का विश्लेषण मुख्य रूप से MPC पर केंद्रित था, क्योंकि उनके अनुसार जब आय बढ़ती है, तो पूरा हिस्सा उपभोग पर खर्च नहीं होता है, अर्थात MPC का मान हमेशा धनात्मक (positive) लेकिन एक (unity) से कम होता है। इसी तरह जब आय घटती है, तो उपभोग व्यय उसी अनुपात में नहीं घटता, बल्कि उसमें कमी की दर कम होती है, और वह कभी शून्य नहीं होता।

TABLE II

(Rs. Crores)

(1) Income Y	(2) Consump-tion(C)	(3) APC=C/Y	(4) APS=S/Y (1-APC)	(5) MPC= ΔC/ΔY	(6) MPS=ΔS/ΔY (1-MPC)
120	120	$\frac{120}{120}$ = 1 or 100%	0	—	—
180	170	$\frac{170}{180}$ = 0.92 or 0.92%	0.08	$\frac{50}{60}$ = 0.83	0.17
240	220	$\frac{220}{240}$ = 0.91 or 91%	0.09	$\frac{50}{60}$ = 0.83	0.17
300	270	$\frac{270}{300}$ = 0.90 or 90%	0.10	$\frac{50}{60}$ = 0.82	0.17
360	320	$\frac{320}{360}$ = 0.88 or 88%	0.12	$\frac{50}{60}$ = 0.83 or 83%	0.17

कीन्स की यह परिकल्पना कि 0 < MPC < 1, विश्लेषणात्मक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह इस बात को न केवल स्पष्ट करता है कि उपभोग आय का बढ़ता हुआ फलन है, बल्कि यह भी बताता है कि उपभोग आय में वृद्धि की तुलना में धीमी गति से बढ़ता है। यही परिकल्पना दो महत्वपूर्ण पहलुओं को समझने में मदद करती है:

(a) यह सामान्य अति-उत्पादन या 'अल्प-रोजगार संतुलन' (underemployment equilibrium) की संभावना

को सिद्ध करती है।

(b) यह किसी अत्यधिक औद्योगिक विकसित अर्थव्यवस्था की सापेक्ष स्थिरता को भी स्पष्ट करती है।

इन दोनों ही स्थितियों का आधार यह तथ्य है कि आय और उपभोग के बीच का अंतर इतना बड़ा हो सकता है कि निवेश द्वारा उसे पूरी तरह से भरा नहीं जा सकता, जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था अल्प-रोजगार की स्थिति में फँसी रह सकती है। इसलिए MPC का वास्तविक महत्व इस बात में निहित है कि **वांछित आय स्तर को बनाए रखने के लिए निवेश को उपभोग की कमी को भरना होगा।**

इसके अतिरिक्त, MPC का महत्व गुणक सिद्धांत (Multiplier Theory) में भी है। MPC जितना अधिक होगा, गुणक भी उतना ही अधिक होगा। और इसके विपरीत, यदि MPC कम होगा, तो गुणक का मान भी कम होगा। सामाजिक दृष्टि से देखें, तो MPC गरीब लोगों में अधिक होता है क्योंकि वे अपनी अधिकतर आय को उपभोग पर खर्च कर देते हैं, जबकि धनी लोग अधिक आय का एक हिस्सा बचत के रूप में रखते हैं। यही कारण है कि अल्पविकसित देशों में MPC अधिक होता है और विकसित देशों में कम।

3.3 कीन्स का उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम (Keynes's Psychological Law of Consumption)

कीन्स ने उपभोग के व्यवहार को समझने के लिए एक **मौलिक मनोवैज्ञानिक नियम** प्रतिपादित किया, जो उपभोग फलन (consumption function) की नींव बनाता है। उन्होंने लिखा, *"मौलिक मनोवैज्ञानिक नियम जिस पर हम मानव स्वभाव के अपने ज्ञान से और अनुभव के विस्तृत तथ्यों से दोनों तरह से बड़े विश्वास के साथ निर्भर करने के हकदार हैं, वह यह है कि लोग सामान्य तौर पर और औसत रूप से अपनी आय बढ़ने पर अपना उपभोग बढ़ाते हैं, लेकिन उनकी आय में वृद्धि जितनी नहीं।"* इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि जब लोगों की आय बढ़ती है, तो वे उपभोग पर अधिक खर्च जरूर करते हैं, लेकिन वह खर्च उनकी आय में हुई वृद्धि से कम होता है। यानी, उपभोग में भी बढ़ोतरी होती है लेकिन वह **कम अनुपात** में होती है।

इस नियम की मान्यताएं (Assumptions of the Law)

कीन्स का यह नियम कुछ **महत्वपूर्ण धारणाओं** पर आधारित है, जो इस सिद्धांत की स्थिरता और प्रयोज्यता को स्पष्ट करती हैं:

1. **स्थिर मनोवैज्ञानिक और संस्थागत परिसरों की धारणा**:
   इस नियम की पहली धारणा यह है कि उपभोग पर प्रभाव डालने वाले **मनोवैज्ञानिक और सामाजिक**

परिसर स्थिर रहते हैं। इसमें आय का वितरण, लोगों के स्वाद, आदतें, सामाजिक रीति-रिवाज, मूल्य स्तिथि, जनसंख्या की गति आदि शामिल हैं। चूंकि अल्पकालिक में ये कारक नहीं बदलते, इसलिए यह माना जाता है कि उपभोग केवल आय पर निर्भर करता है।

2. **सामान्य परिस्थितियों की उपस्थिति की धारणा**:
   कीन्स का यह नियम उन परिस्थितियों में ही लागू होता है, जो **सामान्य** होती हैं। अगर कोई देश युद्ध, क्रांति या गंभीर मुद्रास्फीति जैसी असामान्य परिस्थितियों से गुजर रहा हो, तो यह नियम लागू नहीं होता। ऐसी दशाओं में लोग अपनी पूरी आय को उपभोग में खर्च कर सकते हैं और बचत नहीं करते।

3. **अहस्तक्षेपवादी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की धारणा**:
   यह नियम उस **पूंजीवादी प्रणाली** में मान्य है जहाँ **सरकार उपभोग या आय पर हस्तक्षेप नहीं करती**। लोग स्वतंत्र रूप से आय अर्जित करते हैं और खर्च करते हैं। लेकिन अगर अर्थव्यवस्था समाजवादी है या सरकार द्वारा नियंत्रित है — जैसे राज्य द्वारा उपभोग सीमित हो, तो यह नियम लागू नहीं होता।

नियम के प्रस्ताव (Propositions of the Law)

इस नियम को तीन मुख्य प्रस्तावों में विभाजित किया गया है, जो आपस में संबंधित हैं:

1. **पहला प्रस्ताव** यह कहता है कि जब आय में वृद्धि होती है, तो उपभोग व्यय भी बढ़ता है — लेकिन **कम मात्रा में**। इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे लोगों की आय बढ़ती है, उनकी ज़रूरतें एक-एक करके पूरी होती जाती हैं। परिणामस्वरूप, उन्हें उपभोक्ता वस्तुओं पर पहले जितना खर्च करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि उपभोग घटता है — बल्कि उपभोग बढ़ता है, लेकिन आय की वृद्धि से **कम अनुपात** में।

2. **दूसरे प्रस्ताव** के अनुसार, बढ़ी हुई आय को व्यक्ति **उपभोग और बचत के बीच किसी अनुपात में बाँटता है**। चूंकि पूरी आय उपभोग पर नहीं खर्च होती, इसलिए बचत स्वाभाविक रूप से होती है। अतः हर अतिरिक्त आय का कुछ हिस्सा बचाया जाता है, और कुछ उपभोग में खर्च किया जाता है।

3. **तीसरे प्रस्ताव** में कहा गया है कि आय में वृद्धि से **उपभोग और बचत दोनों बढ़ते हैं**। इसका अर्थ है कि जैसे ही आय बढ़ती है, तो उपभोग में भी वृद्धि होती है और बचत में भी। न तो उपभोग घटता है और न ही बचत — दोनों में वृद्धि होती है।

TABLE III

(Rs Crores)

Income (Y)	*Consumption (C)*	*Savings (S=Y—C)*
0	20	—20
60	70	—10
120	120	0
180	170	10
240	220	20
300	270	30
360	320	40

इन तीनों प्रस्तावों को एक **काल्पनिक तालिका** III से समझाया गया है, जिसमें दिखाया गया है कि जब आय ₹60 करोड़ की वृद्धि के साथ क्रमशः ₹180, ₹240, ₹300 और ₹360 करोड़ होती है, तो उपभोग ₹170, ₹220, ₹270 और ₹320 करोड़ हो जाता है। यानी हर बार उपभोग ₹50 करोड़ से बढ़ता है, जबकि आय ₹60 करोड़ से। इससे स्पष्ट होता है कि **उपभोग में वृद्धि आय में वृद्धि से कम है**, जो कि पहले प्रस्ताव की पुष्टि करता है।

इसके अलावा, हर ₹60 करोड़ की अतिरिक्त आय को ₹50 करोड़ के उपभोग और ₹10 करोड़ की बचत के रूप में विभाजित किया जाता है, जो दूसरे प्रस्ताव को सिद्ध करता है। तीसरे प्रस्ताव की पुष्टि इस बात से होती है कि जैसे-जैसे आय बढ़ रही है, वैसे-वैसे उपभोग और बचत दोनों ही बढ़ रहे हैं — उपभोग ₹120 से ₹320 करोड़ तक और बचत ₹0 से ₹40 करोड़ तक।

रेखाचित्रात्मक व्याख्या (Diagrammatic Explanation)

इस नियम के तीनों प्रस्तावों को **चित्र** 3.3 में सरलता से समझाया गया है। इसमें आय को क्षैतिज अक्ष पर और उपभोग तथा बचत को लंबवत अक्ष पर दर्शाया गया है। चित्र में C उपभोग वक्र है और 45° रेखा वह रेखा है जहाँ उपभोग = आय होता है।

1. **पहले प्रस्ताव** के अनुसार, जब आय OY_0 से बढ़कर OY_1 हो जाती है, तो उपभोग भी BY_0 से बढ़कर C_1Y_1 हो जाता है, लेकिन यह वृद्धि पूरी आय की वृद्धि से कम होती है। यह A_1C_1 द्वारा दर्शाया जाता है, जो यह दिखाता है कि $C_1Y_1 < A_1Y_1$।
2. **दूसरे प्रस्ताव** के अनुसार, जब आय OY_1 और OY_2 तक पहुँचती है, तो उपभोग और बचत में क्रमशः C_1Y_1 और C_2Y_2 तथा A_1C_1 और A_2C_2 के रूप में विभाजन होता है।

3. **तीसरे प्रस्ताव** को चित्र में इस रूप में समझाया गया है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, उपभोग (C_2Y_2 > C_1Y_1) और बचत (A_2C_2 > A_1C_1) दोनों में भी वृद्धि होती है। C वक्र के नीचे के क्षेत्र और C वक्र व 45° रेखा के बीच की दूरी बढ़ती बचत को दर्शाती है।

Figure 3.3

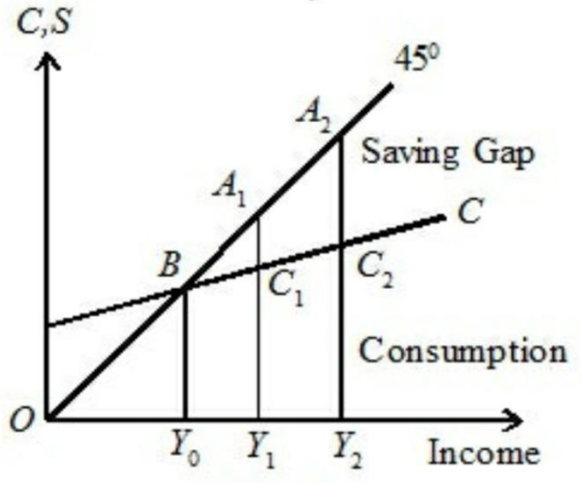

इन सभी बातों का सार **प्रोफेसर कुरिहारा** के इस कथन में मिल जाता है कि "कीन्स का नियम इन धारणाओं पर आधारित है, जिसे सामान्य अल्पकालिक में मुक्त उपभोक्ताओं के वास्तविक समष्टि-व्यवहार के मोटे अनुमान के रूप में माना जा सकता है।"

3.3.1 कीन्स के नियम के निहितार्थ या उपभोग फलन का महत्व (Implications of Keynes's Law or Importance of the Consumption Function)

कीन्स के मनोवैज्ञानिक नियम के निहितार्थ या उपभोग फलन का महत्व का विश्लेषण करने पर हमें यह स्पष्ट होता है कि यह नियम उपभोग फलन की अहमियत को उजागर करता है क्योंकि उपभोग फलन इसी नियम पर आधारित होता है। इसके कई महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं, जिन्हें विस्तार से समझना आवश्यक है।

1. **से का नियम का अमान्य होना** (Invalidation of Say's Law):

से का नियम कहता है कि आपूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न करती है, इसलिए सामान्य अति-उत्पादन या बेरोजगारी संभव नहीं है। लेकिन कीन्स का मनोवैज्ञानिक नियम इस धारणा को चुनौती देता है। यह बताता है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, उपभोग भी बढ़ता है परन्तु आय की वृद्धि के अनुपात में कम। इसका मतलब यह है कि उत्पादन

के बराबर आय होने पर भी पूरा उत्पादित माल बाजार में खर्च नहीं होता। इससे मांग की कमी होती है, बाजार में वस्तुओं का अधिक भंडार बनता है, जिससे उत्पादक उत्पादन कम कर देते हैं और बेरोजगारी फैलती है।

2. **राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता** (Need for State Intervention):

चूंकि कीन्स के अनुसार अर्थव्यवस्था स्व-समायोजित नहीं होती, इसलिए बेरोजगारी और अति-उत्पादन जैसी समस्याओं से बचने के लिए राज्य के हस्तक्षेप की जरूरत होती है। से का नियम अहस्तक्षेपवादी नीति पर आधारित है, जिसे कीन्स का नियम खंडित करता है। इसलिए, आर्थिक अस्थिरता को दूर करने के लिए सरकार को अर्थव्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए ताकि मांग और उत्पादन का संतुलन बन सके।

3. **निवेश का महत्वपूर्ण महत्व** (Crucial Importance of Investment):

कीन्स का नियम यह बताता है कि लोग अपनी आय की पूरी वृद्धि को उपभोग पर खर्च नहीं करते। आय और उपभोग के बीच यह अंतर निवेश द्वारा भरा जाता है। यदि निवेश अपर्याप्त रहता है, तो उत्पादन और रोजगार घटने लगेंगे। इसलिए निवेश अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने और बेरोजगारी दूर करने के लिए आवश्यक है। अल्पकालिक में उपभोग स्थिर रहता है, इसलिए निवेश की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है।

4. **अल्प-रोजगार संतुलन का अस्तित्व** (Existence of Underemployment Equilibrium):

कीन्स का मनोवैज्ञानिक नियम यह भी बताता है कि अर्थव्यवस्था में जो संतुलन स्तर होता है, वह हमेशा पूर्ण रोजगार का नहीं बल्कि अल्प-रोजगार का होता है। इसका कारण है उपभोग की आय के अनुपात में कम वृद्धि, जिससे कुल मांग कम रह जाती है। हालांकि, यदि सरकार निवेश के माध्यम से इस अंतर को पूरा करती है, तो अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त कर सकती है।

5. **पूंजी की सीमांत दक्षता की घटती प्रवृत्ति** (Declining Tendency of the Marginal Efficiency of Capital):

जब आय बढ़ती है पर उपभोग अपेक्षित रूप से नहीं बढ़ता, तो वस्तुओं की मांग घटती है और बाजार में माल का भंडार बढ़ जाता है। इससे उत्पादन घटता है और पूंजीगत वस्तुओं की मांग भी कम हो जाती है। यह पूंजी की सीमांत दक्षता में गिरावट लाता है। इस गिरावट को रोकने के लिए उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि आवश्यक होती है, जो दीर्घकालिक में संभव है।

6. **स्थायी अति-बचत या अल्प-निवेश अंतराल का खतरा** (Danger of Permanent Over-saving or Under-investment Gap):

कीन्स का नियम बताता है कि जैसे-जैसे लोग अमीर होते जाते हैं, वे अधिक बचत करते हैं और उपभोग कम करते हैं। इससे मांग घटती है और निवेश में गिरावट आती है। इस दीर्घकालिक प्रवृत्ति को 'दीर्घकालिक ठहराव' कहा जाता है। अर्थव्यवस्था में इस तरह का स्थायी अति-बचत और अल्प-निवेश अंतराल विकास में बाधा उत्पन्न करता है।

7. **आय संचरण की अद्वितीय प्रकृति** (Unique Nature of Income Propagation):

कीन्स का मनोवैज्ञानिक नियम गुणक सिद्धांत की व्याख्या करता है। जब अर्थव्यवस्था में निवेश होता है, तो यह आय की क्रमिक वृद्धि को जन्म देता है। यह इस तथ्य पर आधारित है कि लोग अपनी आय की पूरी वृद्धि को उपभोग पर खर्च नहीं करते। गुणक का मान सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) पर निर्भर करता है, यानी गुणक = 1 / (1 − MPC)। MPC जितना अधिक होगा, गुणक भी उतना ही बड़ा होगा।

8. **व्यापार चक्रों के मोड़ बिंदुओं की व्याख्या** (Explanation of the Turning Points of the Business Cycles):

कीन्स का नियम यह भी समझाता है कि पूर्ण रोजगार स्तर तक पहुँचने से पहले मंदी क्यों शुरू होती है। लोग अपनी आय की पूरी वृद्धि को उपभोग में नहीं लगाते, जिससे मांग कम होती है, उत्पादन घटता है, बेरोजगारी बढ़ती है, और पूंजी की सीमांत दक्षता गिरती है। मंदी के दौरान उपभोग में गिरावट आय की गिरावट से कम होती है, जिससे जब अतिरिक्त वस्तुओं का भंडार खत्म होता है तो पुनरुत्थान शुरू होता है। इसका अर्थ है कि अर्थव्यवस्था मंदी से उबरती है और विकास की ओर बढ़ती है।

इस प्रकार, कीन्स का मनोवैज्ञानिक नियम उपभोग, बचत, निवेश, राज्य की भूमिका और आर्थिक चक्रों को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह हमें बताता है कि आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए किस प्रकार आर्थिक नीतियाँ बनानी चाहिए और किन पहलुओं पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

3.4 उपभोग फलन के निर्धारक (Determinants of the Consumption Function)

कीन्स ने दो प्रमुख कारकों का उल्लेख किया है जो उपभोग फलन को प्रभावित करते हैं और उसकी ढलान और स्थिति को निर्धारित करते हैं। वे हैं (i) व्यक्तिपरक कारक **(subjective factors)**, और (ii) वस्तुनिष्ठ कारक **(objective factors)**।

व्यक्तिपरक कारक आर्थिक प्रणाली के अंतर्जात **(endogenous)** या आंतरिक होते हैं। इनमें मानव स्वभाव की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ, सामाजिक प्रथाएँ और संस्थाएँ, और सामाजिक व्यवस्थाएँ शामिल हैं। वे "असामान्य या क्रांतिकारी परिस्थितियों को छोड़कर अल्पकालिक में भौतिक परिवर्तन से गुजरने की संभावना नहीं रखते हैं।" इसलिए, वे C वक्र की ढलान और स्थिति को निर्धारित करते हैं जो अल्पकालिक में काफी स्थिर होती है।

वस्तुनिष्ठ कारक आर्थिक प्रणाली के बहिर्जात **(exogenous)** या बाहरी होते हैं। इसलिए, वे तेजी से परिवर्तनों से गुजर सकते हैं और उपभोग फलन (अर्थात C वक्र) में महत्वपूर्ण बदलाव का कारण बन सकते हैं।

व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ कारकों पर नीचे चर्चा की गई है।

व्यक्तिपरक कारक (Subjective Factors)

कीन्स के व्यक्तिपरक कारक मूल रूप से उपभोग फलन के स्वरूप (अर्थात् ढलान और स्थिति) को रेखांकित और निर्धारित करते हैं। जैसा कि ऊपर पहले ही उल्लेख किया गया है, व्यक्तिपरक कारक मानव स्वभाव की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ, सामाजिक प्रथाएँ और संस्थाएँ, विशेष रूप से वेतन और लाभांश भुगतान और प्रतिधारित आय के संबंध में व्यावसायिक चिंताओं के व्यवहार पैटर्न, और आय के वितरण को प्रभावित करने वाली सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। व्यक्तिपरक कारकों के दो उद्देश्य हैं: व्यक्तिगत **(individual)** और व्यवसायिक **(business)**।

1. *व्यक्तिगत उद्देश्य* (Individual Motives)

सबसे पहले, आठ उद्देश्य हैं "जो व्यक्तियों को अपनी आय से खर्च करने से रोकते हैं।" वे हैं: (i) अप्रत्याशित आकस्मिकताओं के लिए आरक्षित निधि बनाने की इच्छा; (ii) प्रत्याशित भविष्य की जरूरतों, यानी वृद्धावस्था, बीमारी, आदि के लिए प्रावधान करने की इच्छा; (iii) ब्याज और मूल्यवृद्धि के माध्यम से बढ़ी हुई भविष्य की आय का आनंद लेने की इच्छा; (iv) जीवन स्तर में सुधार के लिए धीरे-धीरे बढ़ते व्यय का आनंद लेने की इच्छा; (v) स्वतंत्रता और कार्य करने की शक्ति का अनुभव करने की इच्छा; (vi) सट्टा या व्यावसायिक परियोजनाओं को पूरा करने के लिए एक "मास डी मैनयूवर" (कार्यकारी पूंजी) सुरक्षित करने की इच्छा; (vii) एक बड़ा भाग्य छोड़ने की इच्छा; (viii) विशुद्ध रूप से कंजूस प्रवृत्ति को संतुष्ट करने की इच्छा।

2. व्यावसायिक उद्देश्य (Business Motives)

व्यक्तिपरक कारक व्यावसायिक निगमों और सरकारों के व्यवहार से भी प्रभावित होते हैं। कीन्स ने उनके हिस्से पर संचय के लिए चार उद्देश्यों को सूचीबद्ध किया है: (i) उद्यम **(enterprise)**, बड़े काम करने और विस्तार करने की इच्छा; (ii) तरलता **(liquidity)**, आपात स्थितियों और कठिनाइयों को सफलतापूर्वक पूरा करने की इच्छा; (iii) आय वृद्धि **(income raise)**, बड़ी आय सुरक्षित करने और सफल प्रबंधन दिखाने की इच्छा; (iv) वित्तीय विवेक **(financial prudence)**, मूल्यह्रास और अप्रचलन के खिलाफ पर्याप्त वित्तीय संसाधन प्रदान करने और ऋण चुकाने की इच्छा।

ये कारक अल्पकालिक में स्थिर रहते हैं और उपभोग फलन को स्थिर रखते हैं।

वस्तुनिष्ठ कारक (Objective Factors)

कीन्स द्वारा निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ कारक दिए गए हैं।

1. मजदूरी स्तर में परिवर्तन (Changes in the Wage Level)

यदि मजदूरी दर बढ़ती है, तो उपभोग फलन ऊपर की ओर बढ़ता है। उच्च उपभोग प्रवृत्ति वाले श्रमिक अपनी बढ़ी हुई आय से अधिक खर्च करते हैं और इससे C वक्र ऊपर की ओर बढ़ता है। हालांकि, यदि मजदूरी दर में वृद्धि मूल्य स्तर में आनुपातिक रूप से अधिक वृद्धि के साथ होती है, तो वास्तविक मजदूरी दर गिर जाएगी और यह C वक्र को नीचे की ओर ले जाएगी। मजदूरी दर में कटौती से आय, रोजगार और उत्पादन में गिरावट के कारण समुदाय का उपभोग फलन भी कम हो जाएगा। इससे वक्र नीचे की ओर खिसक जाएगा।

2. अप्रत्याशित लाभ या हानि (Windfall Gains or Losses)

शेयर बाजार में अप्रत्याशित परिवर्तन जिससे लाभ या हानि होती है, उपभोग फलन को ऊपर या नीचे की ओर खिसका देते हैं। उदाहरण के लिए, 1925 के बाद अमेरिकी अर्थव्यवस्था में शेयर बाजार में उछाल के कारण हुए अभूतपूर्व अप्रत्याशित लाभ से शेयरधारकों के उपभोग व्यय में बढ़ी हुई आय के लगभग अनुपात में वृद्धि हुई और परिणामस्वरूप उपभोग फलन ऊपर की ओर खिसक गया। इसी तरह, शेयर बाजार में अप्रत्याशित नुकसान C वक्र को नीचे की ओर खिसका देते हैं।

3. राजकोषीय नीति में परिवर्तन (Changes in the Fiscal Policy)

कराधान और सार्वजनिक व्यय के रूप में राजकोषीय नीति में परिवर्तन उपभोग फलन को प्रभावित करते हैं। भारी वस्तु कराधान लोगों की प्रयोज्य आय को कम करके उपभोग फलन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यही वास्तव में हुआ था जब भारी अप्रत्यक्ष कराधान, राशनिंग और मूल्य नियंत्रण के कारण उपभोग फलन नीचे की ओर खिसक गया था। दूसरी ओर, कल्याणकारी कार्यक्रमों पर सार्वजनिक व्यय के साथ प्रगतिशील कराधान की नीति आय के वितरण को बदलकर उपभोग फलन को ऊपर की ओर खिसकाती है।

4. अपेक्षाओं में परिवर्तन (Changes in Expectations)

भविष्य की अपेक्षाओं में परिवर्तन भी उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित करते हैं। यदि निकट भविष्य में युद्ध की उम्मीद है, तो लोग भविष्य की कमी और बढ़ती कीमतों की प्रत्याशा में टिकाऊ और अर्ध-टिकाऊ वस्तुओं का जमाखोरी शुरू कर देते हैं। परिणामस्वरूप, लोग अपनी वर्तमान जरूरतों से कहीं अधिक खरीदते हैं और उपभोग फलन ऊपर की ओर खिसक जाता है। इसके विपरीत, यदि यह उम्मीद की जाती है कि भविष्य में कीमतें गिरने की संभावना है, तो लोग केवल वही चीजें खरीदेंगे जो बहुत आवश्यक हैं। इससे उपभोग मांग में गिरावट आएगी और उपभोग फलन में नीचे की ओर बदलाव आएगा।

5. ब्याज दर में परिवर्तन (Changes in the Rate of Interest)

बाजार ब्याज दर में पर्याप्त परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग फलन को प्रभावित कर सकते हैं। ब्याज दर उपभोग फलन को कई तरीकों से प्रभावित कर सकती है। ब्याज दर में वृद्धि से बांडों की कीमत में गिरावट आएगी, जिससे बांडधारकों की उपभोग प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने की प्रवृत्ति होगी। इसका एक प्रकार की संपत्ति को दूसरे के लिए प्रतिस्थापित करने का प्रभाव भी हो सकता है। लोगों को बांडों में निवेश करने के बजाय बचत करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि वे फ्रिज, स्कूटर आदि जैसी टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं किराए पर खरीद प्रणाली पर खरीद रहे हैं, तो ब्याज दर बढ़ने पर वे अपनी खरीद को स्थगित करने की प्रवृत्ति रखेंगे। उन्हें किस्तों में अधिक भुगतान करना होगा और इस प्रकार उनका उपभोग फलन नीचे की ओर खिसक जाएगा। कीन्स ने लिखा, "एक लंबी अवधि में, ब्याज दर में पर्याप्त परिवर्तन संभवतः सामाजिक आदतों को काफी हद तक संशोधित करते हैं।"

इन पांच कारकों के अलावा, कीन्स ने मूल्यह्रास के संबंध में लेखांकन प्रथा में परिवर्तनों को भी सूचीबद्ध किया। इस कारक को हैन्सन ने खारिज कर दिया है, जो मानते हैं कि "यह ऐसा कारक नहीं है जिसमें अल्पकालिक में हिंसक रूप से परिवर्तन होने की उम्मीद की जा सकती है और कीन्स द्वारा इसे यहां शामिल करना एक गलती थी।" हालांकि, हम कीन्स के अनुयायियों द्वारा सूचीबद्ध कुछ अन्य वस्तुनिष्ठ कारकों को जोड़ते हैं।

6. निगमों की वित्तीय नीतियां (Financial Policies of Corporations)

आय प्रतिधारण, लाभांश भुगतान और पुनर्निवेश के संबंध में निगमों की वित्तीय नीतियां कई तरीकों से उपभोग फलन को प्रभावित करती हैं। यदि निगम अधिक पैसा आरक्षित निधि के रूप में रखते हैं, तो शेयरधारकों को लाभांश भुगतान कम होगा, इसका शेयरधारकों की आय को कम करने का प्रभाव होगा और उपभोग फलन नीचे की ओर खिसक जाएगा।

7. तरल परिसंपत्तियों का धारिता (Holding of Liquid Assets)

नकद शेष, बचत और सरकारी बांड के रूप में उपभोक्ताओं के हाथों में तरल परिसंपत्तियों की मात्रा भी उपभोग फलन को प्रभावित करती है। यदि लोग अधिक तरल परिसंपत्तियां रखते हैं तो उनमें अपनी वर्तमान आय से अधिक खर्च करने की प्रवृत्ति होगी और उपभोग प्रवृत्ति ऊपर की ओर बढ़ेगी, और इसके विपरीत। पिगू का मानना था कि मौद्रिक मजदूरी में कटौती के साथ, कीमतें गिरती हैं और ऐसी परिसंपत्तियों का वास्तविक मूल्य बढ़ता है। यह उपभोग फलन को ऊपर की ओर खिसकाता है। इसे "पिगू प्रभाव" कहा जाता है।

8. आय का वितरण (The Distribution of Income)

समुदाय में आय का वितरण भी उपभोग फलन के आकार को निर्धारित करता है। यदि अमीर और गरीब के बीच आय वितरण में बड़ी असमानताएं हैं, तो उपभोग फलन कम होता है क्योंकि अमीरों की उपभोग प्रवृत्ति कम होती है और बहुत कम आय वाले गरीब उपभोग पर अधिक खर्च करने में असमर्थ होते हैं। यदि प्रगतिशील कराधान और अन्य राजकोषीय उपायों के माध्यम से, आय और धन की असमानताओं को कम किया जाता है, तो उपभोग फलन ऊपर की ओर खिसक जाएगा क्योंकि गरीबों की आय में वृद्धि के साथ उनका उपभोग व्यय अमीरों के व्यय में कमी से अधिक बढ़ जाएगा। "इसके अलावा, यदि राजनीतिक या मानवीय कारणों से आय का वितरण महत्वपूर्ण रूप से बदल जाता है, तो उपभोक्ता आदतों में ही ऐसे बदलाव आ सकते हैं जिससे पूरे उपभोग फलन की स्थिति या आकार में स्पष्ट रूप से भिन्नता आ सकती है।"

9. बचत के प्रति दृष्टिकोण (Attitude toward Saving)

उपभोग फलन लोगों के बचत के प्रति दृष्टिकोण से भी प्रभावित होता है। यदि वे वर्तमान उपभोग की तुलना में भविष्य के उपभोग को अधिक महत्व देते हैं, तो वे अधिक बचत करने की प्रवृत्ति रखेंगे और उपभोग फलन नीचे की ओर खिसक जाएगा। इस प्रवृत्ति को राज्य द्वारा अनिवार्य जीवन बीमा, भविष्य निधि और अन्य सामाजिक बीमा योजनाओं के माध्यम से उपभोग फलन को कम रखने के लिए मजबूत किया जा सकता है। उच्च बचत वाली अर्थव्यवस्था में, उपभोग फलन कम होता है।

10. ड्यूसनबेरी परिकल्पना (Duesenberry Hypothesis)

जेम्स ड्यूसनबेरी ने उपभोग फलन को प्रभावित करने वाली एक सापेक्ष आय परिकल्पना **(relative income hypothesis)** प्रतिपादित की है। इस परिकल्पना का पहला भाग 'प्रदर्शन प्रभाव' से संबंधित है। मनुष्यों में न केवल जोन्स के साथ तालमेल बिठाने की प्रवृत्ति होती है, बल्कि जोन्स से आगे निकलने की भी प्रवृत्ति होती है, अर्थात्, लगातार उच्च उपभोग स्तर की ओर प्रयास करने और अपने धनी पड़ोसियों के उपभोग पैटर्न का अनुकरण करने और यहां तक कि उन्हें पार करने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार उपभोग प्राथमिकताएं अंतरनिर्भर **(interdependent)** हैं।

दूसरा भाग 'आय के पिछले शिखर (past peak of income)' की परिकल्पना है जो उपभोग में अल्पकालिक उतार-चढ़ाव की व्याख्या करती है। एक बार जब समुदाय एक विशेष आय स्तर और जीवन स्तर तक पहुँच जाता है, तो वह मंदी के दौरान उपभोग के निचले स्तर पर आने में अनिच्छुक होता है। उपभोग को वर्तमान बचत में कमी से बनाए रखा जाता है और इसके विपरीत। इसलिए अल्पकालिक में उपभोग फलन में कोई बदलाव नहीं होता है। जब अल्पकालिक में आय बढ़ती या घटती है तो उसी उपभोग फलन पर केवल ऊपर-नीचे की ओर आंदोलन होता है।

हम प्रोफेसर हैन्सन के साथ निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि "कुछ वस्तुनिष्ठ कारकों में काफी असामान्य या क्रांतिकारी परिवर्तनों को छोड़कर... 'दी गई आय से उपभोग करने की प्रवृत्ति' में बदलाव माध्यमिक महत्व से अधिक होने की संभावना नहीं है।"

3.5 उपभोग प्रवृत्ति बढ़ाने के उपाय (Measures to Raise the Propensity to Consume)

समाज में कुछ मनोवैज्ञानिक और संस्थागत कारकों की उपस्थिति के कारण अल्पकालिक में उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है। लेकिन जैसा कि कीन्स ने बताया है, "रोजगार केवल निवेश में वृद्धि के साथ ही बढ़ सकता है; जब तक, वास्तव में, उपभोग प्रवृत्ति में कोई बदलाव न हो।" इसलिए, उन उपायों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है जो उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखते हैं।

1. **आय का पुनर्वितरण** (Income Redistribution)

गरीबों के पक्ष में आय का पुनर्वितरण उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखता है क्योंकि निम्न आय समूहों की सीमांत उपभोग प्रवृत्ति अमीरों की तुलना में अधिक होती है। इसलिए, आय और धन को अमीरों से गरीबों में स्थानांतरित करके उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाया जा सकता है। यह राज्य द्वारा अपनी कराधान और सार्वजनिक व्यय नीतियों के माध्यम से किया जा सकता है। आय, व्यय, संपत्ति, पूंजीगत लाभ आदि पर प्रगतिशील कर **(progressive taxes)** लगाकर, राज्य गरीबों को अधिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अधिक राजस्व जुटाने में सक्षम होता है। लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे कराधान का निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

दूसरे, राज्य एक विवेकपूर्ण सार्वजनिक व्यय कार्यक्रम **(judicious public expenditure programme)** के माध्यम से गरीबों की आय बढ़ा सकता है। सार्वजनिक कार्यों को शुरू करके, यह बेरोजगारों को अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करके आय बढ़ाने की स्थिति में होता है। मुफ्त शिक्षा, मुफ्त दोपहर का भोजन, मुफ्त स्वास्थ्य सेवाएं, कम किराए वाले आवास आदि का प्रावधान अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिकों की आय बढ़ाने में मदद करता है और उनके उपभोग व्यय को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखता है। राज्य द्वारा किए गए ऐसे सामाजिक व्यय श्रमिकों की दक्षता भी बढ़ाते हैं, जिससे बदले में उनकी मजदूरी में वृद्धि होती है।

2. **बढ़ी हुई मजदूरी** (Increased Wages)

यदि मजदूरी बढ़ाई जाती है, तो उनका उपभोग फलन को ऊपर की ओर खिसकाने में सीधा प्रभाव पड़ेगा। लेकिन उच्च मजदूरी की नीति अर्थव्यवस्था में रोजगार के स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है क्योंकि अल्पकालिक में श्रम की सीमांत राजस्व उत्पादकता बढ़ाना संभव नहीं है। यदि ऐसी स्थिति में मजदूरी बढ़ाई जाती है, तो श्रम की सीमांत राजस्व उत्पादकता में वृद्धि के अभाव में लागत बढ़ जाएगी और अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी का अनुभव होने

की संभावना है। इसलिए, दीर्घकालिक मजदूरी नीति ऐसी होनी चाहिए कि मजदूरी श्रम उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ बढ़े। इससे अर्थव्यवस्था में उपभोग का स्तर बढ़ने की प्रवृत्ति होगी।

3. **सामाजिक सुरक्षा उपाय** (Social Security Measures)

सामाजिक सुरक्षा उपाय दीर्घकालिक में उपभोग फलन को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखते हैं। बेरोजगारी राहत, चिकित्सा सुविधाओं, वृद्धावस्था पेंशन आदि का प्रावधान भविष्य की अनिश्चितताओं को दूर करता है और लोगों के हिस्से पर बचत करने की प्रवृत्ति कम हो जाती है। इसलिए, राज्य को लोगों की उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिए बड़े सामाजिक सुरक्षा उपाय प्रदान करने चाहिए। बेरोजगारी राहत और वृद्धावस्था पेंशन मंदी के दौरान भी उच्च उपभोग व्यय बनाए रखने की प्रवृत्ति रखते हैं और इस प्रकार अर्थव्यवस्था में पुनरुत्थान लाने में मदद करते हैं। तो सामाजिक सुरक्षा उपाय समृद्धि और मंदी दोनों अवधियों में उपभोग फलन को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखते हैं।

4. **ऋण सुविधाएँ** (Credit Facilities)

सस्ती और आसान ऋण सुविधाएँ उपभोग फलन को ऊपर की ओर खिसकाने में मदद करती हैं। जब लोगों को आसानी से और सस्ते में ऋण उपलब्ध होते हैं, तो वे स्कूटर, टेलीविजन, रेफ्रिजरेटर आदि जैसे अधिक टिकाऊ उपभोक्ता सामान खरीदते हैं। इससे उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है। इन चीजों को किस्तों पर या किराए पर खरीद प्रणाली पर खरीदना भी यही प्रभाव डालता है। इस प्रकार विभिन्न तरीकों से ऋण सुविधाएँ टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने में मदद करती हैं।

5. **विज्ञापन** (Advertisement)

विज्ञापन आधुनिक समय में उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने के सबसे महत्वपूर्ण तरीकों में से एक है। रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, समाचार पत्र आदि के विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन और प्रचार उपभोक्ताओं को उत्पादों के उपयोग से परिचित कराते हैं। उपभोक्ता उनकी ओर आकर्षित होते हैं और वे उन्हें खरीदने की प्रवृत्ति रखते हैं। इससे उनकी उपभोग प्रवृत्ति बढ़ती है।

6. **परिवहन के साधनों का विकास** (Development of the Means of Transport)

परिवहन के सुविकसित साधन भी उपभोग फलन को ऊपर की ओर खिसकाने की प्रवृत्ति रखते हैं। विनिर्माण केंद्रों से देश के विभिन्न हिस्सों तक माल की आवाजाही आसान हो जाती है। बाजार का आकार बढ़ता है। परिवहन

लागत में कमी के कारण कीमतें भी गिर सकती हैं। लोगों को उनके संबंधित शहरों में चीजें उपलब्ध होती हैं। इन सबका उपभोग फलन को बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है।

7. **शहरीकरण** (Urbanisation)

उपरोक्त के एक परिणाम के रूप में, शहरीकरण उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाने में मदद करता है। जब शहरीकरण होता है, तो लोग ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में चले जाते हैं। वे नए लेखों से मोहित होते हैं और प्रदर्शन प्रभाव **(demonstration effect)** से प्रभावित होते हैं। इससे उपभोग फलन ऊपर की ओर खिसक जाता है। इस प्रकार राज्य को उपभोग फलन को बढ़ाने के उद्देश्य से जानबूझकर शहरीकरण की नीति का पालन करना चाहिए।

3.6 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

3.6.1 सही विकल्प चुनिए

1: कीन्स के अनुसार जैसे-जैसे आय बढ़ती है,

a) उपभोग घटता है

b) उपभोग आय से तेज़ी से बढ़ता है

c) उपभोग बढ़ता है, लेकिन आय से कम दर पर

d) उपभोग स्थिर रहता है

2: यदि उपभोग फलन C = a + bY हो, तो इसमें 'b' किसे दर्शाता है?

a) कुल उपभोग

b) औसत उपभोग प्रवृत्ति

c) सीमांत उपभोग प्रवृत्ति

d) निवेश

3: औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) को कैसे परिभाषित किया जाता है?

a) ΔC/ΔY

b) Y/C

c) C/Y

d) a + bY

4: निम्नलिखित में से कौन-सा कारक उपभोग प्रवृत्ति को प्रभावित नहीं करता है?

a) उपभोक्ताओं की संपत्ति

b) सामाजिक परंपराएँ

c) कर प्रणाली

d) निर्यात मूल्य

5: Keynesian उपभोग सिद्धांत के अनुसार, निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सत्य है?

a) सभी आय का उपभोग किया जाता है

b) MPC > 1

c) बचत का अस्तित्व नहीं होता

d) आय में वृद्धि के साथ MPC घटती है

3.6.1 सही या गलत बताइए

1. उपभोग फलन C = a + bY में 'a' स्वायत्त उपभोग को दर्शाता है, जो शून्य आय पर भी होता है।

2. C = a + bY में 'b' का मान सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) से कम या बराबर होता है।

3. यदि आय शून्य हो, तो उपभोग भी शून्य होगा।

4. MPC = ΔY/ΔC यह उपभोग प्रवृत्ति की गणना का सही सूत्र है।

5. उपभोग फलन रेखीय (Linear) होने पर उपभोग वक्र एक सीधी रेखा होती है।

3.7 सारांश (Summary)

यह अध्याय समष्टि अर्थशास्त्र में उपभोग फलन की अवधारणा को गहराई से समझाने पर केंद्रित रहा। उपभोग फलन वह सम्बन्ध दर्शाता है, जो किसी व्यक्ति अथवा समाज की आय और उपभोग व्यय के बीच होता है। कीन्स ने इसे अपने मनोवैज्ञानिक नियम के माध्यम से प्रस्तुत किया, जिसमें यह कहा गया कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, उपभोग भी बढ़ता है, परंतु वह आय में वृद्धि की तुलना में कम दर से बढ़ता है।

हमने औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) जैसी तकनीकी अवधारणाओं को भी जाना, जो उपभोग और आय के मध्य संबंध को मात्रात्मक रूप से दर्शाने में सहायक होती हैं। MPC का विशेष महत्व है क्योंकि यह निवेश गुणक, राजकोषीय नीति और समष्टि आर्थिक स्थिरता को प्रभावित करता है।

इसके अतिरिक्त, उपभोग व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न निर्धारकों जैसे आय का स्तर, संपत्ति, उपभोक्ता मनोवृत्ति, सामाजिक और सांस्कृतिक कारक आदि का भी विश्लेषण किया गया। साथ ही यह भी समझा गया कि किन उपायों के माध्यम से उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ाया जा सकता है, ताकि अर्थव्यवस्था में मांग को प्रोत्साहन मिल सके।

अंततः, उपभोग फलन का गणितीय स्वरूप (जैसे C = a + bY) और उसकी व्याख्या उपभोग विश्लेषण को सरल और तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुई। इस अध्याय से यह स्पष्ट होता है कि उपभोग न केवल एक आर्थिक क्रिया है, बल्कि यह व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। समष्टि अर्थशास्त्र में उपभोग फलन का अध्ययन हमें नीतिगत निर्णयों, राष्ट्रीय आय निर्धारण और आर्थिक स्थिरता के विश्लेषण में महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करता है।

3.8 सूचक शब्द (Keywords)

- उपभोग फलन **(Consumption Function):**
  यह वह सम्बन्ध है जो आय और उपभोग व्यय के बीच स्थापित होता है। कीन्स के अनुसार, जैसे-जैसे आय बढ़ती है, उपभोग भी बढ़ता है, लेकिन कम दर से।
- स्वायत्त उपभोग **(Autonomous Consumption):**
  यह वह उपभोग होता है जो तब भी होता है जब व्यक्ति की आय शून्य हो। इसे 'a' द्वारा दर्शाया जाता है।
- सीमांत उपभोग प्रवृत्ति **(Marginal Propensity to Consume – MPC):**
  यह बताती है कि आय में एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि पर उपभोग में कितनी वृद्धि होती है। सूत्र: MPC = ΔC / ΔY
- औसत उपभोग प्रवृत्ति **(Average Propensity to Consume – APC):**
  यह दर्शाता है कि कुल आय का कितना प्रतिशत उपभोग पर व्यय किया गया है। सूत्र: APC = C / Y

- कीन्स का उपभोग का मनोवैज्ञानिक नियम **(Keynes's Psychological Law of Consumption):**
  यह नियम कहता है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है, उपभोग भी बढ़ता है लेकिन वह आय की वृद्धि से कम होता है।

- उपभोग निर्धारक **(Determinants of Consumption):**
  वे कारक जो उपभोग व्यवहार को प्रभावित करते हैं जैसे – आय, बचत, संपत्ति, उपभोक्ता की अपेक्षाएँ, सामाजिक वातावरण आदि।

- उपभोग प्रवृत्ति बढ़ाने के उपाय **(Measures to Raise the Propensity to Consume):**
  वे आर्थिक एवं सामाजिक कदम जो लोगों को अधिक उपभोग के लिए प्रोत्साहित करते हैं, जैसे – करों में कटौती, सब्सिडी, रोजगार सुरक्षा आदि।

- **C = a + bY (**उपभोग फलन का गणितीय रूप**):**
  यह उपभोग का एक सरल रैखिक समीकरण है जिसमें 'a' स्वायत्त उपभोग और 'b' सीमांत उपभोग प्रवृत्ति को दर्शाता है।

- बचत **(Saving):**
  वह आय का भाग जो उपभोग के बाद बचा रह जाता है। S = Y – C के रूप में व्यक्त किया जाता है।

- उपभोग वक्र **(Consumption Curve):**
  यह आय और उपभोग के बीच संबंध को ग्राफ के रूप में दर्शाता है। सामान्यतः यह वक्र नीचे से ऊपर की ओर झुका होता है।

3.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions-SAQs)

1. उपभोग फलन क्या है**?** कीन्स ने इसे कैसे परिभाषित किया है**?** उपभोग फलन का गणितीय रूप समझाइए।
   (What is the consumption function? How did Keynes define it? Explain its mathematical form.)

2. औसत उपभोग प्रवृत्ति **(APC)** और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति **(MPC)** में क्या अंतर है**?** उपयुक्त उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।
   (What is the difference between APC and MPC? Explain with suitable examples.)
3. कीन्स के उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम को विस्तार से समझाइए। इसके क्या आर्थिक निहितार्थ हैं**?**
   (Explain Keynes's psychological law of consumption. What are its economic implications?)
4. उपभोग व्यवहार को प्रभावित करने वाले प्रमुख निर्धारकों की सूची बनाइए और उनमें से किसी दो की व्याख्या कीजिए।
   (List the major determinants of consumption and explain any two in detail.)
5. **MPC** का आर्थिक विश्लेषण में क्या महत्त्व है**?** इसकी भूमिका किस प्रकार निवेश गुणक और आय निर्धारण को प्रभावित करती है**?**
   (What is the significance of MPC in economic analysis? How does it influence investment multiplier and income determination?)
6. ऐसे कौन-कौन से उपाय हैं जो उपभोग प्रवृत्ति को बढ़ा सकते हैं**?** इनमें से किसी तीन उपायों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
   (What are the measures that can raise the propensity to consume? Explain any three with examples.)
7. भारत जैसे विकासशील देश में उपभोग प्रवृत्ति की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
   (Describe the trends of consumption propensity in a developing country like India.)

3.10 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

3.6.1 => सही उत्तर: 1. c) उपभोग बढ़ता है, लेकिन आय से कम दर पर, 2. c) सीमांत उपभोग प्रवृत्ति, 3. c) C/Y, 4. d) निर्यात मूल्य, 5. d) आय में वृद्धि के साथ MPC घटती है ।

3.6.2=> **सही उत्तर**: 1. **सही**, 2. **सही**, 3. **गलत**, 4. **गलत** (**सही सूत्र है**: MPC = ΔC/ΔY), 5. **सही।**

3.11 संदर्भ ग्रंथ **/** निर्देशित पुस्तकें **(References / Suggested Readings)**

1. Abel, Andrew B., Ben S. Bernanke & Dean Croushore – Macroeconomics (8th Edition), Pearson Education.
2. Ackley, G. – *Macroeconomics: Theory and Policy*, Macmillan Publishing
3. Dornbusch, R., Fischer, S. and Startz, R. – *Macroeconomics*, McGraw Hill
4. Branson, W. A. – *Macroeconomic Theory and Policy*, Harper & Row
5. Jhingan, M.L. – *Samasti Arthashastra (समष्टि अर्थशास्त्र)*, Vrinda Publications, Delhi
6. Ahuja, H.L. – *Modern Economics*, S. Chand & Co., New Delhi

वषय: अर्थशास्त्र (समष्टि अर्थशास्त्र के सद्धांत I)	
विषय क्रमांक: बीए BECO-301	लेखक: डॉ. सोमनाथ परूथी
अध्याय: 4	वेट्टर:
निवेश फलन: प्रकार, निवेश माँग अनुसूची, सीमांत पूंजी दक्षता, गुणक और त्वरक	

अध्याय की संरचना (Structure of the Chapter)

4.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 पूंजी और निवेश का अर्थ **(Meaning of Capital and Investment)**

4.3 **निवेश के प्रकार: प्रेरित और स्वायत्त निवेश** (Types of Investment: Induced and Autonomous Investment)

4.4 शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value-NPV)

4.5 **निवेश के स्तर के निर्धारक** (Determinants of the Level of Investment)

4.5.1 **पूंजी की सीमांत दक्षता** (MEC) **क्या है**? (What is Marginal Efficiency of Capital-MEC?)

4.5.2 निवेश की सीमांत दक्षता **(Marginal Efficiency of Investment - MEI)**

4.6 निवेश गुणक (Investment Multiplier)

4.6.1 गुणक के रिसाव (Leakages of Multiplier)

4.6.2 गुणक की आलोचना (Criticism of Multiplier)

4.6.3 **गुणक का महत्व** (Importance of Multiplier)

4.6.4 गत्यात्मक या कालिक गुणक (The Dynamic or Period Multiplier)

4.7 त्वरक का सिद्धांत (Principle of Accelerator)

4.7.1 **गुणक और त्वरक के बीच अंतर** (Difference between Multiplier and Accelerator)

4.8 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

4.9 सारांश **(Summary)**

4.10 सूचक शब्द **(Keywords)**

4.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assessment Questions-SAQs)**

4.12 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर दें (Answers to Check Your Progress)

4.13 संदर्भ ग्रंथ **/** निर्देशित पुस्तकें **(References / Suggested Readings)**

4.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी निम्नलिखित बातों को समझने और विश्लेषण करने में सक्षम होंगे:

1. पूंजी और निवेश की अवधारणाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना और उनके बीच के अंतर को समझना।
2. निवेश के प्रकारों – प्रेरित निवेश और स्वायत्त निवेश – का विश्लेषण करना तथा अर्थव्यवस्था में उनकी भूमिका को समझना।
3. शुद्ध वर्तमान मूल्य **(Net Present Value – NPV)** की अवधारणा को समझना और निवेश निर्णयों में उसके प्रयोग को जानना।
4. पूंजी की सीमांत दक्षता **(Marginal Efficiency of Capital – MEC)** और निवेश की सीमांत दक्षता **(Marginal Efficiency of Investment – MEI)** की अवधारणाओं की व्याख्या करना।
5. कीन्स के निवेश गुणक सिद्धांत को समझना, उसकी मान्यताओं, कार्यप्रणाली, रिसाव (leakages), और आलोचनाओं को विस्तार से जानना।

6. गत्यात्मक गुणक **(Dynamic Multiplier)** के कार्य और व्यवहार को समझना तथा यह जानना कि समय के साथ गुणक कैसे कार्य करता है।
7. त्वरक सिद्धांत **(Accelerator Principle)** की व्याख्या करना, उसकी मान्यताओं, आलोचना और अर्थव्यवस्था में उसके महत्व को समझना।
8. गुणक और त्वरक के बीच अंतर को स्पष्ट करना और यह समझना कि किस प्रकार ये दोनों मिलकर आय और निवेश में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में हमने यह जाना कि किसी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का एक महत्वपूर्ण भाग उपभोग पर व्यय किया जाता है, और आय तथा उपभोग के बीच संबंध को उपभोग फलन (Consumption Function) के माध्यम से कैसे मापा और समझा जा सकता है। हमने सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) और औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) जैसे तकनीकी पहलुओं का विश्लेषण किया था, और यह देखा था कि उपभोग की प्रवृत्ति किस प्रकार आय निर्धारण को प्रभावित करती है। अब यह जानना आवश्यक है कि शेष आय का जो भाग उपभोग में नहीं जाता — यानी **बचत (Saving)** — उसका अर्थव्यवस्था में क्या उपयोग होता है। यही वह बिंदु है जहाँ से **निवेश (Investment)** की अवधारणा प्रारंभ होती है।

निवेश फलन समष्टि अर्थशास्त्र का एक प्रमुख घटक है, जो यह दर्शाता है कि फर्में और सरकारें किन परिस्थितियों में और किस स्तर तक पूंजी निर्माण (Capital Formation) करती हैं। निवेश केवल वर्तमान में संसाधनों का प्रयोग नहीं है, बल्कि वह भविष्य की उत्पादन क्षमताओं को भी निर्धारित करता है। अतः यह आर्थिक वृद्धि, रोजगार और आय के स्तर को प्रभावित करने वाला एक केंद्रीय तत्व बन जाता है।

इस अध्याय में हम सबसे पहले पूंजी और निवेश की अवधारणा को स्पष्ट करेंगे, फिर प्रेरित और स्वायत्त निवेश के प्रकारों पर चर्चा करेंगे। इसके बाद हम शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value – NPV), पूंजी की सीमांत दक्षता (Marginal Efficiency of Capital – MEC) तथा निवेश की सीमांत दक्षता (Marginal Efficiency of Investment – MEI) जैसे विश्लेषणात्मक उपकरणों के माध्यम से निवेश निर्णयों को समझने की कोशिश करेंगे।

आगे हम कीन्स का **निवेश गुणक (Investment Multiplier)** सिद्धांत और उससे जुड़ी मान्यताओं, प्रक्रिया, रिसाव, आलोचना तथा गत्यात्मक गुणक जैसे उन्नत पहलुओं का अध्ययन करेंगे। यह हमें यह समझने में मदद

करेगा कि छोटे से निवेश में भी किस प्रकार व्यापक आय-प्रवर्धन हो सकता है। साथ ही, हम **त्वरक सिद्धांत (Accelerator Principle)** को भी समझेंगे, जो बताता है कि किस प्रकार उपभोग में परिवर्तन निवेश को प्रभावित कर सकता है।

अंत में हम गुणक और त्वरक के बीच अंतर को समझकर यह जान पाएँगे कि ये दोनों सिद्धांत मिलकर अर्थव्यवस्था में व्यय और आय को किस प्रकार संचालित करते हैं। इस प्रकार यह अध्याय न केवल निवेश की गहराई से व्याख्या करेगा, बल्कि यह भी स्पष्ट करेगा कि समष्टि स्तर पर **बचत, निवेश, उपभोग और आय** के बीच क्या जटिल अंतर्संबंध होते हैं।

4.2 पूंजी और निवेश का अर्थ (Meaning of Capital and Investment)

जब हम आम बोलचाल में "निवेश" की बात करते हैं, तो अक्सर लोग शेयर, स्टॉक, बॉन्ड और दूसरी वित्तीय प्रतिभूतियों को खरीदने की बात करते हैं। लेकिन यह असल में *वास्तविक निवेश* नहीं होता, क्योंकि इसमें केवल पहले से मौजूद संपत्तियों का ही लेन-देन होता है। इसे **वित्तीय निवेश** कहते हैं, और इसका कुल उत्पादन या खर्च पर कोई असर नहीं पड़ता।

अर्थशास्त्री *जॉन मेनार्ड कीन्स* की परिभाषा में, **निवेश का मतलब होता है वास्तविक निवेश**, यानी वो निवेश जिससे *पूंजीगत उपकरणों में बढ़ोतरी* होती है। जब नए संयंत्र, मशीनें, सड़कें, इमारतें, या कोई नया कारखाना बनता है, तो इससे देश की आय और उत्पादन स्तर बढ़ता है। इसमें *शुद्ध विदेशी निवेश, नई कंपनियों में स्टॉक व शेयर खरीदना,* और *आविष्कृत वस्तुओं* का निर्माण भी शामिल होता है। अर्थशास्त्री **जोन रॉबिन्सन** के अनुसार, "निवेश से मतलब है पूंजी में वृद्धि — जैसे एक नया घर या नया कारखाना।"

अब बात करते हैं **पूंजी (Capital)** की। पूंजी से तात्पर्य है वह *वास्तविक संपत्ति* जो उत्पादन में उपयोग होती है — जैसे कि मशीनें, उपकरण, फैक्ट्रियां, और तैयार या अर्ध-तैयार वस्तुओं की इन्वेंटरी। ये सभी पहले से उत्पादित इनपुट होते हैं, जिनका इस्तेमाल अन्य वस्तुएं बनाने में होता है। किसी अर्थव्यवस्था में मौजूद कुल पूंजी को *पूंजी स्टॉक* कहा जाता है, और यह एक **स्टॉक अवधारणा (Stock Concept)** है, यानी किसी एक निश्चित समय बिंदु पर मापी जाती है।

अब सवाल आता है कि **निवेश और पूंजी आपस में कैसे जुड़े हैं?**

निवेश वास्तव में पूंजी में वृद्धि का माध्यम है। जब किसी विशेष समय अवधि में *नई पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन या अधिग्रहण* किया जाता है, तो उसे निवेश कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी कंपनी के पास 31 मार्च 2004 को 100 करोड़ की पूंजी है और वह 2004-05 में 10 करोड़ का निवेश करती है, तो अगले साल (31 मार्च 2005) को उसकी पूंजी बढ़कर 110 करोड़ हो जाएगी। इसे प्रतीकात्मक रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$I_t = K_t - K_{t-1}$$

जहाँ I_t = निवेश, K_t = वर्ष t में पूंजी, और K_{t-1} = पिछले वर्ष की पूंजी।

यहाँ से आता है **शुद्ध निवेश (Net Investment)** का विचार। जब हम पूरे वर्ष में हुई कुल पूंजीगत खर्च (सकल निवेश या *Gross Investment*) में से मशीनों के *घिसने (Depreciation)* और उनके *बदलाव (Replacement)* की लागत घटाते हैं, तो जो बचता है वही शुद्ध निवेश होता है।

- यदि **सकल निवेश = मूल्यह्रास**, तो शुद्ध निवेश **शून्य** होगा — यानी पूंजी स्टॉक में कोई वृद्धि नहीं।
- यदि **सकल निवेश < मूल्यह्रास**, तो **विनिवेश (Disinvestment)** हो रहा है — यानी पूंजी स्टॉक घट रहा है।
- और यदि **सकल निवेश > मूल्यह्रास**, तो यह **सकारात्मक शुद्ध निवेश** है — अर्थव्यवस्था का पूंजी स्टॉक बढ़ रहा है।

मान लीजिए एक फैक्टरी में साल की शुरुआत में मशीनों का कुल मूल्य ₹1 करोड़ था। साल भर में इन मशीनों के पुराने होने से ₹10 लाख का मूल्यह्रास हुआ। अब अगर फैक्टरी ने ₹10 लाख की नई मशीनें खरीदीं, तो सकल निवेश ₹10 लाख होगा और चूंकि यह मूल्यह्रास के बराबर है, इसलिए शुद्ध निवेश **शून्य** होगा — यानी कुल पूंजी स्टॉक ₹1 करोड़ ही रहेगा, कोई बढ़ोतरी नहीं। लेकिन अगर फैक्टरी सिर्फ ₹5 लाख की नई मशीनें खरीदती है, तो शुद्ध निवेश **ऋणात्मक (–₹5 लाख)** होगा — यानी पूंजी स्टॉक घटकर ₹95 लाख हो जाएगा, इसे विनिवेश कहते हैं। इसके उलट, अगर फैक्टरी ₹15 लाख की मशीनें खरीदती है, तो शुद्ध निवेश **₹5 लाख** होगा और पूंजी स्टॉक बढ़कर ₹1 करोड़ 5 लाख हो जाएगा — यह अर्थव्यवस्था में पूंजी वृद्धि और विकास का संकेत है। इसलिए, किसी भी अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन विकास के लिए जरूरी है कि उसका **शुद्ध निवेश सकारात्मक हो**, ताकि पूंजी स्टॉक में निरंतर बढ़ोतरी होती रहे।

4.3 निवेश के प्रकार: प्रेरित और स्वायत्त निवेश (Types of Investment: Induced and Autonomous Investment)

निवेश दो मुख्य प्रकार के होते हैं — **प्रेरित निवेश** और **स्वायत्त निवेश**। ये दोनों निवेश की प्रकृति और उसकी प्रेरणा (motivation) के आधार पर अलग-अलग होते हैं।

प्रेरित निवेश (Induced Investment)

प्रेरित निवेश वह होता है जो आय या लाभ में बढ़ोतरी से प्रेरित होता है। यानी जब किसी देश या व्यक्ति की **आय बढ़ती है**, तो उसका **उपभोग भी बढ़ता है**, और इस बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए उत्पादन बढ़ाना पड़ता है — जिससे निवेश भी बढ़ता है। इस निवेश को आय के साथ जोड़ा जाता है और इसे इस तरह व्यक्त किया जाता है:

$$I = f(Y)$$

यानी **निवेश आय का एक फलन है**। जैसे-जैसे आय बढ़ती है, प्रेरित निवेश भी बढ़ता है। यह आय के प्रति **लोचदार (elastic)** होता है — आय में कमी से प्रेरित निवेश कम हो जाता है और आय में वृद्धि से यह बढ़ जाता है।

चित्र 4.1 में यह दिखाया गया है कि एक विशेष स्तर $\mathbf{OY_1}$ पर निवेश शून्य होता है। जैसे ही आय बढ़कर $\mathbf{OY_3}$ हो जाती है, प्रेरित निवेश $\mathbf{I_3Y_3}$ तक पहुँच जाता है। अगर आय $\mathbf{OY_2}$ तक गिरती है, तो निवेश भी घटकर $\mathbf{I_2Y_2}$ हो जाता है।

Figure 4.1

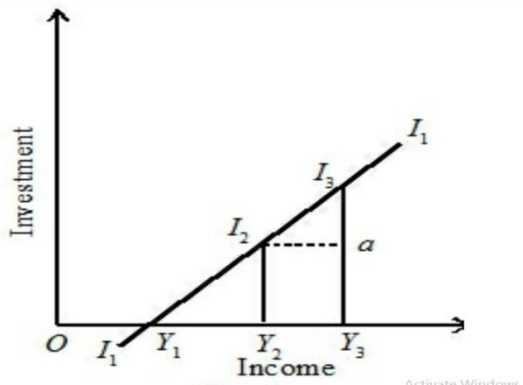

प्रेरित निवेश को दो भागों में समझा जा सकता है:

1. **निवेश की औसत प्रवृत्ति (Average Propensity to Invest)**
   यह दर्शाता है कि कुल आय का कितना हिस्सा निवेश में जाता है।
   उदाहरण: यदि कुल आय 40 करोड़ और निवेश 4 करोड़ है, तो
   I/Y = 4/40 = 0.1 (यानी 10%)।
2. **निवेश की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Invest)**
   यह दिखाता है कि आय में परिवर्तन होने पर निवेश में कितना परिवर्तन होता है।
   उदाहरण: अगर आय में 10 करोड़ की वृद्धि से निवेश 2 करोड़ बढ़ता है, तो
   ΔI/ΔY = 2/10 = 0.2 (यानी 20%)।

स्वायत्त निवेश (Autonomous Investment)

स्वायत्त निवेश वह निवेश होता है जो आय के स्तर से **स्वतंत्र** होता है। इसका अर्थ है कि चाहे आय घटे या बढ़े, स्वायत्त निवेश अपनी जगह बना रहता है। यह **आय के प्रति अलोचशील (income inelastic)** होता है।

इस प्रकार का निवेश उन बाहरी कारकों पर आधारित होता है जो आय से संबंधित नहीं होते, जैसे: नवाचार (innovation), जनसंख्या वृद्धि, तकनीकी प्रगति, मौसम परिवर्तन, युद्ध या क्रांति, सरकार की सार्वजनिक योजनाएं (जैसे सड़कें, अस्पताल, स्कूल, बांध आदि)।

अक्सर **सरकारी खर्च और सामाजिक बुनियादी ढांचे पर किया गया निवेश** स्वायत्त होता है और इसलिए इसे आमतौर पर **सार्वजनिक निवेश** माना जाता है। चित्र 4.2 स्वायत्त निवेश को **क्षैतिज रेखा** के रूप में दिखाया जाता है, जिसका अर्थ है कि यह **सभी आय स्तरों पर समान रहता है**। उदाहरण: अगर स्वायत्त निवेश OI_1 है, तो यह I_1I' वक्र द्वारा दर्शाया जाता है। यदि किसी कारण से सरकार निवेश बढ़ा देती है, तो यह वक्र ऊपर खिसक कर **I_2I''** हो सकता है, जो **OI_2** की नई स्थिर दर दिखाता है।

Figure 4.2

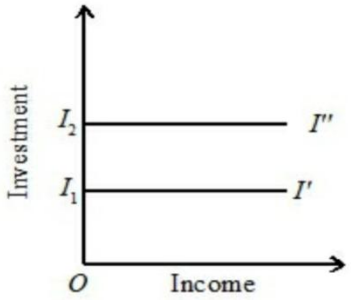

4.4 **शुद्ध वर्तमान मूल्य** (Net Present Value-NPV)

शुद्ध वर्तमान मूल्य, **एक व्यवहारिक निवेश निर्णय उपकरण**: जब किसी कंपनी या निवेशक को यह तय करना होता है कि किसी परियोजना में निवेश करना चाहिए या नहीं, तो NPV यानी शुद्ध वर्तमान मूल्य एक बेहद भरोसेमंद और व्यापक रूप से उपयोग किया जाने वाला तरीका है। यह पद्धति हमें यह समझने में मदद करती है कि भविष्य में किसी परियोजना से प्राप्त होने वाले नकदी प्रवाह (cash flows) को आज के समय में कितना मूल्यवान समझा जाना चाहिए।

शुद्ध वर्तमान मूल्य (**NPV)** का मूल विचार**:**

हम सभी जानते हैं कि "**आज के 100 रुपये, भविष्य के 100 रुपये से अधिक मूल्य के होते हैं**।" इसका कारण यह है कि आज की राशि को निवेश करके उससे ज्यादा कमाया जा सकता है — इसे ही **धन का समय मूल्य (Time Value of Money)** कहा जाता है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) इसी विचार पर आधारित है। यह निवेश परियोजना के पूरे जीवनकाल के दौरान होने वाले सभी नकदी प्रवाहों को एक **छूट दर (Discount Rate)** का उपयोग करके **वर्तमान मूल्य (Present Value)** में बदलता है और फिर प्रारंभिक निवेश घटाकर शुद्ध लाभ (या हानि) की गणना करता है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य (**NPV) की गणना कैसे की जाती है?**

NPV की गणना का सूत्र इस प्रकार है:

$$NPV = \sum_{t=0}^{n} \frac{CF_t}{(1+r)^t} - C_0$$

जहां:

- CFt = समय t पर नकदी प्रवाह, r = छूट दर (Discount Rate), t = समय अवधि (0, 1, 2,..., n)

n = परियोजना का कुल जीवनकाल, C_0 = प्रारंभिक निवेश (Initial Investment)

यह सूत्र हर वर्ष की नकदी आय को उसकी समय अवधि के अनुसार वर्तमान में लाकर जोड़ता है, और प्रारंभिक लागत घटाकर परियोजना का शुद्ध लाभ निकालता है।

निर्णय का नियम (Decision Rule):

- **अगर NPV > 0**: परियोजना लाभकारी है, निवेश किया जाना चाहिए।
- **अगर NPV < 0**: परियोजना नुकसानदेह है, इसे अस्वीकार किया जाना चाहिए।
- **अगर NPV = 0**: लाभ और लागत बराबर हैं, निर्णय अन्य कारकों पर आधारित होगा।

एक सरल उदाहरण से समझें**:** मान लीजिए "नवीनता लिमिटेड" नाम की कंपनी एक नई उत्पादन इकाई लगाने का विचार कर रही है। इसका प्रारंभिक निवेश है ₹5,00,000। यह परियोजना 3 वर्षों तक चलेगी और प्रत्येक वर्ष अलग-अलग नकदी प्रवाह उत्पन्न करेगी। अनुमानित नकदी प्रवाह और छूट दर इस प्रकार हैं:

वर्ष	**नकदी प्रवाह (₹)**	**छूट दर = 10%**	**वर्तमान मूल्य (PV)**
1	₹2,00,000	$1/(1+0.10)^{1} = 0.909$	₹1,81,818.18
2	₹2,50,000	$1/(1+0.10)^{2} = 0.826$	₹2,06,611.57
3	₹2,00,000	$1/(1+0.10)^{3} = 0.751$	₹1,50,263.09

कुल वर्तमान मूल्य = ₹1,81,818.18 + ₹2,06,611.57 + ₹1,50,263.09 ≈ ₹5,38,692.84
NPV = ₹5,38,692.84 - ₹5,00,000 = ₹38,692.84

निर्णय: चूंकि NPV सकारात्मक है (₹38,692.84), इसलिए यह परियोजना आर्थिक रूप से लाभकारी है और निवेश किया जाना चाहिए।

शुद्ध वर्तमान मूल्य (**NPV) के फायदे:**

1. **धन के समय मूल्य को ध्यान में रखता है**
   यह सबसे बड़ी विशेषता है, क्योंकि यह दिखाता है कि भविष्य का पैसा आज कितना मूल्यवान है।
2. **पूरे जीवनकाल का विश्लेषण करता है**
   NPV केवल प्रारंभिक लाभ नहीं बल्कि पूरे प्रोजेक्ट के नकदी प्रवाहों को शामिल करता है।
3. **लाभप्रदता का स्पष्ट माप**
   धनात्मक NPV स्पष्ट रूप से दिखाता है कि परियोजना मूल्य जोड़ रही है।

4. **यथार्थवादी पुनर्निवेश धारणा**

   यह मानता है कि नकदी प्रवाह को छूट दर पर पुनर्निवेश किया जा सकता है, जो आम तौर पर यथार्थ है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य (**NPV) की सीमाएं:**

1. **छूट दर का चयन चुनौतीपूर्ण:** छूट दर सही न होने पर निर्णय गलत हो सकता है।
2. **भविष्य के नकदी प्रवाह की अनिश्चितता:** इनका सटीक अनुमान लगाना कठिन हो सकता है।
3. **परियोजना के आकार की तुलना नहीं करता:** सिर्फ NPV से यह तय नहीं होता कि किस परियोजना में निवेश अधिक प्रभावी होगा — प्रतिशत रिटर्न नहीं बताता।
4. **अनन्य परियोजनाओं के मामले में जटिलता:** जब दो या अधिक परियोजनाओं में से केवल एक को चुनना हो, तो NPV अकेला निर्णय का आदर्श आधार नहीं बन सकता, खासकर अगर पूंजी सीमित हो।

निष्कर्ष**:** शुद्ध वर्तमान मूल्य (**NPV) एक वैज्ञानिक, तार्किक और समय-सापेक्ष निवेश मूल्यांकन उपकरण है।**

यह यह सुनिश्चित करता है कि कंपनी ऐसी परियोजनाओं में ही निवेश करे जो भविष्य में आर्थिक मूल्य जोड़ सकें। हालांकि इसकी कुछ सीमाएं हैं, फिर भी NPV निवेश निर्णय के लिए सबसे भरोसेमंद और व्यापक रूप से अपनाई गई विधियों में से एक है।

4.5 निवेश के स्तर के निर्धारक (Determinants of the Level of Investment)

जब कोई कंपनी यह सोचती है कि उसे किसी नई मशीन, उपकरण या फैक्ट्री जैसी पूंजीगत संपत्ति में निवेश करना चाहिए या नहीं, तो उसका निर्णय कुछ बुनियादी बातों पर निर्भर करता है। सबसे पहली बात यह देखी जाती है कि उस निवेश से जो लाभ (या प्रतिफल) भविष्य में मिलने वाला है, क्या वह उस ब्याज दर से अधिक है जिस दर पर कंपनी को पैसा मिल सकता है या जिसे वह चुकाती है? सरल शब्दों में कहें तो, निवेश का निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि निवेश से होने वाली कमाई उस लागत (या ब्याज) से ज्यादा है या नहीं।

असल में, जब कोई निवेश निर्णय लिया जाता है, तो उसमें तीन बातें खासतौर पर ध्यान में रखी जाती हैं – (a) पूंजीगत वस्तु की लागत कितनी है, (b) उससे भविष्य में कितनी कमाई (या प्रतिफल) होने की संभावना है, और (c) मौजूदा बाजार में ब्याज दर कितनी है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही अर्थशास्त्री कीन्स ने "पूंजी की सीमांत

दक्षता" (Marginal Efficiency of Capital – MEC) की अवधारणा दी है।

4.5.1 पूंजी की सीमांत दक्षता (MEC) क्या है? (What is Marginal Efficiency of Capital-MEC?)

पूंजी की सीमांत दक्षता MEC का मतलब है – किसी पूंजीगत संपत्ति की एक अतिरिक्त इकाई से मिलने वाला वह अपेक्षित लाभ जो उसकी लागत पर आधारित हो। उदाहरण के लिए, अगर कोई मशीन 20,000 रुपये की है और उससे हर साल 2,000 रुपये की आमदनी होती है, तो उसकी सीमांत दक्षता 10% होगी। यानी (2000/20000) × 100 = 10%। इसे हम इस तरह समझ सकते हैं कि यह निवेश पर लाभ की प्रतिशत दर है।

कुरीहारा के शब्दों में – "MEC वह अनुपात है जो दर्शाता है कि एक पूंजीगत वस्तु की संभावित प्रतिफल उसकी आपूर्ति लागत की तुलना में कितनी है।" संभावित प्रतिफल से आशय है उस संपत्ति से उसके पूरे जीवनकाल में मिलने वाली कुल शुद्ध आय, जबकि आपूर्ति मूल्य का अर्थ है – उस संपत्ति को तैयार करने की लागत। कीन्स के अनुसार, MEC उस छूट दर (discount rate) के बराबर होती है जो भविष्य की पूरी कमाई की वर्तमान कीमत को उस संपत्ति की लागत के बराबर बना दे। इसे हम एक गणितीय समीकरण के रूप में भी व्यक्त कर सकते हैं:

$$S_p = \frac{R_1}{(1+i)^1} + \frac{R_2}{(1+i)^2} + \frac{R_3}{(1+i)^3} + \cdots + \frac{R_n}{(1+i)^n}$$

यहां, Sp पूंजीगत वस्तु की आपूर्ति लागत है, R_1 से लेकर Rn तक हर वर्ष की अनुमानित आमदनी है, और i वह दर है जो भविष्य की आमदनी को वर्तमान मूल्य में लाकर उसकी तुलना लागत से संभव बनाती है। यही i वास्तव में MEC है।

Figure 4.3

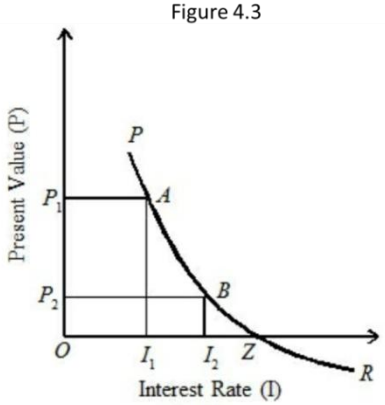

उदाहरण के लिए, यदि कोई मशीन 1,000 रुपये की हो और उससे पहले साल 550 रुपये और दूसरे साल 605

रुपये कमाने की उम्मीद हो, तो उस मशीन की MEC 10% होगी। यानी यह वह छूट दर है जिस पर दोनों वर्षों की आमदनी को वर्तमान मूल्य में बदलने पर कुल रकम 1,000 रुपये (मूल लागत) के बराबर हो जाती है।

वर्तमान मूल्य की भूमिका (Role of Present Value)

जब हम निवेश का विश्लेषण करते हैं, तो एक और महत्वपूर्ण विचार होता है – वर्तमान मूल्य। कोई भी रकम जो भविष्य में मिलने वाली हो, उसका आज के दिन के हिसाब से क्या मूल्य है, इसे ही वर्तमान मूल्य कहा जाता है। यह सीधे-सीधे ब्याज दर पर निर्भर करता है। यदि ब्याज दर 5% है और हमें एक साल बाद 100 रुपये मिलने हैं, तो आज उनके मूल्य को निकालने के लिए हम छूट देते हैं, और वह लगभग 95.24 रुपये आता है। यदि वही 100 रुपये दो साल बाद मिलें, तो 5% पर उसका PV लगभग 90.70 रुपये होगा।

यह स्पष्ट करता है कि जैसे-जैसे ब्याज दर बढ़ती है, भविष्य की रकम का आज के हिसाब से मूल्य घटता है। उदाहरण के तौर पर, 100 रुपये की रकम का PV एक साल के लिए:

- 5% पर = 95.24 रुपये,
- 7% पर = 93.45 रुपये,
- और 10% पर = 90.91 रुपये होगा।

चित्रात्मक रूप में यदि हम ब्याज दर को क्षैतिज अक्ष (x-axis) पर और PV को ऊर्ध्वाधर अक्ष (y-axis) पर रखें, तो हमें एक नीचे की ओर झुकता हुआ वक्र मिलता है – यह दर्शाता है कि ब्याज दर और वर्तमान मूल्य में व्युत्क्रम संबंध है।(See Figure 4.3) ।

MEC की तुलना बाजार ब्याज दर से क्यों जरूरी है?

अब, जब हमें MEC मिल गया और वर्तमान मूल्य भी समझ आ गया, तो अगला सवाल आता है कि हम निर्णय कैसे लें कि निवेश करना चाहिए या नहीं? इसका जवाब है – MEC की तुलना बाजार ब्याज दर से करें। यदि MEC > ब्याज दर है, तो इसका मतलब है कि हमें उस पूंजीगत वस्तु में निवेश करना चाहिए क्योंकि यह लाभदायक होगा। अगर MEC < ब्याज दर है, तो निवेश नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे घाटा हो सकता है। यदि MEC = ब्याज दर है, तो उस स्थिति में फर्म "इष्टतम पूंजी स्टॉक" (Optimum Capital Stock) रख रही है – न ज़्यादा और न ही कम। यही संतुलन की स्थिति होती है।

पूंजी की सीमांत दक्षता और ब्याज दर में असंतुलन का समाधान: अगर MEC और ब्याज दर के बीच असंतुलन होता है, तो इस असंतुलन को दो तरीकों से सुधारा जा सकता है – (1) पूंजी स्टॉक को बदलकर, जिससे MEC बदले, या (2) ब्याज दर को बदलकर। लेकिन क्योंकि पूंजी स्टॉक को अचानक बढ़ाना या घटाना आसान नहीं होता, इसलिए ब्याज दर में बदलाव एक अधिक प्रभावी तरीका होता है।

यहां जो बात फर्म पर लागू होती है, वही पूरे देश की अर्थव्यवस्था पर भी लागू होती है। जब ब्याज दर गिरती है, तो अधिक से अधिक निवेश की संभावना बनती है और इससे पूंजी स्टॉक में वृद्धि होती है।

चित्र 4.4 इस अवधारणा को और बेहतर तरीके से स्पष्ट करता है। इसमें MEC वक्र नीचे की ओर ढलान वाला होता है। इसका अर्थ है – जैसे-जैसे पूंजी स्टॉक बढ़ता है, सीमांत दक्षता घटती है। उदाहरण के लिए, जब पूंजी स्टॉक OK_1 है, तो MEC Or_1 है। लेकिन जैसे ही पूंजी स्टॉक बढ़कर OK_2 होता है, MEC घटकर Or_2 हो जाता है। यानी अधिक पूंजी के साथ सीमांत लाभ घटता है – यह "घटते प्रतिफल के नियम" का सीधा उदाहरण है।

Figure 4.4

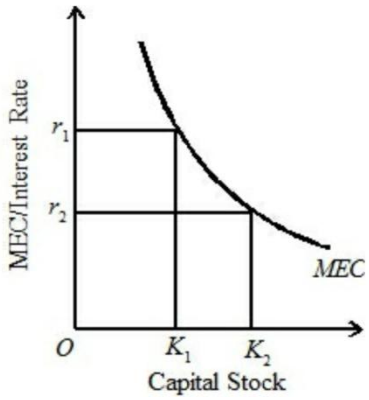

चित्र 4.4 यह भी बताता है कि जब वर्तमान ब्याज दर Or2 है और MEC Or1 है, तो अर्थव्यवस्था में हर कोई अधिक पूंजीगत वस्तुओं में निवेश करना चाहेगा। यह सिलसिला तब तक चलता रहेगा जब तक MEC घटते हुए Or_2 के बराबर नहीं हो जाता। और जैसे ही ऐसा होता है, अर्थव्यवस्था इष्टतम पूंजी स्टॉक (OK_2) की स्थिति तक पहुँच जाती है।

निष्कर्ष रूप में समझें तो इस पूरे विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि निवेश के स्तर का निर्धारण सिर्फ लागत और लाभ की तुलना से नहीं होता, बल्कि इसमें समय, ब्याज दर और भविष्य के प्रतिफल की गहराई से **समझ** होती है। MEC हमें यह तय करने में मदद करता है कि किसी पूंजीगत संपत्ति में निवेश करना समझदारी है या नहीं। और

ब्याज दर इस पूरी प्रक्रिया में एक निर्णायक भूमिका निभाती है – क्योंकि वही निर्धारित करती है कि कौन-सी संपत्तियाँ फायदे का सौदा हैं और कौन-सी नहीं। इस तरह, पूंजी की सीमांत दक्षता की यह पूरी अवधारणा निवेश निर्णयों का एक मजबूत आधार बनाती है – चाहे वो किसी फर्म के संदर्भ में हो या किसी पूरे देश की अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में।

4.5.2 निवेश की सीमांत दक्षता (Marginal Efficiency of Investment - MEI)

निवेश की सीमांत दक्षता (MEI) वह दर है जिस पर किसी पूंजीगत संपत्ति में किए गए निवेश से, सभी लागतों (सिवाय ब्याज दर के) को कवर करने के बाद, अपेक्षित प्रतिफल प्राप्त होता है। यह अवधारणा पूंजी की सीमांत दक्षता (MEC) से मिलती-जुलती है। दरअसल, MEI उस छूट दर को दर्शाती है जो किसी पूंजीगत संपत्ति की संभावित उपज को उसकी लागत (आपूर्ति मूल्य) के बराबर बना देती है।

निवेश का निर्णय अक्सर इस बात पर निर्भर करता है कि उस संपत्ति पर प्राप्त होने वाला प्रतिफल दर बाजार ब्याज दर से अधिक है या नहीं। यदि ब्याज दर अधिक है, तो निवेशक पूंजीगत संपत्ति में निवेश करने से बचेंगे क्योंकि लागत अधिक हो जाएगी। इसके विपरीत, जब ब्याज दर कम होती है, तो निवेश लाभदायक लगता है, और इस कारण निवेश का स्तर बढ़ता है। इस प्रकार, MEI एक ऐसा माध्यम है जो निवेश और ब्याज दर के बीच के संबंध को दर्शाता है। MEI अनुसूची विभिन्न ब्याज दरों पर निवेश की मांग को दिखाती है। इसे **निवेश मांग वक्र (Investment Demand Curve)** भी कहा जाता है। इसका ढलान आमतौर पर ऋणात्मक (नीचे की ओर) होता है, क्योंकि जैसे-जैसे ब्याज दर घटती है, निवेश की मात्रा बढ़ती है। उदाहरण के लिए, जब ब्याज दर Or_1 होती है, तो निवेश OI' होता है, लेकिन यदि ब्याज दर घटकर Or_2 हो जाए, तो निवेश बढ़कर OI" हो जाता है। यह जरूरी है कि हम MEI वक्र की **लोच** (elasticity) को समझें। ब्याज दर में गिरावट से निवेश कितना बढ़ेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि MEI वक्र कितना लोचदार है। यदि MEI वक्र कम लोचदार है, तो ब्याज दर में गिरावट से निवेश में बहुत अधिक बढ़ोतरी नहीं होगी। लेकिन यदि MEI वक्र अधिक लोचदार है, तो ब्याज दर में थोड़ी सी भी गिरावट निवेश में काफी बढ़ोतरी ला सकती है। चित्र 4.5 इस बात को दो पैनलों के माध्यम से दर्शाता है। पैनल (A) में, MEI वक्र कम लोचदार है और निवेश I' से I" तक ही बढ़ता है। वहीं पैनल (B) में, अधिक लोचदार MEI_1 वक्र के कारण निवेश I_1 से I_2 तक बढ़ता है, जो पैनल (A) से कहीं अधिक है। इस तुलना से स्पष्ट होता है कि ब्याज दर में गिरावट से निवेश की मात्रा में कितनी वृद्धि होगी, यह MEI वक्र की लोच पर निर्भर करता है।

Figure 4.5

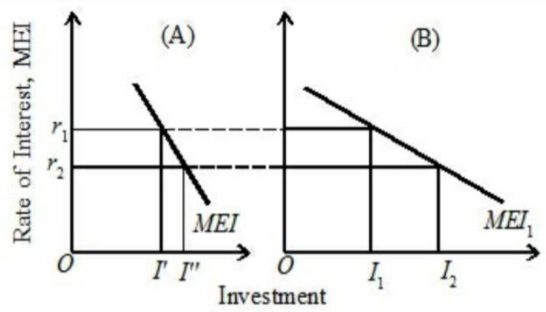

दूसरी ओर, अगर हम ब्याज दर को स्थिर रखें, तो MEI जितना अधिक होगा, निवेश की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। इसका तात्पर्य यह है कि MEI वक्र दाईं ओर शिफ्ट करेगा, जिससे संकेत मिलता है कि फर्मों को निवेश करने के लिए अधिक प्रोत्साहन मिल रहा है। उदाहरण के लिए, जब मौजूदा पूंजीगत संपत्तियां पुरानी हो जाती हैं, तो उन्हें बदलने की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया में नई पूंजीगत संपत्तियों की मांग बढ़ती है और कुल निवेश भी बढ़ जाता है।

इसके अलावा, निवेश की मात्रा **प्रेरित निवेश (Induced Investment)** पर भी निर्भर करती है, जो कुल मांग या कुल खरीद के स्तर से जुड़ा होता है। जब कुल मांग अधिक होती है, तो कंपनियां अपने उत्पादन और सेवाओं को बढ़ाने के लिए अधिक पूंजीगत निवेश करती हैं। उच्च कुल खरीद निवेश को अधिक लाभदायक बनाती है, जिससे MEI वक्र दाईं ओर स्थानांतरित हो जाता है।

इस पूरी प्रक्रिया को चित्र 4.6 द्वारा बेहतर रूप में समझाया गया है। मान लीजिए कि MEI_1 वक्र उस स्थिति को दर्शाता है जब अर्थव्यवस्था की कुल खरीद 200 करोड़ रुपये है। इस स्थिति में Or_1 ब्याज दर पर OI_1 (20 करोड़ रुपये) निवेश होता है। यदि कुल खरीद बढ़कर 500 करोड़ रुपये हो जाती है, तो MEI_1 वक्र दाईं ओर शिफ्ट होकर MEI_2 बन जाता है। अब उसी ब्याज दर Or_1 पर निवेश बढ़कर OI_2 (50 करोड़ रुपये) हो जाता है।

Figure 4.6

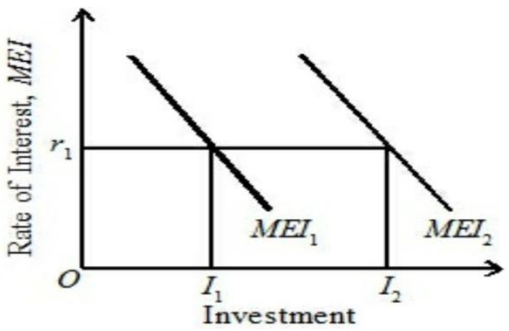

यह उदाहरण दर्शाता है कि कुल मांग में वृद्धि के कारण निवेश की मात्रा कैसे बढ़ जाती है और MEI वक्र किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है। इस प्रकार, MEI केवल ब्याज दर से नहीं बल्कि अर्थव्यवस्था की व्यापक गतिविधियों, जैसे कि कुल खरीद और उत्पादन की अपेक्षाओं, से भी प्रभावित होता है।

4.6 निवेश गुणक (Investment Multiplier)

गुणक की अवधारणा सबसे पहले आर.एफ. कान ने जून 1931 के "इकोनॉमिक जर्नल" में अपने लेख " The Relation of Home Investment to Unemployment " में विकसित की थी। कान का गुणक **रोजगार गुणक** था। कीन्स ने कान से यह विचार लिया और **निवेश गुणक** का सूत्रपात किया।

गुणक की मान्यताएं (Assumptions of Multiplier) : कीन्स का गुणक सिद्धांत कुछ मान्यताओं के तहत काम करता है जो गुणक के संचालन को सीमित करती हैं। वे इस प्रकार हैं:

1. स्वायत्त निवेश में परिवर्तन होता है और प्रेरित निवेश अनुपस्थित होता है।
2. उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति स्थिर है।
3. उपभोग वर्तमान आय का एक फलन है।
4. गुणक प्रक्रिया में कोई समय अंतराल नहीं होता है। निवेश में वृद्धि (कमी) तुरंत आय में कई गुना वृद्धि (कमी) की ओर ले जाती है।
5. निवेश का नया स्तर गुणक प्रक्रिया के पूरा होने तक लगातार बनाए रखा जाता है।
6. निवेश में शुद्ध वृद्धि होती है।
7. उपभोक्ता वस्तुएं उनकी प्रभावी मांग के जवाब में उपलब्ध हैं।
8. उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में अतिरिक्त क्षमता है ताकि बढ़ी हुई मांग को पूरा किया जा सके जो बढ़े हुए निवेश के बाद आय में वृद्धि के जवाब में होती है।
9. उत्पादन के अन्य संसाधन भी अर्थव्यवस्था के भीतर आसानी से उपलब्ध हैं।
10. एक औद्योगिक अर्थव्यवस्था है जिसमें गुणक प्रक्रिया संचालित होती है।
11. एक बंद अर्थव्यवस्था है जो विदेशी प्रभावों से अप्रभावित है।

12. कीमतों में कोई बदलाव नहीं होता है।

13. निवेश पर उपभोग के त्वरक प्रभाव को नजरअंदाज किया जाता है।

14. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार स्तर से कम है।

कीन्स अपने गुणक के सिद्धांत को अपने रोजगार सिद्धांत का एक अभिन्न अंग मानते हैं। कीन्स के अनुसार, गुणक "उपभोग प्रवृत्ति दिए जाने पर, कुल रोजगार और आय तथा निवेश की दर के बीच एक सटीक संबंध स्थापित करता है। यह हमें बताता है कि, जब निवेश में वृद्धि होती है, तो आय K गुना निवेश की वृद्धि से बढ़ेगी", यानी ΔY=KΔI। हैंसन के शब्दों में, कीन्स का निवेश गुणक, निवेश की वृद्धि और आय की वृद्धि के बीच का गुणांक है, यानी K=ΔY/ΔI, जहाँ Y आय है, I निवेश है, Δ परिवर्तन (वृद्धि या कमी) है और K गुणक है। गुणक सिद्धांत में, महत्वपूर्ण तत्व गुणक गुणांक, K है, जो किसी भी प्रारंभिक निवेश व्यय को अंतिम आय वृद्धि प्राप्त करने के लिए गुणा करने की शक्ति को संदर्भित करता है। गुणक का मूल्य **उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume - MPC)** द्वारा निर्धारित होता है। उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति जितनी अधिक होगी, गुणक का मूल्य उतना ही अधिक होगा, और इसके विपरीत। गुणक और उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति के बीच संबंध इस प्रकार है:

$$\Delta Y = \Delta C + \Delta I$$

$$\because \Delta C = c\Delta Y$$

$$\Delta Y - c\Delta Y = \Delta I$$

$$\Delta Y(1 - c) = \Delta I$$

$$\Delta Y = \frac{1}{(1 - c)}\Delta I$$

$$\frac{\Delta Y}{\Delta I} = \frac{1}{(1 - c)}$$

$$\because K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

$$\therefore K = \frac{1}{(1 - c)} = Investment\ Multiplier$$

चूंकि 'c' उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति है, इसलिए गुणक K, परिभाषा के अनुसार, 1/(1−c) के बराबर है। गुणक को बचत की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Save - MPS) से भी प्राप्त किया जा सकता है और यह MPS का व्युत्क्रम है, K=1/MPS।

Table I

$\Delta C/\Delta Y(MPC)$	$\Delta S/\Delta Y(MPS)$ $[1-(MPC)]$	K (*Multiplier Coefficient*)
0	1	1
$\frac{1}{2}$	$\frac{1}{2}$	2
$\frac{2}{3}$	$\frac{1}{3}$	3
$\frac{3}{4}$	$\frac{1}{4}$	4
$\frac{4}{5}$	$\frac{1}{5}$	5
$\frac{8}{9}$	$\frac{1}{9}$	9
$\frac{9}{10}$	$\frac{1}{10}$	10
1	0	∞ (Infinity)

तालिका । दर्शाती है कि गुणक का आकार MPC के साथ सीधे और MPS के साथ विपरीत रूप से बदलता है। चूंकि MPC हमेशा शून्य से अधिक और एक से कम (अर्थात् 0<MPC<1) होता है, गुणक हमेशा एक और अनंत के बीच (अर्थात् 1<K<∞) होता है। यदि गुणक एक है, तो इसका मतलब है कि आय की पूरी वृद्धि बचाई जाती है और कुछ भी खर्च नहीं किया जाता है क्योंकि MPC शून्य है। दूसरी ओर, एक अनंत गुणक का तात्पर्य है कि MPC एक के बराबर है और आय की पूरी वृद्धि उपभोग पर खर्च की जाती है। यह जल्द ही अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की ओर ले जाएगा और फिर एक असीमित मुद्रास्फीति सर्पिल पैदा करेगा। लेकिन ये दुर्लभ घटनाएं हैं। इसलिए, गुणक गुणांक एक और अनंत के बीच बदलता रहता है।

गुणक का कार्य (Working of Multiplier)

गुणक आगे और पीछे दोनों दिशाओं में काम करता है। सबसे पहले, हम इसके आगे के कार्य का अध्ययन करते हैं। गुणक सिद्धांत उपभोग व्यय पर इसके प्रभाव के माध्यम से आय पर निवेश में बदलाव के संचयी प्रभाव को बताता है।

आगे की प्रक्रिया (Forward Process)

हम पहले "अनुक्रम विश्लेषण" लेते हैं जो आय प्रसार की प्रक्रिया का "मोशन पिक्चर" दिखाता है। निवेश में वृद्धि से उत्पादन में वृद्धि होती है जो आय पैदा करता है और उपभोग व्यय उत्पन्न करता है। यह प्रक्रिया कम होती श्रृंखला में तब तक जारी रहती है जब तक आय और व्यय में कोई और वृद्धि संभव न हो। कीन्स द्वारा बताए गए अनुसार, एक स्थिर ढांचे में यह एक तात्कालिक (instant or lagless) प्रक्रिया है।

मान लीजिए कि एक अर्थव्यवस्था में MPC 1/2 है और निवेश 100 करोड़ रुपये बढ़ाया जाता है। इससे तुरंत उत्पादन और आय में 100 करोड़ रुपये की वृद्धि होगी। इस नई आय का आधा हिस्सा तुरंत उपभोग वस्तुओं पर खर्च किया जाएगा जिससे उत्पादन और आय में उतनी ही वृद्धि होगी, और इसी तरह यह प्रक्रिया चलती रहेगी जिसको तालिका II में दिखाया गया है। यह बताता है कि प्रारंभिक दौर में 100 करोड़ रुपये के निवेश की वृद्धि से आय में उतनी ही वृद्धि होती है। इसमें से 50 करोड़ रुपये बचाए जाते हैं और 50 करोड़ रुपये उपभोग पर खर्च किए जाते हैं जो दूसरे दौर में आय में उतनी ही वृद्धि करते हैं। आय सृजन की यह कम होती प्रक्रिया द्वितीयक दौर में तब तक जारी रहती है जब तक 100 करोड़ रुपये के निवेश से उत्पन्न कुल आय 200 करोड़ रुपये तक नहीं बढ़ जाती। यह गुणक सूत्र, $\Delta Y=K\Delta I$ या $200=2\times100$ से भी स्पष्ट है, जहाँ K = 2 (MPC = 1/2) और ΔI = 100 करोड़ रुपये।

निवेश में वृद्धि के परिणामस्वरूप आय प्रसार की यह प्रक्रिया चित्र 4.7 में आरेखीय रूप से दिखाई गई है। C वक्र का ढलान 0.5 है जो MPC को आधा दर्शाता है। C + I निवेश वक्र है जो 45° रेखा को E_1 पर काटता है ताकि आय का पुराना संतुलन स्तर OY_1 हो। अब निवेश में ΔI की वृद्धि हुई है जैसा कि C + I और C + I + ΔI वक्रों के बीच की दूरी से दिखाया गया है। यह वक्र 45° रेखा को E_2 पर काटता है जिससे OY_2 नई आय प्राप्त होती है। इस प्रकार आय में वृद्धि Y_1Y_2 जैसा कि ΔY द्वारा दिखाया गया है, C + I और C + I + ΔI के बीच की दूरी का दोगुना है, क्योंकि MPC आधा है। वही परिणाम MPS लेने पर भी प्राप्त किए जा सकते हैं ताकि जब आय बढ़ती है, तो बचत भी नई निवेश के बराबर हो जाती है जो आय के एक नए संतुलन स्तर पर होती है। यह चित्र 4.8 में दिखाया गया है। S एक बचत फलन है जिसका ढलान 0.5 है जो आधे के MPS को दर्शाता है। I पुराना निवेश वक्र है जो S को E_1 पर काटता है ताकि OY_1 आय का पुराना संतुलन स्तर हो। निवेश में वृद्धि ΔI को एक नए निवेश वक्र I + ΔI के आकार में ΔI वक्र पर अधिरोपित किया जाता है जिसे S वक्र E_2 पर काटता है जिससे OY_2 आय का नया संतुलन स्तर प्राप्त होता है। आय में वृद्धि $Y_1–Y_2$ (जो ΔY के रूप में दिखाया गया है) निवेश में वृद्धि ΔI का ठीक दोगुना है, क्योंकि MPS आधा है।

Table II

(Rs Crores)

(Round)	(Increment in Investment) ΔI	(Increment in Income) ΔY	(Increment in Consumption) ΔC = cΔY = 0.5	(Increment in Saving) ΔS = (ΔY − ΔS)
0				
1	100	100	50	50
2	—	50	25	25
3	—	25	12.50	12.50
4	—	12.50	6.25	6.25
5	—	6.25	3.12	3.12
0	—	0	0	0
Finally	100	200	100	100

Figure 4.7

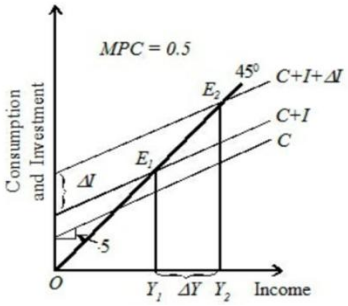

Figure 4.8

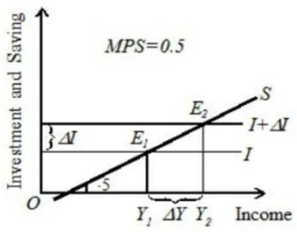

पिछली प्रक्रिया (Backward Process)

उपरोक्त विश्लेषण गुणक की आगे की प्रक्रिया से संबंधित है। हालांकि, यदि निवेश बढ़ता नहीं बल्कि घटता है, तो गुणक पीछे की ओर काम करता है। निवेश में कमी से आय और उपभोग का संकुचन होगा जो बदले में आय और उपभोग में संचयी गिरावट का कारण बनेगा जब तक कि कुल आय में संकुचन प्रारंभिक निवेश में कमी का कई गुना न हो जाए। मान लीजिए निवेश में 100 करोड़ रुपये की कमी आती है। MPC = 0.5 और K=2 के साथ, उपभोग व्यय तब तक घटता रहेगा जब तक कुल आय में 200 करोड़ रुपये की कमी नहीं आ जाती। गुणक सूत्र के संदर्भ में, $-\Delta Y=K(-\Delta I)$, हमें $-200=2(-100)$ मिलता है।

गुणक के पीछे के संचालन के कारण संकुचन का परिमाण MPC के मूल्य पर निर्भर करता है। MPC जितना अधिक होगा, गुणक का मूल्य उतना ही अधिक होगा और आय में संचयी गिरावट उतनी ही अधिक होगी, और इसके विपरीत। इसके विपरीत, MPS जितना अधिक होगा, गुणक का मूल्य उतना ही कम होगा और आय में संचयी गिरावट उतनी ही कम होगी, और इसके विपरीत। इस प्रकार, उच्च उपभोग प्रवृत्ति (या कम बचत प्रवृत्ति)

वाले समुदाय को गुणक के विपरीत संचालन से कम उपभोग प्रवृत्ति (या उच्च बचत प्रवृत्ति) वाले समुदाय की तुलना में अधिक नुकसान होगा। आरेखीय रूप से, विपरीत संचालन को चित्र 4.7 और 4.8 के संदर्भ में भी समझाया जा सकता है। चित्र 4.7 लेते हुए, जब निवेश घटता है, तो निवेश फलन C + I + ΔI नीचे की ओर C + I में स्थानांतरित हो जाता है। परिणामस्वरूप, संतुलन स्तर भी E2 से E1 में स्थानांतरित हो जाता है और आय OY_2 से OY_1 तक घट जाती है। MPC 0.5 होने के कारण, आय में गिरावट Y_2Y_1, निवेश में गिरावट का ठीक दोगुना है जैसा कि C + I + ΔI और C + I के बीच की दूरी से दिखाया गया है। इसी तरह, चित्र 4.8 में जब निवेश गिरता है, तो निवेश फलन I + ΔI नीचे की ओर I वक्र के रूप में स्थानांतरित हो जाता है और आय OY_2 से OY_1 तक घट जाती है। MPS 0.5 होने के कारण, आय में कमी Y_2Y_1 निवेश में गिरावट का दोगुना है जैसा कि I + ΔI और I वक्रों के बीच की दूरी से मापा जाता है।

4.6.1 गुणक के रिसाव (Leakages of Multiplier)

गुणक का सिद्धांत बताता है कि निवेश में वृद्धि से आय में कई गुना वृद्धि होती है। हालाँकि, यह प्रक्रिया पूरी तरह से निर्बाध नहीं होती। कुछ ऐसे कारक होते हैं जो इस गुणक प्रभाव को कमजोर या कम कर देते हैं। इन्हें **गुणक के रिसाव (Leakages of Multiplier)** कहा जाता है। ये रिसाव अर्थव्यवस्था से धन के उस प्रवाह को इंगित करते हैं जो उपभोग और आगे आय सृजन के लिए उपलब्ध नहीं होता। प्रमुख रिसाव इस प्रकार हैं:

- **बचत (Savings):** गुणक के काम करने के लिए, आय का एक हिस्सा उपभोग पर खर्च होना चाहिए ताकि आगे आय उत्पन्न हो सके। यदि आय का एक बड़ा हिस्सा बचत कर लिया जाता है, तो उपभोग पर खर्च होने वाली राशि कम हो जाती है, जिससे गुणक का प्रभाव कम हो जाता है। **बचत की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Save - MPS)** जितनी अधिक होगी, रिसाव उतना ही अधिक होगा और गुणक का मूल्य उतना ही कम होगा।
- **ऋणों का भुगतान (Payment of Debts):** जब लोगों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है, तो वे उसका उपयोग पिछले ऋणों को चुकाने के लिए कर सकते हैं। यह पैसा उपभोग पर खर्च नहीं होता, जिससे आय के प्रवाह में बाधा आती है और गुणक का प्रभाव कमजोर पड़ता है।
- **पुराने स्टॉक का अधिग्रहण (Acquisition of Old Stocks):** यदि बढ़ी हुई आय का उपयोग नए उत्पाद खरीदने के बजाय पुराने या पहले से मौजूद स्टॉक (जैसे पुरानी कारें या घर) खरीदने के लिए किया

जाता है, तो यह नई उत्पादन गतिविधि को बढ़ावा नहीं देता। इससे गुणक का प्रभाव सीमित हो जाता है क्योंकि यह पैसा अर्थव्यवस्था में नए सिरे से प्रवाहित नहीं होता।

- **आयात (Imports):** यदि बढ़ी हुई आय का उपयोग विदेशी वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने (आयात) के लिए किया जाता है, तो यह पैसा घरेलू अर्थव्यवस्था से बाहर चला जाता है। यह घरेलू उत्पादन और आय को बढ़ावा नहीं देता, जिससे गुणक का प्रभाव कम हो जाता है। **आयात की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Import - MPM)** जितनी अधिक होगी, गुणक पर रिसाव का प्रभाव उतना ही अधिक होगा।
- **अधिशेष उत्पादन क्षमता का अभाव (Lack of Surplus Capacity):** यदि अर्थव्यवस्था में पहले से ही पूर्ण रोजगार है या उत्पादन क्षमता की कमी है, तो निवेश में वृद्धि से उत्पादन और आय में उतनी वृद्धि नहीं हो पाएगी जितनी अपेक्षित है। ऐसे में, बढ़ी हुई मांग के कारण कीमतें बढ़ सकती हैं (मुद्रास्फीति), बजाय वास्तविक आय में वृद्धि के।
- **कर (Taxes):** सरकार द्वारा लगाए गए कर (आयकर, बिक्री कर आदि) भी एक रिसाव के रूप में कार्य करते हैं। जब लोगों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है, तो उसका एक हिस्सा करों के रूप में सरकार को चला जाता है। यह पैसा तत्काल उपभोग या निवेश के लिए उपलब्ध नहीं होता, जिससे गुणक का प्रभाव कम हो जाता है।
- **शेयरों और प्रतिभूतियों का अधिग्रहण (Acquisition of Shares and Securities):** यदि अतिरिक्त आय का उपयोग कंपनियों के नए शेयरों या सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए किया जाता है, तो यह पैसा सीधे वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में तुरंत प्रवेश नहीं करता है। जबकि यह निवेश भविष्य में उत्पादक हो सकता है, तत्काल गुणक प्रभाव सीमित हो जाता है।

4.6.2 गुणक की आलोचना (Criticism of Multiplier)

कीन्स का गुणक सिद्धांत महत्वपूर्ण होते हुए भी कई आलोचनाओं का शिकार है। यह अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, जैसे स्थिर MPC, समय अंतराल का अभाव, बंद अर्थव्यवस्था और मुद्रास्फीति का न होना। यह पूर्ति पक्ष की उपेक्षा करता है और मानता है कि हमेशा अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध हैं। निवेश की प्रकृति (सार्वजनिक/निजी, क्षेत्रीय) के प्रभाव को यह नहीं दर्शाता। साथ ही, गुणक में स्वचालित समायोजन की कमी है और

इसका सही गुणांक अनुमान लगाना कठिन है। यह सिद्धांत त्वरक से जुड़े संबंधों को भी अनदेखा करता है। इसके बावजूद, गुणक निवेश और सरकारी व्यय के प्रभाव को समझने और नीतियाँ बनाने में एक उपयोगी उपकरण है।

4.6.3 गुणक का महत्व (Importance of Multiplier)

गुणक समष्टि अर्थशास्त्र की केंद्रीय अवधारणा है, जो दिखाती है कि निवेश या स्वायत्त व्यय में छोटे परिवर्तन भी आय और रोजगार पर बड़ा प्रभाव डालते हैं।

1. **आय व रोजगार निर्धारण** – निवेश या सरकारी व्यय की वृद्धि से राष्ट्रीय आय और रोजगार कई गुना बढ़ते हैं।
2. **आर्थिक नीति में उपयोग** –

   मंदी: सरकारी व्यय बढ़ाकर या कर घटाकर मांग व आय बढ़ाई जा सकती है।

   पूर्ण रोजगार: आवश्यक निवेश का अनुमान लगाने में सहायक।

   मुद्रास्फीति: व्यय घटाकर या कर बढ़ाकर मांग नियंत्रित की जा सकती है।

   निवेश प्रोत्साहन – व्यवसायों को भरोसा होता है कि निवेश से भविष्य की मांग बढ़ेगी।
3. **सरकारी हस्तक्षेप का औचित्य** – छोटी सरकारी पहल (जैसे इंफ्रास्ट्रक्चर निवेश) व्यापक सकारात्मक प्रभाव डाल सकती है।
4. **आय के उतार-चढ़ाव की व्याख्या** – यह बताता है कि छोटे निवेश बदलाव भी व्यापार चक्रों में बड़े उतार-चढ़ाव ला सकते हैं।

   निष्कर्ष: गुणक एक शक्तिशाली विश्लेषणात्मक उपकरण है, जो आर्थिक उतार-चढ़ाव समझने और नीति निर्माण में आधारशिला का कार्य करता है।

4.6.4 गत्यात्मक या कालिक गुणक (The Dynamic or Period Multiplier)

कीन्स का गुणक का तार्किक सिद्धांत एक तात्कालिक प्रक्रिया है जिसमें कोई समय अंतराल नहीं होता। यह एक कालातीत स्थिर संतुलन विश्लेषण है जिसमें आय पर निवेश में परिवर्तन का कुल प्रभाव तात्कालिक होता है, ताकि उपभोग वस्तुएं एक साथ उत्पादित हों और उपभोग व्यय भी तत्काल किया जाए। लेकिन यह तथ्यों से प्रमाणित नहीं होता क्योंकि आय की प्राप्ति और उपभोग वस्तुओं पर उसके व्यय के बीच हमेशा एक समय अंतराल होता है,

और उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में भी समय लगता है। इस प्रकार "कालातीत गुणक विश्लेषण संक्रमण की अनदेखी करता है और केवल नए संतुलन आय स्तर से संबंधित है" और इसलिए, यह अवास्तविक है।

गत्यात्मक गुणक आय सृजन की प्रक्रिया में **समय अंतरालों (time lags)** से संबंधित है। गुणक प्रक्रिया को पूरा होने में आय और उपभोग में समायोजन की श्रृंखला में महीनों या साल भी लग सकते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि शामिल अवधि के बारे में क्या धारणा बनाई गई है। इसे तालिका III में समझाया गया है, जहां यदि प्रत्येक दौर एक महीने का है और 100 करोड़ रुपये के प्रारंभिक निवेश को 200 करोड़ रुपये की आय उत्पन्न करने में सत्रह दौर लगते हैं, MPC का मान 0.5 होने पर, तो गुणक प्रक्रिया को पूरा होने में 17 महीने लगेंगे। तालिका दर्शाती है कि यदि MPC पूरे समय 0.5 पर स्थिर रहता है, तो निवेश में 100 करोड़ रुपये की प्रारंभिक वृद्धि पहले महीने में आय को 100 करोड़ रुपये बढ़ाएगी। इसमें से 50 करोड़ रुपये उपभोग पर खर्च किए जाएंगे। यह दूसरे महीने में आय को 50 करोड़ रुपये बढ़ाएगा, और इसमें से 25 करोड़ रुपये उपभोग पर खर्च किए जाएंगे। यह तीसरे महीने में आय को 25 करोड़ रुपये बढ़ाएगा, और आय में लगातार वृद्धि प्रत्येक अवधि में छोटी और छोटी होती जाएगी जब तक कि सत्रहवें महीने में आय 0.001 करोड़ रुपये तक नहीं बढ़ जाती। इसे बीजगणितीय रूप से भी समझाया जा सकता है:

$$\Delta Y = \Delta I + \Delta I c^1 + \Delta I c^2 + \Delta I c^3 + \cdots + \Delta I c^{n-1}$$

जहाँ c **उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume - MPC)** है। यदि ΔI=100 और c=0.5 है, तो:

$$\Delta Y = 100 + 100(0.5) + 100(0.5)^2 + 100(0.5)^3 + \cdots + 100(0.5)^{n-1}$$

आय प्रसार की यह गत्यात्मक प्रक्रिया मानती है कि **उपभोग अंतराल (consumption lag)** है और कोई **निवेश अंतराल (investment lag)** नहीं है, ताकि उपभोग पिछली अवधि की आय का एक फलन हो, यानी Ct =f(Yt−1) और निवेश समय (t) और निरंतर स्वायत्त निवेश, ΔI, का एक फलन हो, यानी It=f(ΔI)। चित्र 4.9 में, C + I कुल मांग फलन है और 45° रेखा कुल आपूर्ति फलन है। यदि हम समय अवधि t0 से शुरू करते हैं जहाँ OY_0 आय के संतुलन स्तर पर, निवेश में ΔI की वृद्धि होती है, तो अवधि t में आय बढ़े हुए निवेश की मात्रा से बढ़ जाती है (से t_0 से t तक)। बढ़ा हुआ निवेश नए कुल मांग फलन C + I + ΔI द्वारा दिखाया गया है। लेकिन अवधि t_0 में उपभोग पिछड़ जाती है, और अभी भी मूल आय E_0 के बराबर है। लेकिन Y_0 स्तर पर कुल मांग Y_0t_0 से Y_0t तक बढ़ जाती है। अब आपूर्ति पर मांग की अधिकता t_0t के बराबर है। अवधि t में मांग में वृद्धि के कारण उपभोग Y_0t

तक बढ़ जाती है। अब निवेश अवधि t+1 में आय को OY_1 तक और बढ़ाता है और t से E_1 तक उपभोग में वृद्धि करता है। लेकिन इस स्तर पर, कुल मांग Y_1E_1 है जो कुल आपूर्ति AE_1 से अधिक है। यह आगे अवधि t+2 में आय को OY_2 तक बढ़ाने और उपभोग को E_1E_2 तक बढ़ाने की प्रवृत्ति रखता है। इससे मांग Y_2E_2 तक बढ़ जाती है, जिससे कुल मांग की कुल आपूर्ति पर अधिकता BE_2 हो जाती है। आय सृजन की यह प्रक्रिया तब तक जारी रहेगी जब तक कुल मांग फलन C + I + ΔI, nवें अवधि में 45° रेखा के कुल आपूर्ति फलन के बराबर En पर नहीं हो जाता, और आय का नया संतुलन स्तर OYn पर निर्धारित नहीं हो जाता। घुमावदार कदम E_0 से En आय प्रसार का मार्ग है जो गुणक की गत्यात्मक प्रक्रिया को दर्शाता है। चित्र का निचला भाग गुणक प्रक्रिया के समय आयाम को दर्शाता है।

Figure 4.9

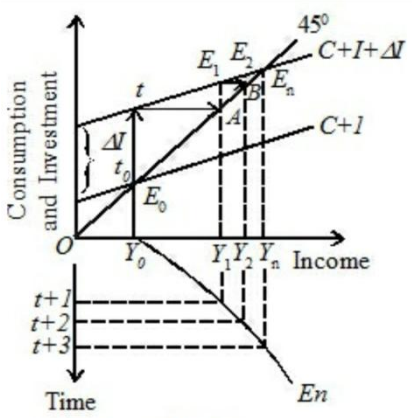

गत्यात्मक गुणक का कार्य (Working of the Dynamic Multiplier)

इस प्रक्रिया को तालिका की सहायता से भी सरलता से समझा जा सकता है।

(MPC = 0.5, प्रारंभिक निवेश वृद्धि = **100** करोड़ रुपये**)**

Table IV

माह / अवधि (Round)	**निवेश में वृद्धि (₹ करोड़)**	**आय में वृद्धि (₹ करोड़)**	**उपभोग पर खर्च (₹ करोड़)**	**बचत (₹ करोड़)**	**संचयी आय वृद्धि (₹ करोड़)**
1st	100.000	100.000	50.000	50.000	100.000

2nd	-	50.000	25.000	25.000	150.000
3rd	-	25.000	12.500	12.500	175.000
4th	-	12.500	6.250	6.250	187.500
5th	-	6.250	3.125	3.125	193.750
6th	-	3.125	1.562	1.563	196.875
7th	-	1.562	0.781	0.781	198.437
8th	-	0.781	0.390	0.391	199.218
9th	-	0.390	0.195	0.195	199.608
10th	-	0.195	0.097	0.098	199.803
11th	-	0.097	0.048	0.049	199.900
12th	-	0.048	0.024	0.024	199.948
13th	-	0.024	0.012	0.012	199.972
14th	-	0.012	0.006	0.006	199.984
15th	-	0.006	0.003	0.003	199.990
16th	-	0.003	0.001	0.002	199.993
17th	-	0.001	0.0005	0.0005	199.994
कुल (असीमित श्रृंखला में)	**100**	**200**	**100**	**100**	**200**

तालिका IV दिखाती है कि कैसे 100 करोड़ रुपये का प्रारंभिक निवेश MPC के 0.5 होने पर, धीरे-धीरे आय में वृद्धि करता है, जो अंततः 200 करोड़ रुपये तक पहुंच जाता है। प्रत्येक दौर में आय की वृद्धि घटती जाती है क्योंकि आय का एक हिस्सा (MPC के अनुसार) उपभोग पर खर्च होता है और शेष (MPS के अनुसार) बचाया जाता है। इस प्रक्रिया को पूरा होने में समय लगता है, जो गत्यात्मक गुणक की मुख्य विशेषता है।

4.7 त्वरक का सिद्धांत (Principle of Accelerator)

अर्थ (Meaning): त्वरक का सिद्धांत (Accelerator Principle) समष्टि अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो उपभोग वस्तुओं की मांग में हुए शुद्ध परिवर्तन के परिणामस्वरूप पूंजीगत वस्तुओं (निवेश) की मांग में होने वाले कई गुना विस्तार की व्याख्या करता है। यह सिद्धांत बताता है कि जब आर्थिक उत्पादन (या सकल घरेलू उत्पाद) में परिवर्तन होता है, तो निवेश में भी परिवर्तन होता है। विशेष रूप से, जब अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की मांग बढ़ती है, तो फर्में बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए नई पूंजी (मशीनें, उपकरण, भवन आदि) में निवेश करती हैं। यह प्रेरित निवेश (Induced Investment) का एक रूप है।

सरल शब्दों में, जहाँ गुणक (Multiplier) यह बताता है कि निवेश में वृद्धि से आय में कितनी वृद्धि होती है, वहीं त्वरक यह बताता है कि आय या उपभोग में वृद्धि से निवेश में कितनी वृद्धि होती है। इसे व्युत्पन्न मांग का सिद्धांत (Principle of Derived Demand) भी कहा जाता है, क्योंकि पूंजीगत वस्तुओं की मांग उपभोग वस्तुओं की मांग से व्युत्पन्न होती है।

त्वरक गुणांक (v) को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$v = \frac{\Delta I}{\Delta C} \ or \ v = \frac{\Delta I}{\Delta Y}$$

जहाँ:

ΔI = निवेश में परिवर्तन, ΔC = उपभोग में परिवर्तन, ΔY = आय में परिवर्तन

त्वरक के सिद्धांत का सर्वप्रथम व्याख्या **एफ. एम. क्लार्क (F. M. Clark)** ने 1917 में की थी। इसलिए यह सिद्धांत प्रोफेसर क्लार्क के नाम से जुड़ा हुआ है। बाद में, **जे. आर. हिक्स (J. R. Hicks), पॉल सैमुएलसन (Paul Samuelson)** और **गुडरिन (Goodwin)** जैसे अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धांत को व्यापार चक्र (Trade Cycle) से जोड़कर विकसित किया। विशेष रूप से, सैमुएलसन ने कीन्स के गुणक और त्वरक के बीच अंतःक्रिया

का एक मॉडल विकसित किया, जो व्यापार चक्रों की व्याख्या में महत्वपूर्ण है। एल्विन हैनसेन (Alvin Hansen) ने भी 1940 के दशक में त्वरक सिद्धांत को आगे बढ़ाया और व्यापार चक्रों में इसकी भूमिका पर जोर दिया।

मान्यताएं (Assumptions): त्वरक सिद्धांत कुछ महत्वपूर्ण मान्यताओं पर आधारित है, जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं:

- **अतिरिक्त उत्पादन क्षमता का अभाव** – सभी फर्में पूर्ण क्षमता पर उत्पादन करती हैं, इसलिए मांग बढ़ने पर नया निवेश करना ज़रूरी है।
- **स्थिर पूंजी-उत्पादन अनुपात** – एक निश्चित उत्पादन हेतु पूंजी की आवश्यकता स्थिर रहती है।
- **मांग में स्थायी वृद्धि** – निवेश तभी होगा जब उपभोग की मांग स्थायी रूप से बढ़े।
- **साधनों की लोचदार पूर्ति** – श्रम, कच्चा माल आदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों।
- **साख की उपलब्धता** – उत्पादन विस्तार हेतु ऋण आसानी से मिले।
- **पूंजीगत पदार्थों की अविभाज्यता** – इन्हें छोटी इकाइयों में विभाजित नहीं किया जा सकता।
- **स्थिर प्रतिफल** – पूंजीगत वस्तुओं के उद्योग स्थिर प्रतिफल के नियम पर चलते हैं।

व्याख्या (Explanation)

त्वरक सिद्धांत की व्याख्या को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीजिए एक अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है। यदि फर्में पहले से ही अपनी पूर्ण क्षमता पर काम कर रही हैं, तो इस बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए उन्हें अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ानी होगी। उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए उन्हें नई मशीनें, उपकरण और कारखाने लगाने होंगे, जिसका अर्थ है निवेश में वृद्धि।

यह सिद्धांत बताता है कि उपभोग में एक छोटा सा परिवर्तन भी निवेश में कई गुना बड़ा परिवर्तन ला सकता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उत्पादक भविष्य की मांग का अनुमान लगाते हुए वर्तमान में निवेश करते हैं। यदि उन्हें लगता है कि मांग में वृद्धि स्थायी है, तो वे न केवल बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए, बल्कि भविष्य में और भी अधिक उत्पादन करने के लिए निवेश करेंगे।

उदाहरण:

मान लीजिए, पूंजी-उत्पादन अनुपात (v) 3 है, यानी ₹1 के अतिरिक्त उत्पादन के लिए ₹3 की पूंजी की आवश्यकता है।

यदि उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में ₹10 करोड़ की वृद्धि होती है, तो इस बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए:

प्रेरित निवेश = त्वरक गुणांक × उपभोग/आय में परिवर्तन

प्रेरित निवेश = 3×₹10 करोड़=₹30 करोड़

यहाँ, उपभोग में ₹10 करोड़ की वृद्धि के परिणामस्वरूप निवेश में ₹30 करोड़ की वृद्धि हुई। इस प्रकार, त्वरक प्रभाव के कारण निवेश में तेजी आती है।

यदि उपभोग में कमी आती है, तो इसका विपरीत प्रभाव होता है, और निवेश में तेजी से गिरावट आती है (नकारात्मक त्वरक)। यही कारण है कि त्वरक सिद्धांत व्यापार चक्रों की व्याख्या में महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह बताता है कि कैसे आर्थिक विस्तार और संकुचन के दौरान निवेश में बड़े उतार-चढ़ाव आते हैं।

आलोचना (Criticism)

त्वरक सिद्धांत की कई आधारों पर आलोचना की गई है:

- **स्थिर पूंजी-उत्पादन अनुपात अवास्तविक** – तकनीकी बदलाव से यह बदलता रहता है।
- **अतिरिक्त क्षमता की उपेक्षा** – फर्में पहले से उपलब्ध क्षमता से मांग बढ़ोतरी पूरी कर सकती हैं।
- **मांग की प्रकृति की अनदेखी** – अस्थायी मांग परिवर्तनों को शामिल नहीं करता।
- **साधनों की लोचदार आपूर्ति की मान्यता** – व्यवहार में पूर्ति हमेशा लोचदार नहीं होती।
- **निवेश निर्णय जटिल** – केवल आय पर नहीं, बल्कि ब्याज दर, नीति, उम्मीदें आदि पर निर्भर।
- **उत्पादन में गिरावट पर लागू नहीं** – फर्में हमेशा नकारात्मक निवेश नहीं करतीं।
- **पूंजीगत वस्तुओं का टिकाऊपन** – लंबे समय तक चलने पर त्वरक प्रभाव घट जाता है।

महत्व (Significance)

आलोचनाओं के बावजूद, त्वरक सिद्धांत का समष्टि आर्थिक विश्लेषण में महत्वपूर्ण स्थान है:

- **व्यापार चक्र**: उपभोग/आय में छोटे बदलाव से निवेश में बड़े उतार-चढ़ाव आते हैं, जिससे Boom और Recession की व्याख्या होती है।
- **निवेश व्यवहार**: मांग में परिवर्तन निवेश निर्णयों को प्रभावित करता है।

- **नीति निर्माण**: सरकारी व्यय/कर नीति से उपभोग को प्रभावित कर निवेश व आर्थिक गतिविधि को नियंत्रित किया जा सकता है।
- **आर्थिक वृद्धि**: पूंजी संचय की दर उत्पादन वृद्धि पर निर्भर करती है।
- **गुणक से संबंध**: गुणक व त्वरक मिलकर आय व रोजगार में परिवर्तनों की गहरी व्याख्या देते हैं।

4.7.1 गुणक और त्वरक के बीच अंतर (Difference between Multiplier and Accelerator)

अंतर का आधार	**गुणक** (Multiplier)	**त्वरक** (Accelerator)
अर्थ	निवेश में परिवर्तन के कारण आय में होने वाला कई गुना परिवर्तन।	उपभोग या आय में परिवर्तन के कारण निवेश में होने वाला कई गुना परिवर्तन।
किस पर निर्भर	सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) पर निर्भर करता है।	पूंजी-उत्पादन अनुपात और पूंजीगत वस्तुओं के टिकाऊपन पर निर्भर करता है।
कारण-प्रभाव संबंध	निवेश स्वतंत्र चर है और आय आश्रित चर है।	उपभोग/आय स्वतंत्र चर है और निवेश आश्रित चर है।
प्रकृति	यह आय सृजन प्रक्रिया का विश्लेषण करता है।	यह पूंजीगत वस्तुओं की व्युत्पन्न मांग का विश्लेषण करता है।
शुरूआत	स्वायत्त निवेश में वृद्धि से शुरू होता है।	उपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि से शुरू होता है।
व्यापार चक्र	व्यापार चक्र के ऊपरी और निचले मोड़ को समझाने में सहायक है।	व्यापार चक्र के आयाम (Amplitude) और गति (Velocity) को बढ़ाने में महत्वपूर्ण है।
प्रतिक्रिया	यह फॉरवर्ड-लुकिंग (अग्रगामी) अवधारणा है, क्योंकि यह बताता है कि कैसे निवेश भविष्य की आय को प्रभावित करेगा।	यह बैकवर्ड-लुकिंग (पश्चगामी) अवधारणा है, क्योंकि यह बताता है कि वर्तमान उपभोग परिवर्तन पिछले मांग परिवर्तनों के कारण निवेश को कैसे प्रभावित करते हैं। (हालांकि, भविष्य की अपेक्षाएं भी त्वरक को

		प्रभावित करती हैं)।
मुख्य फोकस	आय और रोजगार पर निवेश के प्रभाव की व्याख्या करता है।	निवेश पर उपभोग में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या करता है।

4.8 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

4.8.1 सही विकल्प चुनिए

1: निम्नलिखित में से कौन-सा निवेश का उदाहरण स्वायत्त निवेश (Autonomous Investment) है?

a) उपभोक्ता मांग में वृद्धि के कारण नया प्लांट लगाना, b) सरकार द्वारा सड़कों का निर्माण

c) त्योहारों के समय वस्तुओं की अधिक आपूर्ति, d) बिक्री बढ़ने पर गोदाम का विस्तार

2: पूंजी की सीमांत दक्षता (Marginal Efficiency of Capital – MEC) को किसके रूप में परिभाषित किया जाता है?

a) कुल पूंजी का औसत रिटर्न, b) भविष्य में होने वाली आय का वर्तमान मूल्य

c) निवेश से प्राप्त होने वाली अधिकतम लाभप्रदता, d) न्यूनतम लागत पर उत्पादन

3: गुणक (Multiplier) सिद्धांत के अनुसार, MPC जितनी अधिक होगी, गुणक का मान...

a) कम होगा, b) अपरिवर्तित रहेगा, c) अधिक होगा, d) शून्य होगा

4: त्वरक सिद्धांत के अनुसार, निवेश मुख्यतः किस पर निर्भर करता है?

a) ब्याज दर पर, b) बचत दर पर, c) उपभोग प्रवृत्ति पर, d) आय में परिवर्तन की दर पर

5:निम्नलिखित में से कौन-सा गुणक का एक संभावित रिसाव (leakage) नहीं है?

a) करों में वृद्धि, b) उच्च बचत, c) घरेलू खपत, d) आयात में वृद्धि

4.8.2 सही या गलत बताइए (True or False)

1. स्वायत्त निवेश का स्तर आय में परिवर्तन के अनुसार बदलता है।
2. पूंजी की सीमांत दक्षता **(MEC)** को मुनाफे की अपेक्षित दर भी कहा जाता है।

3. गुणक प्रभाव केवल तब कार्य करता है जब सीमांत उपभोग प्रवृत्ति **(MPC)** शून्य हो।
4. त्वरक सिद्धांत के अनुसार, आय में परिवर्तन निवेश को प्रभावित करता है।
5. निवेश गुणक के रिसावों में आयात, कर, और बचत शामिल हैं।

4.9 सारांश (Summary)

यह अध्याय समष्टि अर्थशास्त्र में निवेश की भूमिका को स्पष्ट करता है। निवेश वह प्रक्रिया है जिसमें वर्तमान संसाधनों का उपयोग भविष्य की आय और उत्पादन बढ़ाने हेतु किया जाता है। इसमें स्वायत्त और प्रेरित निवेश के भेद, NPV, पूंजी की सीमांत दक्षता (MEC) और निवेश की सीमांत दक्षता (MEI) जैसी अवधारणाओं की चर्चा की गई। कीन्स का गुणक सिद्धांत बताता है कि प्रारंभिक निवेश से आय में कई गुना वृद्धि होती है, जबकि त्वरक सिद्धांत यह दर्शाता है कि आय में परिवर्तन निवेश को प्रभावित करता है। गुणक और त्वरक के अंतर व इनके संयुक्त प्रभाव से अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव समझे जाते हैं। कुल मिलाकर, अध्याय यह दिखाता है कि निवेश उत्पादन, रोजगार और आय निर्धारण का प्रमुख तंत्र है।

4.10 सूचक शब्द (Keywords)

- **स्वायत्त निवेश (Autonomous Investment):** ऐसा निवेश जो आय या मांग में परिवर्तन से प्रभावित नहीं होता, जैसे—सरकारी आधारभूत ढाँचे का निर्माण।
- **प्रेरित निवेश (Induced Investment):** ऐसा निवेश जो आय, मांग या लाभ में वृद्धि के कारण किया जाता है। यह आर्थिक गतिविधियों के विस्तार से जुड़ा होता है।
- **शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value – NPV):** भविष्य में निवेश से प्राप्त होने वाली आय का वर्तमान मूल्य। यह यह तय करने में मदद करता है कि कोई निवेश लाभकारी है या नहीं।
- **सीमांत पूंजी दक्षता (Marginal Efficiency of Capital – MEC):** किसी नई पूंजी वस्तु से प्राप्त होने वाली अपेक्षित लाभप्रदता की दर। यह निवेश निर्णयों में मुख्य भूमिका निभाती है।
- **सीमांत निवेश दक्षता (Marginal Efficiency of Investment – MEI):** विभिन्न निवेश परियोजनाओं की लाभप्रदता दर का वह स्तर जहाँ निवेश और ब्याज दर का संतुलन होता है।

- **निवेश गुणक (Investment Multiplier):** यह सिद्धांत दर्शाता है कि एक अतिरिक्त निवेश किस प्रकार कई गुना राष्ट्रीय आय उत्पन्न कर सकता है। सूत्र: $K = \frac{1}{1-MPC}$
- **गत्यात्मक गुणक (Dynamic Multiplier):** वह गुणक जो समय के साथ चरणबद्ध रूप से कार्य करता है। इससे यह समझा जाता है कि निवेश का प्रभाव समय में कैसे फैलता है।
- **त्वरक सिद्धांत (Accelerator Principle):** यह सिद्धांत दर्शाता है कि आय में वृद्धि होने पर निवेश में कितनी वृद्धि होगी। यह उपभोग और पूंजी निर्माण के बीच संबंध स्थापित करता है।

4.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions-SAQs)

1. निवेश क्या है**?** स्वायत्त और प्रेरित निवेश में क्या अंतर है**?** उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। *(What is investment? Explain the difference between autonomous and induced investment with examples.)*
2. पूंजी की सीमांत दक्षता **(MEC)** और निवेश की सीमांत दक्षता **(MEI)** में अंतर स्पष्ट कीजिए। *(Differentiate between Marginal Efficiency of Capital (MEC) and Marginal Efficiency of Investment (MEI).)*
3. निवेश गुणक की अवधारणा को समझाइए। गुणक की मान्यताओं और कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिए। *(Explain the concept of investment multiplier. Discuss its assumptions and working process.)*
4. गुणक के रिसावों **(Leakages)** की सूची बनाइए और बताइए कि वे गुणक के प्रभाव को कैसे कम करते हैं। *(List the leakages of the multiplier and explain how they reduce its effect.)*
5. गत्यात्मक गुणक **(Dynamic Multiplier)** क्या है**?** इसकी कार्यविधि को चरणबद्ध रूप से समझाइए। *(What is the dynamic multiplier? Explain its working in step-wise manner.)*
6. त्वरक सिद्धांत **(Accelerator Principle)** को परिभाषित कीजिए। इसके सिद्धांत की मान्यताएँ और आलोचना क्या हैं**?** *(Define the accelerator principle. What are its assumptions and criticisms?)*

7. गुणक और त्वरक में क्या अंतर है**?** दोनों सिद्धांतों की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए। *(What is the difference between multiplier and accelerator? Compare and explain both.)*

4.12 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

4.8.1 => सही उत्तर: 1. b) सरकार द्वारा सड़कों का निर्माण, 2. c) निवेश से प्राप्त होने वाली अधिकतम लाभप्रदता, 3. c) अधिक होगा, 4. d) आय में परिवर्तन की दर पर, 5. c) घरेलू खपत।

4.8.2=> सही उत्तर: 1. गलत (स्वायत्त निवेश आय से स्वतंत्र होता है।), 2. सही, 3. गलत (MPC शून्य होने पर गुणक प्रभाव नहीं होता।), 4. सही, 5. सही।

4.13 संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

1. Abel, Andrew B., Ben S. Bernanke & Dean Croushore – Macroeconomics (8th Edition), Pearson Education.
2. Ackley, G. – *Macroeconomics: Theory and Policy*, Macmillan Publishing
3. Dornbusch, R., Fischer, S. and Startz, R. – *Macroeconomics*, McGraw Hill
4. Branson, W. A. – *Macroeconomic Theory and Policy*, Harper & Row
5. Jhingan, M.L. – *Samasti Arthashastra (समष्टि अर्थशास्त्र)*, Vrinda Publications, Delhi
6. Ahuja, H.L. – *Modern Economics*, S. Chand & Co., New Delhi

विषय: अर्थशास्त्र (समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत I)	
विषय क्रमांक: बीए BECO-301	लेखक: डॉ. सोमनाथ परूथी
अध्याय: 5	वेट्टर:
शास्त्रीय दृष्टिकोण: **आय**, **उत्पादन एवं रोजगार का निर्धारण तथा से का बाजार** नियम	

अध्याय की संरचना (Structure of the Chapter)

5.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

5.2 समष्टि अर्थशास्त्र की ज़रूरत क्यों पड़ी**? (Why was there a Need for Macroeconomics?)**

5.3 **परंपरागत क्रांति** (The Classical Revolution)

5.4 **परंपरागत मॉडल** (Classical Model)

5.4.1 उत्पादन **(Production)**

5.4.2 **रोज़गार** (Employment)

5.4.2.1 श्रम की माँग (Labor Demand)

5.4.2.2 श्रम पूर्ति **(Labor Supply)**

5.4.3 **संतुलन उत्पादन और रोज़गार** (Equilibrium Output and Employment)

5.4.4 **उत्पादन और रोज़गार के निर्धारक** (The Determinants of Output and Employment)

5.5 **कुल पूर्ति वक्र और क्लासिकल दृष्टिकोण** (Aggregate Supply Curve and the Classical Approach)

5.6 'से' का बाज़ार नियम (Say's Law of Market)

5.6.1 '**से**' **का बाज़ार नियम ऑस्कर लांग के अनुसार** (Say's Market Law According to Oscar Lange)

5.6.2 '**से**' **का बाज़ार नियम ए. सी. पीगू के अनुसार** (Say's Market Law According to A.C. Pigou)

5.6.3 '**से**' **के बाज़ार नियम के निहितार्थ** (Implications of Say's Market Law)

5.6.4 '**से**' **के नियम की आलोचना** (Criticism of Say's Law)

5.7 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

5.8 सारांश **(Summary)**

5.9 सूचक शब्द **(Keywords)**

5.10 **स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न** (Self Assessment Questions-SAQs)

5.11 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

5.12 संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

5.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित बातों को समझने और विश्लेषण करने में सक्षम होंगे:

- समष्टि अर्थशास्त्र के उद्भव की आवश्यकता को ऐतिहासिक और सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में समझना।
- शास्त्रीय क्रांति **(Classical Revolution)** और इसके प्रमुख योगदानों को पहचानना।
- शास्त्रीय मॉडल की संरचना का विश्लेषण करना, जिसमें उत्पादन, रोज़गार, श्रम की मांग व आपूर्ति और संतुलन निर्धारण शामिल हैं।
- यह समझना कि श्रम बाजार में वास्तविक मजदूरी किस प्रकार संतुलन में सहायता करती है और किस आधार पर उत्पादन व रोजगार का निर्धारण होता है।

- कुल पूर्ति वक्र **(Aggregate Supply Curve)** के शास्त्रीय स्वरूप को समझना और यह जानना कि यह क्यों लंबी अवधि में ऊर्ध्वाधर होता है।
- 'से' का बाजार सिद्धांत **(Say's Law of Market)** की परिभाषा, मूल मान्यताएँ, विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं में व्याख्या और आधुनिक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत भिन्न दृष्टिकोणों (जैसे ऑस्कर लांग और ए. सी. पीगू) का अध्ययन करना।
- 'से' के बाजार सिद्धांत के निहितार्थ और आलोचनात्मक मूल्यांकन को समझना।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में हमने समष्टि अर्थव्यवस्था में निवेश, सीमांत पूंजी दक्षता, गुणक और त्वरक जैसे महत्वपूर्ण सिद्धांतों का अध्ययन किया। वहाँ हमने देखा कि किस प्रकार निवेश और व्यय के घटक राष्ट्रीय आय और रोजगार के निर्धारण में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। किंतु ये अवधारणाएँ मूलतः कीन्सीय विश्लेषण से संबंधित हैं, जो 1930 के दशक में विकसित हुआ।

इससे पूर्व, समष्टि आर्थिक चिंतन का स्वरूप शास्त्रीय दृष्टिकोण पर आधारित था, जो कि 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 19वीं शताब्दी में प्रभावी था। इस अध्याय में हम उस **शास्त्रीय दृष्टिकोण** का अध्ययन करेंगे, जिसने दीर्घकाल तक आय, उत्पादन और रोजगार के निर्धारण की मानक व्याख्या प्रस्तुत की।

शास्त्रीय दृष्टिकोण मानता है कि **बाजार स्वयं-संयोजित (self-adjusting)** होता है, और अर्थव्यवस्था हमेशा पूर्ण रोजगार की स्थिति में कार्य करती है। इसके अंतर्गत मजदूरी, मूल्य और ब्याज दरें पूर्ण लचीलापन रखती हैं, जिससे माँग और आपूर्ति स्वतः संतुलित हो जाती हैं।

इस अध्याय में हम समझेंगे कि शास्त्रीय विद्वानों ने उत्पादन और रोजगार के निर्धारण की प्रक्रिया को कैसे स्पष्ट किया, श्रम बाजार किस प्रकार कार्य करता है, और वास्तविक मजदूरी का क्या प्रभाव पड़ता है। साथ ही, हम 'से' के बाजार नियम (Say's Law of Market) का विश्लेषण करेंगे, जो शास्त्रीय प्रणाली की केंद्रीय अवधारणा है।

'से' का सिद्धांत कहता है कि *"हर आपूर्ति अपनी स्वयं की मांग उत्पन्न कर लेती है"*, यानी उत्पादन ही आय का स्रोत है और इसलिए माँग की कमी जैसी कोई दीर्घकालिक समस्या नहीं होती। इस सिद्धांत की विभिन्न व्याख्याएं, निहितार्थ और आलोचनाएँ भी इस अध्याय में शामिल की जाएँगी।

इस प्रकार यह अध्याय हमें शास्त्रीय अर्थशास्त्र की मूलभूत मान्यताओं, उसके तर्कों और सीमाओं को समझने में मदद करेगा। यह न केवल इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि कीन्सीय क्रांति को समझने की पूर्वशर्त भी है।

5.2 समष्टि अर्थशास्त्र की ज़रूरत क्यों पड़ी? (Why was there a Need for Macroeconomics?)

जैसा कि हम अध्याय एक में पढ़ चुके हैं कि अर्थशास्त्र में *समष्टि अर्थशास्त्र* शब्द की शुरुआत 1930 के दशक में हुई थी। दरअसल, बीसवीं सदी की शुरुआत से ही अर्थशास्त्रियों का ध्यान इस बात पर ज्यादा गया कि पूरे देश की आय, रोज़गार और कीमतों को कौन-सी ताकतें प्रभावित करती हैं। इससे पहले अर्थशास्त्र में ज़्यादातर ध्यान छोटे-छोटे व्यक्तिगत या इकाई स्तर के सवालों (जैसे उपभोक्ता का व्यवहार या किसी एक फर्म की उत्पादन प्रक्रिया) पर होता था, जिसे हम माइक्रोइकॉनॉमिक्स कहते हैं।

लेकिन 1929 में जो *महामंदी* आई, उसने पूरी दुनिया को हिला कर रख दिया। उस समय लोगों की नौकरियाँ चली गईं, उत्पादन रुक गया, और अर्थव्यवस्था गहरी समस्या में फँस गई। इस संकट ने अर्थशास्त्रियों को मजबूर किया कि वे बड़े पैमाने पर सोचें और ऐसे सवालों पर ध्यान दें जो पूरे देश या दुनिया की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। इसी दौर में 'व्यापार चक्र' (बूम और मंदी के चक्र) को समझने और अर्थव्यवस्था को स्थिर रखने के लिए नीतियाँ बनाने की ज़रूरत महसूस की गई।

कीन्स और समष्टि अर्थशास्त्र की क्रांति: इस ज़रूरत के जवाब में जो सबसे अहम योगदान सामने आया, वह था *जॉन मेनार्ड कीन्स* की किताब — *"The General Theory of Employment, Interest and Money"*, जो 1936 में प्रकाशित हुई। कीन्स ने जो बातें इस किताब में कहीं, उन्होंने अर्थशास्त्र की पारंपरिक सोच को हिला कर रख दिया और एक नई सोच की नींव रखी, जिसे हम *कीनेसियन क्रांति* (Keynesian Revolution) कहते हैं। लेकिन यह क्रांति थी किसके ख़िलाफ़?

यह उस पुरानी आर्थिक सोच के खिलाफ़ थी जिसे कीन्स ने " परंपरागत अर्थशास्त्र " कहा। कीन्स का तर्क था कि जो अर्थशास्त्री उनसे पहले थे, वे पूरी तरह व्यावहारिक स्थिति को नहीं समझ पा रहे थे — खासकर जब अर्थव्यवस्था संकट में हो और लोग बेरोज़गार हों। इसलिए, कीन्स ने न केवल एक नया सिद्धांत दिया, बल्कि ऐसी नीतियाँ भी सुझाईं जो सरकारें अपनाकर मंदी से बाहर आ सकें।

परंपरागत बनाम कीनेसियन दृष्टिकोण: अब सवाल उठता है — वो क्लासिकल सोच थी क्या? क्लासिकल सिद्धांत के अनुसार, किसी भी समय देश का उत्पादन एक ऐसे संतुलन पर होता है जहाँ सभी लोग पूरी तरह से

रोज़गार में होते हैं। मतलब, अगर कहीं बेरोज़गारी है तो वह अस्थायी है, और कुछ समय बाद बाज़ार की ताकतें (जैसे कीमतों और मज़दूरी में बदलाव) खुद-ब-खुद इसे सुधार देंगी।

परंपरागत (Classical) अर्थशास्त्रियों का मानना था कि अगर अर्थव्यवस्था में कोई असंतुलन है, तो वह खुद से ही ठीक हो जाएगा — इसके लिए सरकार को हस्तक्षेप करने की ज़रूरत नहीं है। उनका तर्क था कि यदि कीमतें और मज़दूरी लचीली हों, तो मांग और पूर्ति में तालमेल बन जाएगा और अर्थव्यवस्था फिर से *पूर्ण रोजगार* की स्थिति में पहुँच जाएगी।

कीन्स की अलग सोच और उसकी ज़रूरत: कीन्स को यह बात बिल्कुल व्यावहारिक नहीं लगी। उन्होंने कहा कि संकट के समय, जब लोगों की आमदनी कम होती है और वे खर्च नहीं करते, तो मांग घटती है और बेरोज़गारी बढ़ती जाती है। ऐसे में अगर हम यह उम्मीद करें कि केवल कीमतें या मज़दूरी घटाने से सब कुछ अपने-आप ठीक हो जाएगा, तो यह गलत है। उन्होंने ज़ोर दिया कि ऐसी स्थिति में सरकार को आगे आना चाहिए और खर्च बढ़ाना चाहिए — जैसे सार्वजनिक निर्माण पर निवेश करना — ताकि मांग बढ़े और रोजगार के मौके बनें।

परंपरागत और नव-परंपरागत अर्थशास्त्र: कीन्स ने "क्लासिकल" शब्द का इस्तेमाल उन सभी अर्थशास्त्रियों के लिए किया जो 1936 से पहले मैक्रोइकॉनॉमिक सवालों पर लिख रहे थे। लेकिन पारंपरिक रूप से इस वर्गीकरण को दो हिस्सों में बाँटा गया है — पहला है *क्लासिकल काल*, जिसमें *एडम स्मिथ* (1776), *डेविड रिकार्डो* (1817), और *जॉन स्टुअर्ट मिल* (1848) जैसे दिग्गज शामिल थे। दूसरा है *नव-क्लासिकल काल*, जिसमें *अल्फ्रेड मार्शल* (1920) और *ए. सी. पिगू* (1933) जैसे अर्थशास्त्री आते हैं।

कीन्स का यह मानना था कि इन दोनों अवधियों में जो भी समष्टि अर्थशास्त्र सोच थी, वह मूल रूप से एक जैसी ही थी, इसलिए इनका एक साथ अध्ययन किया जा सकता है।

परंपरागत सिद्धांत की प्रासंगिकता और विरासत: हालाँकि कीन्स के समय में ऐसा लगा कि क्लासिकल सोच अब काम की नहीं रही, लेकिन समय के साथ अर्थशास्त्रियों को यह समझ में आने लगा कि क्लासिकल सिद्धांतों में भी कुछ ऐसी बातें थीं जो आज भी महत्वपूर्ण हैं। बाद के अर्थशास्त्रियों — जैसे *मुद्रावादी (Monetarists)*, *नए क्लासिकल विचारक*, और *वास्तविक व्यापार चक्र सिद्धांतकार* — ने कीन्स की सोच को चुनौती देने के लिए क्लासिकल मॉडल से ही शुरुआत की।

इसलिए, क्लासिकल मॉडल को आज भी एक महत्वपूर्ण आधार माना जाता है — न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से, बल्कि आज के सिद्धांतों की आलोचना या सुधार के लिए भी। यह मॉडल हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे अलग-अलग कुल संकेतक (जैसे रोज़गार, कीमतें, ब्याज दरें) एक-दूसरे से जुड़े होते हैं और कैसे वे संतुलन की स्थिति प्राप्त करते हैं।

5.3 परंपरागत क्रांति (The Classical Revolution)

परंपरागत (Classical) अर्थशास्त्र का उदय एक प्रकार की क्रांति के रूप में हुआ, जो उस समय प्रचलित वाणिज्यवादी (Mercantilist) आर्थिक सिद्धांतों के खिलाफ थी। वाणिज्यवाद के विचार मुख्य रूप से सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के यूरोप में राष्ट्र-राज्य की उत्पत्ति से जुड़े थे। वाणिज्यवाद के दो प्रमुख स्तंभ थे: (1) **बुलियनवाद (Bullionism)** – यह विचार कि किसी राष्ट्र की समृद्धि और शक्ति का माप उसके पास मौजूद सोने और चांदी (कीमती धातुओं) की मात्रा से होता है; और

(2) **राज्य की सक्रिय भूमिका** – यह विश्वास कि पूंजीवादी व्यवस्था को विकसित करने और दिशा देने के लिए राज्य की दखलअंदाजी जरूरी है।

बुलियनवाद के अनुसार, देश को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह निर्यात के ज़रिए आयात से अधिक कमाए ताकि उसके पास अधिक मात्रा में सोना और चांदी इकट्ठा हो सके। इसके लिए कई रणनीतियाँ अपनाई जाती थीं, जैसे निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सब्सिडी देना, आयात पर भारी शुल्क लगाना, और विदेशी बाज़ारों को अपने नियंत्रण में रखने के लिए उपनिवेशों का विकास करना। बुलियनवाद मानता था कि विकासशील पूंजीवाद को राज्य की मदद और दिशा की आवश्यकता है। इसलिए, विदेश व्यापार को कड़ाई से नियंत्रित किया जाता था, और बुलियन (सोना-चांदी) के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया जाता था ताकि देश के अंदर इसका भंडार बना रहे। इसके अलावा, राज्य का हस्तक्षेप घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करने, आयातित वस्तुओं के उपयोग को कम करने, और देश के मानव व प्राकृतिक संसाधनों के विकास के लिए भी किया जाता था।

लेकिन क्लासिकल अर्थशास्त्री इन वाणिज्यवादी विचारों से सहमत नहीं थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि किसी राष्ट्र की समृद्धि सोने-चांदी के भंडार से नहीं, बल्कि **वास्तविक आर्थिक कारकों** से तय होती है — जैसे कि उत्पादन क्षमता, श्रम, पूंजी, भूमि, और तकनीक। उन्होंने यह भी माना कि अगर बाजार को स्वतंत्र रूप से कार्य करने दिया जाए, बिना राज्य के अनावश्यक हस्तक्षेप के, तो वह स्वयं अपने आप को समायोजित कर लेता है और

संतुलन की ओर अग्रसर होता है। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के विचारों का आधार 'वास्तविक विश्लेषण' था — यानी वे यह मानते थे कि किसी अर्थव्यवस्था की प्रगति का आधार उत्पादन के साधनों का विस्तार और तकनीकी उन्नति है। उनके अनुसार, धन केवल एक **माध्यम** है लेन-देन को सरल बनाने के लिए, न कि समृद्धि का वास्तविक स्रोत।

क्लासिकल अर्थशास्त्री सरकार की अत्यधिक भूमिका पर अविश्वास रखते थे। उनका विश्वास था कि अगर व्यक्ति और राष्ट्र को बिना सरकारी रुकावट के कार्य करने दिया जाए, तो वे अपने निजी स्वार्थों के माध्यम से समाज के व्यापक हित में भी काम करते हैं। उनका मानना था कि सरकार को केवल इतनी ही भूमिका निभानी चाहिए जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि बाजार प्रतिस्पर्धी बना रहे और कोई व्यक्ति बाजार को नियंत्रित न कर सके।

क्लासिकल दृष्टिकोण के ये दो केंद्रीय विचार — (i) वास्तविक आर्थिक कारकों पर बल और (ii) मुक्त-बाजार प्रणाली में विश्वास — उस समय के दीर्घकालिक विकास संबंधी बहसों के दौरान विकसित हुए। बाद में, इन्हीं विचारों ने क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अल्पकालिक आर्थिक दृष्टिकोण को भी प्रभावित किया।

जब क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने बुलियनवाद की आलोचना की, तो उन्होंने इस विचार पर जोर दिया कि धन (money) का कोई अंतर्निहित मूल्य नहीं होता। धन का महत्व केवल इस बात में है कि उससे कौन-कौन सी वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं। क्लासिकल सोच में, धन का मुख्य कार्य विनिमय का माध्यम बनना था। इसके विपरीत, वाणिज्यवादी दृष्टिकोण में धन को आर्थिक गतिविधि को प्रोत्साहित करने वाला साधन माना जाता था। उनका यह मानना था कि अल्पकाल में यदि धन की पूर्ति बढ़ाई जाए, तो वस्तुओं की माँग बढ़ेगी, जिससे उत्पादन और रोज़गार में इज़ाफा होगा। लेकिन क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के लिए यह विचार खतरनाक था क्योंकि इससे यह संकेत मिलता था कि मौद्रिक कारक भी वास्तविक उत्पादन और रोजगार को प्रभावित कर सकते हैं — और वे इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, भले ही वह अल्पकालिक हो।

इसी तरह, क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने वाणिज्यवादियों के उस विचार का भी विरोध किया जिसमें राज्य की भूमिका यह सुनिश्चित करने के लिए जरूरी मानी जाती थी कि उत्पादन के लिए पर्याप्त बाज़ार उपलब्ध हों। वाणिज्यवादी सोच के अनुसार, जब उत्पादन बढ़ता है, तो घरेलू और विदेशी उपभोग को बढ़ावा देकर उसे खपत में बदलना पड़ता है। इसके विपरीत, **जॉन स्टुअर्ट मिल** जैसे क्लासिकल अर्थशास्त्री यह स्पष्ट रूप से कहते हैं: "इन भ्रमित विचारों के विरुद्ध, राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने यह सफलतापूर्वक सिद्ध किया कि उपभोग को किसी

भी प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं होती।"

क्लासिकल दृष्टिकोण यह था कि बाजार का प्राकृतिक तंत्र स्वयं यह सुनिश्चित करेगा कि उत्पादित वस्तुओं के लिए बाजार मौजूद हो। उनका कहना था: "किसी भी कानून निर्माता को उपभोग के विषय में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।"

उनके अनुसार, यदि उत्पादन होता है, तो उसके अनुरूप माँग अपने आप उत्पन्न हो जाती है। इसलिए, **"सभी वस्तुओं के लिए खरीदारों की कमी" जैसी कोई स्थिति नहीं हो सकती**। यही कारण था कि क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने कुल माँग (aggregate demand) को प्रभावित करने वाले कारकों पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

इस पूरी बहस से क्लासिकल विश्लेषण की दो प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती हैं:

1. **मौद्रिक कारकों के बजाय वास्तविक कारकों पर जोर** – क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि उत्पादन और रोजगार को तय करने में धन की भूमिका नगण्य है। धन केवल विनिमय का साधन है, न कि उत्पादन या मांग का निर्धारक।
2. **स्वत: संतुलन की प्रक्रिया में विश्वास** – क्लासिकल सोच के अनुसार, यदि सरकार अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप न करे, तो बाजार स्वयं पर्याप्त माँग उत्पन्न कर लेगा। इसलिए, सरकार द्वारा मांग को बढ़ाने के लिए किसी नीति की जरूरत नहीं है — और यदि ऐसा किया जाए, तो वह सामान्यतः हानिकारक ही होगा।

अब हम आगे बढ़ते हैं उन मॉडलों की ओर जिन्हें क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने इन सिद्धांतों को सिद्ध करने के लिए विकसित किया था।

5.4 परंपरागत मॉडल (Classical Model)

5.4.1 **उत्पादन (Production)**

क्लासिकल मॉडल में "उत्पादन" की अवधारणा एक केंद्रीय भूमिका निभाती है। इस मॉडल का मूल आधार कुल उत्पादन फलन (aggregate production function) होता है, जो यह दर्शाता है कि अर्थव्यवस्था में कितना उत्पादन (output) होगा, यह इस पर निर्भर करता है कि उत्पादन के कौन-कौन से संसाधन (inputs) और कितनी मात्रा में उपयोग किए जा रहे हैं। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने इस उत्पादन फलन को वास्तविक फर्मों की तकनीकी क्षमताओं के आधार पर परिभाषित किया।

इस उत्पादन फलन को गणितीय रूप में इस प्रकार लिखा जाता है:

$$Y = F(K, N) \quad \text{.....(5.1)}$$

यहाँ:

- **Y** कुल उत्पादन (output) है,
- **K** पूंजी स्टॉक (capital stock) है — जैसे संयंत्र और उपकरण, और
- **N** श्रमिकों की संख्या (homogeneous labor input) है।

इस मॉडल में अल्पावधि (short run) को ध्यान में रखते हुए, यह माना जाता है कि पूंजी का स्टॉक स्थिर रहता है। इसे दर्शाने के लिए अक्सर K पर एक बार लगाई जाती है ($\bar{K}$)। इसी तरह, तकनीक (technology) और जनसंख्या (population) को भी स्थिर मान लिया जाता है। यानी, इस अवधि में केवल श्रम (N) को ही एक परिवर्तनशील घटक माना जाता है, और हम देखते हैं कि N में बदलाव से उत्पादन (Y) कैसे प्रभावित होता है।

Table I

The Relationship Between Output, Fixed Capital Stock, and Labor

	N = Labor	*Y = Output*	*ΔY/ΔN = MPN*	
A	0	0		
B	1	10	10	Constant returns
C	2	20	10	
D	3	28	8	Diminishing returns
E	4	33	5	
F	5	34	1	
G	6	32	−2	Negative returns

इसी सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए एक तालिका (तालिका I) दी जाती है जिसमें श्रम में बदलाव और उसके परिणामस्वरूप उत्पादन में बदलाव को दर्शाया गया है, जबकि पूंजी को स्थिर रखा गया है।

अब हम प्रत्येक पंक्ति को समझते हैं:

पंक्ति A पर, कोई श्रम नियोजित नहीं है (N = 0), इसलिए उत्पादन भी शून्य है (Y = 0)। यह स्पष्ट करता है कि बिना श्रमिकों के कोई उत्पादन संभव नहीं।

पंक्ति B पर, एक श्रमिक नियोजित किया जाता है जिससे उत्पादन 10 यूनिट हो जाता है। ΔY/ΔN = 10/1 = **10**, जिसे हम MPN (Marginal Product of Labor) कहते हैं — यह दर्शाता है कि श्रम में एक इकाई की वृद्धि से उत्पादन में 10 यूनिट की वृद्धि हुई।

Figure 5.1

Production Function and MPN Curves

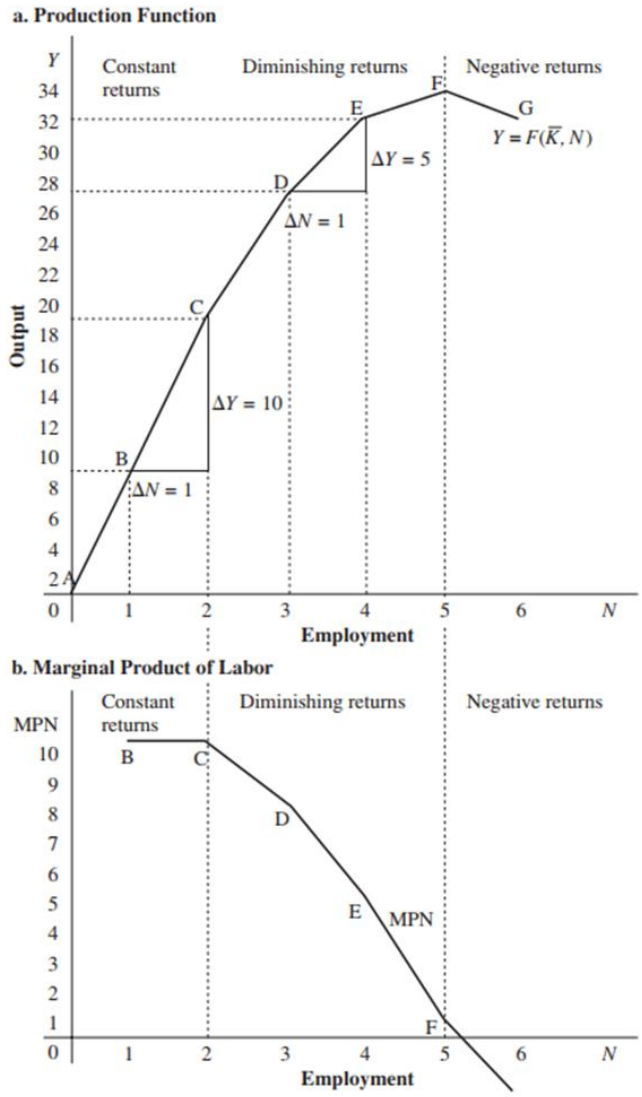

पंक्ति C पर, दो श्रमिक नियोजित किए जाते हैं और उत्पादन बढ़कर 20 हो जाता है। यह भी 10 की वृद्धि दर्शाता है, जिससे हम कह सकते हैं कि यह "स्थिर प्रतिफल" (constant returns) का क्षेत्र है। यहां अतिरिक्त श्रमिक संयंत्र और उपकरणों का कुशलता से उपयोग कर पा रहे हैं, इसलिए उनकी उत्पादकता में गिरावट नहीं आ रही।

पंक्ति D से, कहानी बदलने लगती है। जब तीसरे श्रमिक को जोड़ा जाता है, तो उत्पादन 28 तक तो बढ़ता है, लेकिन अब MPN घटकर **8** हो जाता है। यानी, तीसरे श्रमिक की उत्पादकता पहले दो के मुकाबले कम हो गई — यह "घटते प्रतिफल" (diminishing returns) की शुरुआत है।

पंक्तियाँ E और F में, यह प्रवृत्ति जारी रहती है। चौथे श्रमिक के जुड़ने से केवल 5 यूनिट और पाँचवे से सिर्फ 1 यूनिट का उत्पादन बढ़ता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि संयंत्र और मशीनरी अब पूरी तरह से उपयोग हो चुकी है और अतिरिक्त श्रमिकों से लाभ सीमित हो गया है।

पंक्ति G में, जब छठा श्रमिक जोड़ा जाता है, तो उत्पादन 34 से घटकर **32** हो जाता है। यानी MPN अब **-2** है। इसे हम "नकारात्मक प्रतिफल" (negative returns) कहते हैं। इस स्थिति में अतिरिक्त श्रमिक ना केवल उपयोगी नहीं होते, बल्कि उत्पादन में भी कमी ला रहे होते हैं — शायद अधिक भीड़ या अव्यवस्था के कारण। इसलिए कोई भी फर्म इस स्थिति में श्रमिक नहीं बढ़ाएगी।

चित्र **5.1a** और **5.1b** द्वारा व्याख्या**: चित्र 5.1a** में हम Y = F(K,N) के रूप में उत्पादन फलन को प्लॉट करते हैं। जैसे-जैसे श्रम (N) बढ़ता है, उत्पादन (Y) भी बढ़ता है — पहले स्थिर गति से, फिर घटती गति से, और अंततः घटकर नकारात्मक दिशा में। इस ग्राफ की ढलान ही MPN को दर्शाती है।

चित्र 5.1b में सीधे-सीधे MPN को ही प्लॉट किया गया है — यानि कि हर अतिरिक्त श्रमिक से उत्पादन में जो बदलाव आता है। ग्राफ पहले एक सीधी रेखा होता है (स्थिर प्रतिफल), फिर नीचे की ओर झुकता है (घटते प्रतिफल), और फिर क्षैतिज अक्ष को पार करके नीचे चला जाता है (नकारात्मक प्रतिफल)। यह बहुत प्रभावशाली ढंग से दर्शाता है कि सीमांत उत्पाद कैसे श्रमिकों की संख्या बढ़ने पर घटता है।

क्लासिकल दृष्टिकोण से निष्कर्ष यह है कि उत्पादन फलन एक तकनीकी संबंध है, और अल्पावधि में श्रम ही एकमात्र परिवर्तनीय साधन होता है। पूंजी, तकनीक और कार्यबल की गुणवत्ता को स्थिर मानकर, क्लासिकल मॉडल यह मानता है कि श्रम की मांग और पूर्ति के आधार पर श्रम नियोजन (labor employment) का स्तर तय होता है। यानी, यह बाजार की शक्तियाँ होती हैं — न कि सरकार या अन्य बाहरी हस्तक्षेप — जो तय करती हैं कि कितने श्रमिक नियोजित होंगे और कितना उत्पादन होगा।

5.4.2 रोज़गार (Employment)

क्लासिकल मॉडल में श्रम बाज़ार के विश्लेषण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह यह मानकर चलता है कि बाज़ार पूरी तरह कार्यशील है। इसका अर्थ है कि यहाँ कोई अव्यवस्था या रुकावट नहीं है और श्रमिकों तथा

नियोक्ताओं को बाज़ार से जुड़ी सभी जरूरी जानकारियाँ पूरी तरह से उपलब्ध हैं। फर्में और श्रमिक दोनों ही अपने-अपने हितों को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं, और खास बात यह है कि मौद्रिक मज़दूरी (nominal wage) के समायोजन में कोई अवरोध नहीं होता है। इसलिए यह माना जाता है कि श्रम बाज़ार "clear" हो जाता है, अर्थात माँग और पूर्ति के बीच संतुलन स्वतः बन जाता है।

5.4.2.1 ***श्रम की माँग*** (Labor Demand)

श्रम की सेवाओं के खरीदार यानी "माँग करने वाले" मुख्य रूप से फर्में होती हैं। इसलिए हमें यह समझने के लिए कि श्रम की कुल माँग (aggregate demand for labor) कैसे तय होती है, पहले किसी एक फर्म के दृष्टिकोण से शुरू करना होगा। मान लीजिए हम किसी *iवीं* फर्म के श्रम माँग व्यवहार का विश्लेषण करते हैं। क्लासिकल मॉडल के अनुसार, सभी फर्में पूर्ण प्रतिस्पर्धी होती हैं — इसका अर्थ है कि वे अपने उत्पादन का स्तर इस तरह से तय करती हैं जिससे उनका लाभ अधिकतम हो। अल्पावधि (short run) में, फर्में केवल श्रम इनपुट (labor input) को बदलकर ही उत्पादन का स्तर परिवर्तित कर सकती हैं क्योंकि पूंजी का स्टॉक (capital stock) स्थिर होता है। इसका मतलब यह है कि उत्पादन के स्तर और श्रम की मात्रा का निर्धारण वास्तव में एक ही निर्णय है।

अब क्लासिकल दृष्टिकोण के अनुसार, पूर्ण प्रतिस्पर्धी फर्म तब तक उत्पादन बढ़ाती है जब तक कि उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई की लागत (marginal cost) उसकी बिक्री से प्राप्त मूल्य (marginal revenue) के बराबर न हो जाए। और चूंकि यह एक पूर्ण प्रतिस्पर्धी फर्म है, सीमांत राजस्व (marginal revenue) केवल उत्पाद का मूल्य (P) होता है। इस मामले में, श्रम ही उत्पादन का एकमात्र परिवर्तनीय इनपुट है, इसलिए उत्पादन की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की लागत वास्तव में सीमांत श्रम लागत (marginal labor cost) होगी। यह लागत मौद्रिक मज़दूरी (W) को उस श्रमिक द्वारा उत्पन्न सीमांत उत्पादन (MPN) से विभाजित करने पर प्राप्त होती है:

$$MC_i = \frac{W}{MPN_i} \dots\dots\dots\dots\dots\dots (5.2)$$

अब लाभ को अधिकतम करने की स्थिति यह है कि:

$$P = MC_i \dots\dots\dots\dots\dots\dots (5.2a)$$

अब यदि हम समीकरण (5.2) को समीकरण (5.2a) में प्रतिस्थापित करते हैं, तो हमें निम्नलिखित परिणाम प्राप्त होता है:

$$P = \frac{W}{MPN_i} \dots\dots\dots\dots\dots (5.3)$$

$$MPN_i = \frac{W}{P} \dots\dots\dots\dots\dots\dots (5.4)$$

इस समीकरण (5.4) का सीधा अर्थ यह है कि फर्म तब तक श्रमिकों को काम पर रखेगी जब तक कि उस श्रमिक से प्राप्त सीमांत उत्पादन (MPN) उस श्रमिक को दिए गए वास्तविक मज़दूरी (W/P) के बराबर न हो जाए। यही वह स्थिति है जहाँ फर्म को अतिरिक्त श्रमिक को रखने से लाभ होता है, न तो नुकसान और न ही लाभ में गिरावट।

Figure 5.2

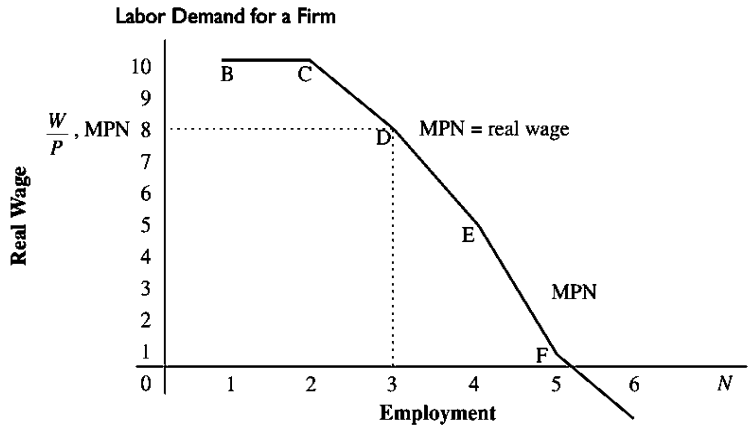

इस सिद्धांत को हम **चित्र 5.2** में भी देख सकते हैं, जहाँ वास्तविक मज़दूरी के विरुद्ध श्रम की माँग को प्लॉट किया गया है। यह श्रम माँग वक्र (labor demand curve) मूलतः **चित्र 5.1** से लिया गया MPN वक्र ही है। चूँकि सीमांत प्रतिफल (marginal returns) घटते हैं, इसलिए श्रम की माँग वक्र नीचे की ओर ढलान वाला होता है। उदाहरण के लिए, यदि वास्तविक मज़दूरी $8 है (मान लीजिए $8 की मौद्रिक मज़दूरी और $1 का उत्पाद मूल्य), तो फर्म 3 श्रमिकों को काम पर रखेगी क्योंकि उस बिंदु पर MPN वास्तविक मज़दूरी के बराबर होगा।

यदि फर्म केवल 2 श्रमिकों को काम पर रखती है, तो MPN $10 होगा जो वास्तविक मज़दूरी $8 से अधिक है। इसका अर्थ यह है कि एक और श्रमिक को काम पर रखकर फर्म को लाभ होगा। दूसरी ओर, यदि 4 श्रमिकों को रखा जाता है, तो MPN $5 होगा, जो $8 की वास्तविक मज़दूरी से कम है। इसका अर्थ यह होगा कि श्रमिक को दी जा रही मज़दूरी उसकी उत्पादकता से अधिक है, और फर्म को नुकसान हो सकता है। इसलिए वह श्रमिक को

कम करेगी। इस प्रकार, प्रत्येक वास्तविक मज़दूरी (W/P) पर श्रम की माँगी गई मात्रा वह होगी जहाँ MPN = W/P होता है। अतः फर्म की श्रम माँग वक्र, सीमांत उत्पाद वक्र (MPN curve) ही होता है।

अब जब हम सभी फर्मों के श्रम माँग व्यवहार को एक साथ मिलाकर देखते हैं, तो हमें अर्थव्यवस्था के स्तर पर कुल श्रम माँग वक्र (aggregate labor demand curve) प्राप्त होता है। इस वक्र पर, प्रत्येक वास्तविक मज़दूरी स्तर पर समस्त फर्मों द्वारा माँगी गई श्रम इनपुट की कुल मात्रा होती है। इसे हम इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

$$N^d = f\left(\frac{W}{P}\right)_- \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (5.5)$$

इस समीकरण में यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे वास्तविक मज़दूरी बढ़ेगी, श्रम की माँग कम होती जाएगी – (minus sigh in subscript) अर्थात दोनों के बीच एक प्रतिलोम (inverse) संबंध है।

5.4.2.2 **श्रम पूर्ति (Labor Supply)**

क्लासिकल प्रणाली में रोज़गार और उत्पादन के निर्धारण की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए जिस अंतिम संबंध की आवश्यकता होती है, वह है *श्रम पूर्ति वक्र* (Labor Supply Curve)। क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार, श्रम सेवाएँ व्यक्तिगत श्रमिकों द्वारा प्रदान की जाती हैं। उनका यह मानना था कि व्यक्ति उपयोगिता (या संतुष्टि) को अधिकतम करने का प्रयास करता है। एक व्यक्ति की उपयोगिता दो प्रमुख कारकों पर निर्भर करती है: एक, *वास्तविक आय* (Real Income), जो उसे वस्तुओं और सेवाओं की खरीद की शक्ति देती है, और दो, *अवकाश* (Leisure), जो कार्य के विरुद्ध एक वैकल्पिक समय उपयोग का रूप है।

हालाँकि, इन दोनों लक्ष्यों — वास्तविक आय और अवकाश — के बीच एक *समझौताकारी समन्वय* (trade off) होता है। जब व्यक्ति अधिक समय काम करता है, तो उसकी आय बढ़ती है, लेकिन उसी अनुपात में उसका अवकाश कम हो जाता है। इसलिए, व्यक्ति को अपने समय को *काम और अवकाश* के बीच इस प्रकार बाँटना होता है कि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो।

मान लीजिए कि कोई व्यक्ति 'j' 24 घंटे के दिन को *अवकाश के घंटे* और *काम के घंटे* के बीच बाँटता है। व्यक्ति द्वारा कार्य किए गए घंटे N_j^s उसकी श्रम पूर्ति को दर्शाते हैं। चित्र 5.3 इस ट्रेड-ऑफ को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। इस चित्र में क्षैतिज अक्ष पर अवकाश के घंटे दिखाए गए हैं, जो अधिकतम 24 हो सकते हैं — यानी यदि व्यक्ति

बिल्कुल भी काम न करे। यदि कोई व्यक्ति 6 घंटे अवकाश चुनता है, तो इसका अर्थ है कि वह 18 घंटे काम करेगा (24−6 = 18)। इस प्रकार, अवकाश जितना घटेगा, काम के घंटे उतने ही बढ़ेंगे।

वास्तविक आय (Real Income), जो व्यक्ति को कार्य के बदले प्राप्त होती है, ऊर्ध्वाधर अक्ष पर मापी जाती है। यह आय व्यक्ति द्वारा काम किए गए घंटों की संख्या को *वास्तविक मज़दूरी* (W/P) से गुणा करके प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, यदि वास्तविक मज़दूरी 2.0 है और व्यक्ति 10 घंटे काम करता है, तो उसे 20 की आय प्राप्त होगी।

चित्र में जो घुमावदार रेखाएँ दिखाई गई हैं — जिन्हें U_1, U_2, U_3 जैसे लेबल से पहचाना गया है — वे *उदासीनता वक्र* (Indifference Curves) हैं। ये वक्र उन विभिन्न आय-अवकाश संयोजनों को दर्शाते हैं जो व्यक्ति को समान संतुष्टि प्रदान करते हैं।

Figure 5.3

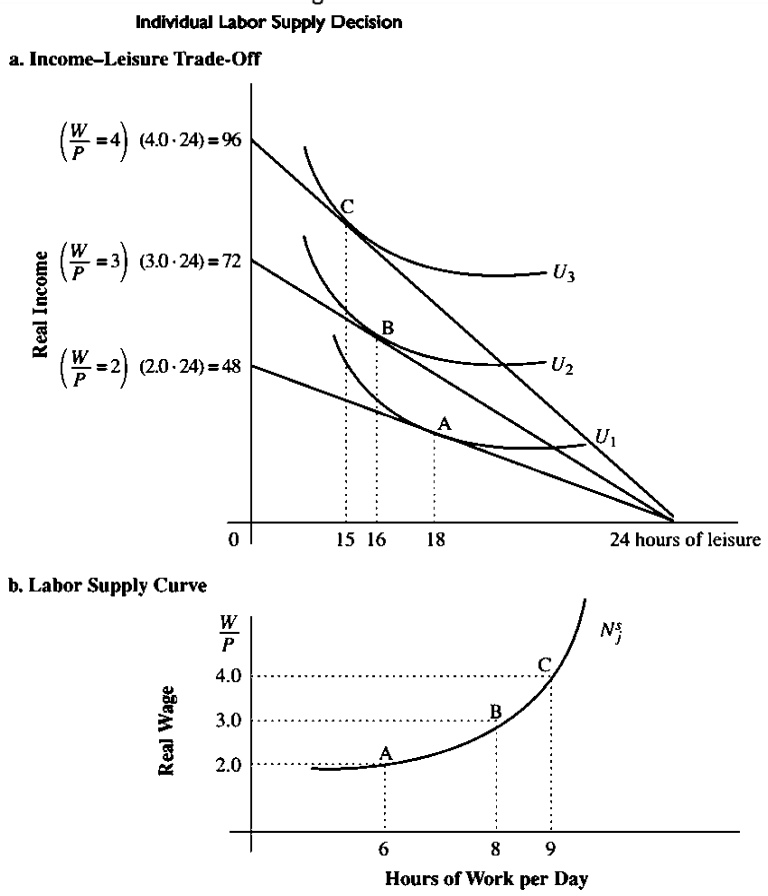

एक व्यक्ति एक ऐसा संयोजन चुनता है जो उसे सबसे अधिक उपयोगिता प्रदान करता हो — अर्थात् वह सबसे "ऊपरी" उदासीनता वक्र को छूने की कोशिश करता है।

अब हम बात करते हैं *बजट रेखा* (Budget Line) की, जो व्यक्ति के सामने उपलब्ध संभावनाओं को दर्शाती है। क्षैतिज अक्ष के 24 घंटे बिंदु (जहाँ कोई काम नहीं, पूरा अवकाश है) से शुरू होकर एक सीधी रेखा खिंचती है, जिसका ढलान वास्तविक मज़दूरी (W/P) के बराबर होता है। इसका अर्थ यह है कि हर अवकाश घंटे का अवसर मूल्य वही वास्तविक मज़दूरी है — क्योंकि उस घंटे काम करके व्यक्ति उतनी ही आय अर्जित कर सकता था।

चित्र 5.3a में, यदि वास्तविक मज़दूरी 2.0 है, तो बजट रेखा हल्की ढलान वाली होगी। यदि मज़दूरी बढ़कर 4.0 हो जाए, तो वही रेखा अधिक खड़ी हो जाएगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि उच्च वास्तविक मज़दूरी पर अवकाश छोड़कर काम करने से आय में अधिक वृद्धि होती है, जो उच्च उपयोगिता तक पहुँचने की संभावना को बढ़ा देती है।

इन बजट रेखाओं और उदासीनता वक्रों के संयोजन से, व्यक्ति यह तय करता है कि वह प्रत्येक वास्तविक मज़दूरी पर कितना श्रम प्रदान करेगा। चित्र 5.3b में, हम j-व्यक्ति के लिए *श्रम पूर्ति वक्र* का निर्माण करते हैं। यह वक्र चित्र 5.3a में A, B, और C जैसे बिंदुओं से निर्मित होता है, जहाँ हर बिंदु पर वास्तविक मज़दूरी के बदले व्यक्ति द्वारा श्रम की गई घंटे की मात्रा प्रदर्शित होती है।

इस प्रकार हम कुल श्रम पूर्ति फलन (Labor Supply Function) को इस रूप में लिख सकते हैं:

$$N^s = g\left(\frac{W}{P}\right)_+ \dots\dots\dots\dots\dots (5.6)$$

जहाँ, श्रम पूर्ति वास्तविक मज़दूरी (W/P) पर सकारात्मक रूप से निर्भर करती है।

$$N^d = N^s \dots\dots\dots\dots\dots (5.7)$$

ये संबंध, श्रम बाजार के लिए संतुलन की स्थिति के साथ मिलकर उत्पादन, रोजगार और वास्तविक मजदूरी निर्धारित करते हैं।

क्लासिकल श्रम पूर्ति सिद्धांत में दो और महत्वपूर्ण बिंदु उल्लेखनीय हैं:

पहला, श्रम पूर्ति का निर्धारण *वास्तविक मज़दूरी* से होता है, न कि *मौद्रिक मज़दूरी* से। क्योंकि व्यक्ति अपने श्रम के बदले वस्तुएँ और सेवाएँ चाहता है, इसलिए उसे यह चिंता होती है कि उसके द्वारा की गई मेहनत से उसे क्या

क्रय शक्ति मिल रही है। उदाहरण के लिए, यदि मौद्रिक मज़दूरी $4 है और मूल्य स्तर 1.0 है, तो वास्तविक मज़दूरी 4.0 होगी, और व्यक्ति 9 घंटे काम करेगा। लेकिन यदि मूल्य स्तर बढ़कर 2.0 हो जाए और मौद्रिक मज़दूरी वही $4 रहे, तो वास्तविक मज़दूरी घटकर 2.0 रह जाएगी, और व्यक्ति अब केवल 6 घंटे काम करेगा। स्पष्ट रूप से, जैसे ही वास्तविक मज़दूरी घटती है, व्यक्ति अधिक अवकाश चाहता है और कम श्रम प्रदान करता है।

दूसरा, श्रम पूर्ति वक्र का ढलान *सकारात्मक* होता है। उच्च वास्तविक मज़दूरी पर अधिक श्रम की पूर्ति की जाती है क्योंकि तब अवकाश का अवसर मूल्य अधिक होता है। यह व्यवहारिक रूप से *प्रतिस्थापन प्रभाव* (Substitution Effect) को दर्शाता है — व्यक्ति अधिक आय के बदले अवकाश का त्याग करता है।

लेकिन इसके विपरीत एक और प्रभाव होता है — *आय प्रभाव* (Income Effect)। जैसे-जैसे व्यक्ति की वास्तविक आय बढ़ती है, वह संतुष्ट होता है और अब अधिक अवकाश चाहता है। एक सीमा के बाद, व्यक्ति यह पाता है कि काम करने से जो अतिरिक्त आय मिल रही है, वह उसे उतनी संतुष्टि नहीं देती जितनी कि अवकाश देता है। परिणामस्वरूप, वह काम के घंटे घटाकर अवकाश बढ़ा देता है।

यदि आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक हो जाए, तो श्रम पूर्ति वक्र पीछे की ओर झुक जाता है (*Backward-Bending Labor Supply Curve*) — अर्थात् बहुत उच्च वास्तविक मज़दूरी पर श्रमिक कम काम करना पसंद करता है।

हालाँकि अनुभवजन्य शोध इस पर निर्णायक नहीं हैं, परंतु यह माना जाता है कि औद्योगिक देशों की आम मज़दूरी दरों पर कुल श्रम पूर्ति वक्र का ढलान सकारात्मक होता है — यानी प्रतिस्थापन प्रभाव आय प्रभाव पर हावी रहता है।

5.4.3 संतुलन उत्पादन और रोज़गार (Equilibrium Output and Employment)

अब तक के विश्लेषण से हमें कुछ प्रमुख संबंध प्राप्त हुए हैं, जो क्लासिकल मॉडल में उत्पादन और रोज़गार की अंतर्जात (endogenous) प्रकृति को स्पष्ट करते हैं। इन संबंधों में सबसे पहले आता है कुल उत्पादन फलन: **$Y = F(K, N)$** — जहाँ Y उत्पादन को, K पूंजी को और N श्रम को दर्शाता है। इसके अलावा, हमारे पास है:

- **$N^d = f(W/P)_-$** — श्रम की मांग का फलन (3.5),
- **$N^s = g(W/P)_+$** — श्रम की पूर्ति का फलन (3.6),

- और श्रम बाज़ार का संतुलन: $\mathbf{N^s = N^d}$ (3.7)।

ये समीकरण मिलकर उत्पादन, रोज़गार और वास्तविक मज़दूरी (W/P) को निर्धारित करते हैं। इन सभी को क्लासिकल मॉडल में **अंतर्जात चर** कहा जाता है क्योंकि ये मॉडल के भीतर तय होते हैं।

चित्र 5.4 में इन संबंधों के आधार पर क्लासिकल मॉडल में संतुलन को दर्शाया गया है। ग्राफ़ 'a' श्रम की कुल मांग और पूर्ति वक्रों के प्रतिच्छेदन बिंदु को दर्शाता है, जहाँ रोज़गार का संतुलन स्तर N_0 और

Figure 5.4

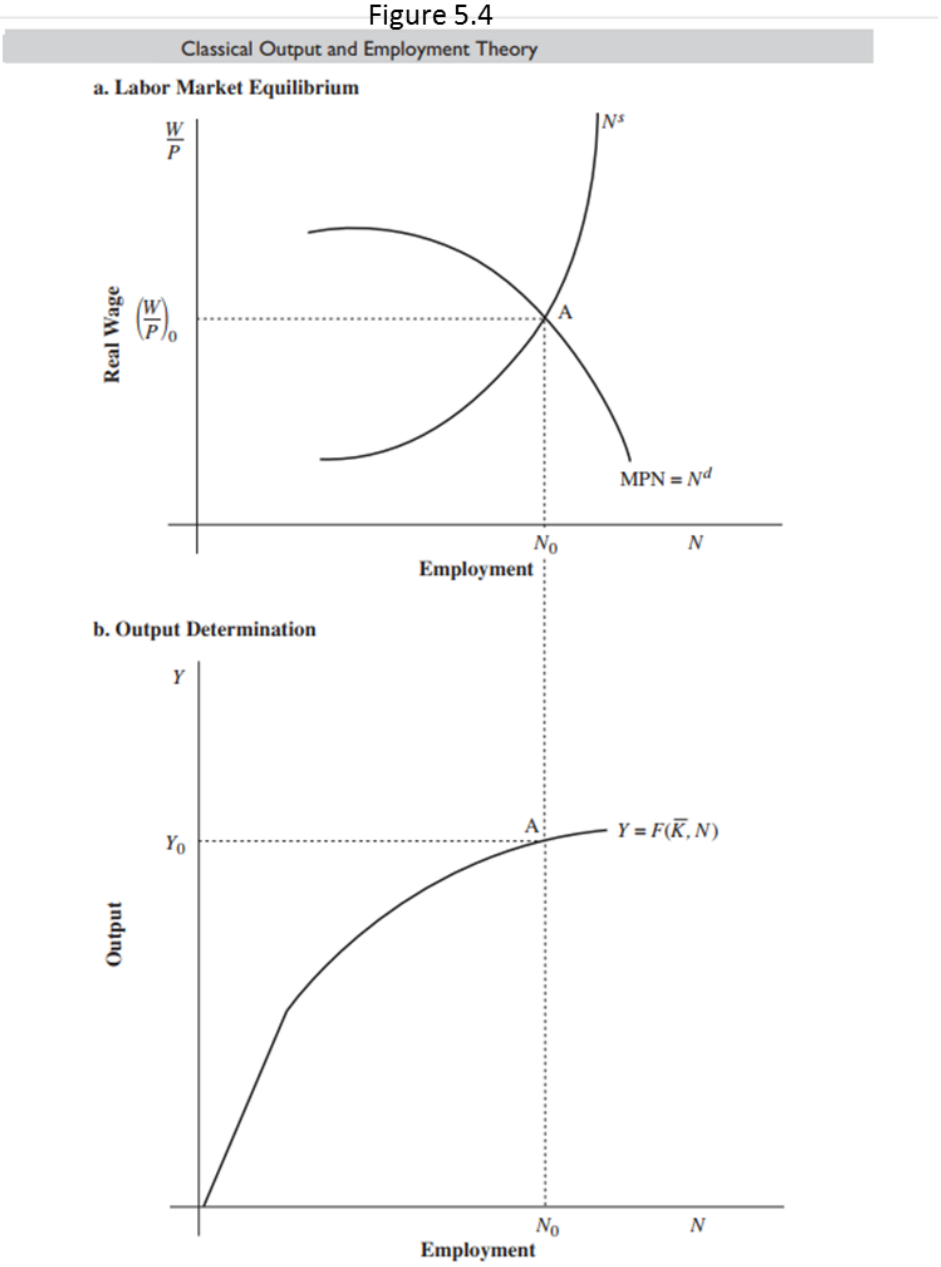

वास्तविक मज़दूरी का संतुलन स्तर $(W/P)_0$ होता है। इसी संतुलन स्तर N_0 पर मिलने वाले श्रम इनपुट से उत्पादन फलन Y = F(K, N) के माध्यम से एक संतुलन उत्पादन Y_0 प्राप्त होता है, जैसा कि चित्र 5.4b में दर्शाया गया है।

5.4.4 उत्पादन और रोज़गार के निर्धारक (The Determinants of Output and Employment)

अब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि क्लासिकल सिद्धांत में उत्पादन और रोज़गार को वास्तव में कौन-से **बाह्य चर (exogenous variables)** निर्धारित करते हैं। यहाँ, बाह्य चर ऐसे तत्व हैं जो मॉडल के बाहर निर्धारित होते हैं, लेकिन मॉडल के भीतर के अंतर्जात चरों को प्रभावित करते हैं। क्लासिकल मॉडल में, उत्पादन और रोज़गार को तय करने वाले वे तत्व होते हैं जो श्रम मांग वक्र, श्रम पूर्ति वक्र और कुल उत्पादन फलन की स्थिति को प्रभावित करते हैं।

उदाहरण के लिए, तकनीकी प्रगति से उत्पादन फलन स्थानांतरित होता है क्योंकि यह दिए गए इनपुट स्तरों पर प्राप्त होने वाले उत्पादन को बढ़ा सकता है। इसी तरह, पूंजी स्टॉक में परिवर्तन भी उत्पादन फलन को स्थानांतरित करता है, जैसा कि चित्र 5.4b में दिखाया गया है। चूंकि श्रम मांग वक्र उत्पादन फलन का ही ढलान (marginal product of labor) होता है, इसलिए जब भी तकनीक या पूंजी निर्माण से श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि होती है, श्रम मांग वक्र दाईं ओर खिसक जाता है।

दूसरी ओर, श्रम पूर्ति वक्र श्रम बल के आकार और लोगों की अवकाश और श्रम के बीच पसंद को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, जनसंख्या वृद्धि से श्रम पूर्ति वक्र दाईं ओर शिफ्ट हो सकता है। यदि लोग अधिक काम करने की ओर झुकते हैं, तो भी पूर्ति वक्र की स्थिति बदल सकती है।

इन सबके आधार पर यह स्पष्ट होता है कि क्लासिकल मॉडल में उत्पादन और रोज़गार पूरी तरह से पूर्ति पक्ष पर निर्भर होते हैं। यानि, ये ऐसे कारक हैं जो फर्मों की उत्पादन क्षमता और निर्णय को प्रभावित करते हैं। इसी विशेषता को आगे अधिक औपचारिक रूप से प्रस्तुत करने के लिए हमें श्रम पूर्ति और मांग वक्रों के गुणों को और गहराई से देखना होगा।

श्रम बाज़ार और वास्तविक मज़दूरी का प्रभाव

चित्र 5.5a और 5.5b में श्रम की कुल पूर्ति और मांग को दर्शाया गया है, परंतु एक अलग तरीके से। चित्र 5.5a वास्तविक मज़दूरी (W/P) के आधार पर श्रम की पूर्ति और मांग को दर्शाता है, जबकि चित्र 5.5b में इन्हें मौद्रिक

मज़दूरी (W) के आधार पर प्लॉट किया गया है।

चित्र 5.5b में, यदि हम एक निश्चित मूल्य स्तर P_1 मान लें, तो उसके लिए एक श्रम पूर्ति वक्र $Ns(P_1)$ होता है। यह वक्र ऊपर की ओर ढलान वाला होता है क्योंकि जैसे-जैसे मौद्रिक मज़दूरी बढ़ती है, वास्तविक मज़दूरी भी बढ़ती है और लोग अधिक श्रम प्रदान करते हैं। लेकिन यदि मूल्य स्तर दोगुना होकर $2P_1$ हो जाए, तो वही मौद्रिक मज़दूरी अब कम वास्तविक मज़दूरी को दर्शाएगी। नतीजतन, श्रम पूर्ति घट जाएगी और वक्र ऊपर बाईं ओर खिसक जाएगा। यह दर्शाता है कि श्रमिक केवल वास्तविक मज़दूरी में रुचि रखते हैं।

Figure 5.5

Labor Market Equilibrium and the Money Wage

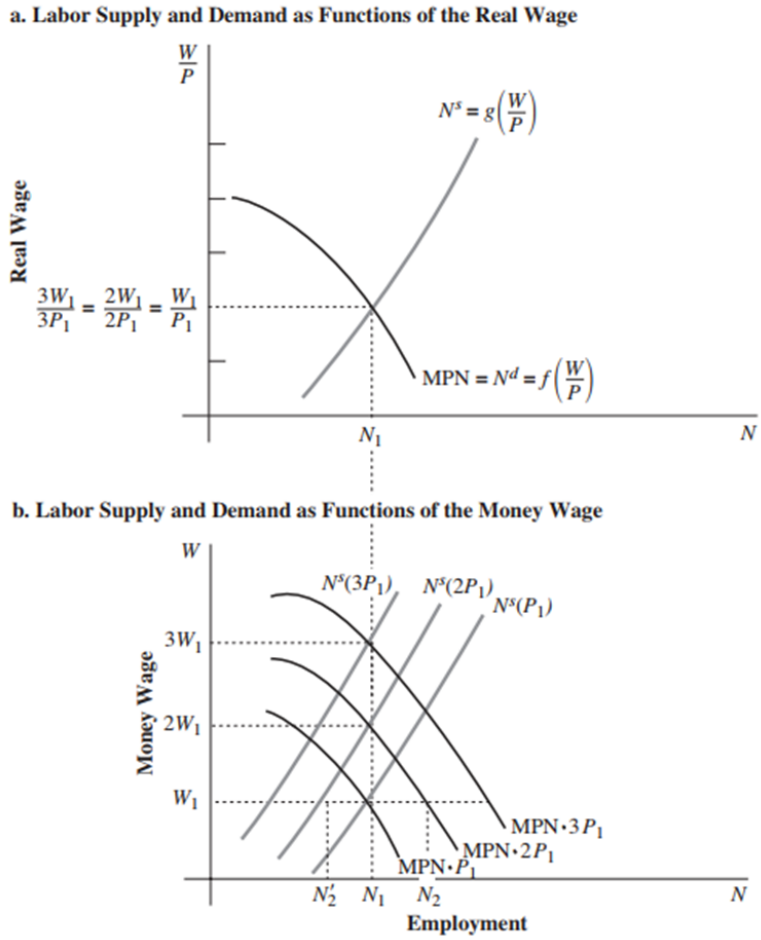

दूसरी ओर, श्रम मांग वक्र का निर्धारण MPN (marginal product of labor) द्वारा होता है और इस वक्र को हम निम्नलिखित शर्त से व्युत्पन्न कर सकते हैं:

$$\frac{W}{P} = MPN \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (5.8)$$

यह बताता है कि फर्में तभी श्रमिकों को नियुक्त करेंगी जब उनकी उत्पादकता उन्हें दिए जा रहे वेतन के बराबर हो। यदि मूल्य स्तर बढ़े तो मौद्रिक मज़दूरी स्थिर होने की स्थिति में वास्तविक मज़दूरी घटेगी और फर्में अधिक श्रम की मांग करेंगी। लेकिन, श्रम पूर्ति उसी समय घट जाती है, जिससे श्रम बाज़ार में मांग और पूर्ति के बीच असंतुलन उत्पन्न होता है और मौद्रिक मज़दूरी बढ़ने लगती है जब तक नया संतुलन नहीं स्थापित हो जाता।

5.5 कुल पूर्ति वक्र और क्लासिकल दृष्टिकोण (Aggregate Supply Curve and the Classical Approach)

अब हम क्लासिकल मॉडल में कुल पूर्ति वक्र (Aggregate Supply Curve) के निर्माण पर आते हैं। कुल पूर्ति वक्र, व्यष्टिगत आर्थिक सिद्धांत में फर्म के पूर्ति वक्र की तरह होता है — यह बताता है कि विभिन्न मूल्य स्तरों पर कितना उत्पादन किया जाएगा। लेकिन क्लासिकल मॉडल में मौद्रिक मज़दूरी स्थिर नहीं रहती बल्कि श्रम बाज़ार के संतुलन को बनाए रखने के लिए मूल्य स्तर के साथ-साथ समायोजित होती है।

Figure 5.6

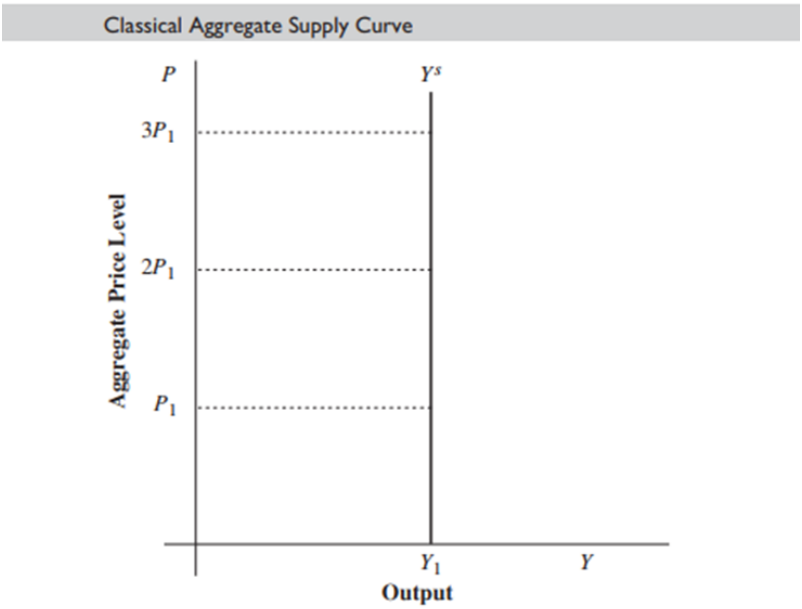

चित्र 5.6 में तीन अलग-अलग मूल्य स्तरों P_1, $2P_1$ और $3P_1$ के लिए कुल पूर्ति को दिखाया गया है। मूल्य स्तर P_1 और मौद्रिक मज़दूरी W_1 पर रोज़गार का स्तर N_1 और उत्पादन का स्तर Y_1 होता है। अब अगर मूल्य स्तर

बढ़कर $2P_1$ हो जाए और मौद्रिक मज़दूरी W_1 बनी रहे, तो वास्तविक मज़दूरी घटेगी और फर्में अधिक श्रम की मांग करेंगी। लेकिन, श्रम पूर्ति घट जाएगी, जिससे श्रम की अतिरिक्त मांग उत्पन्न होगी और फर्में मौद्रिक मज़दूरी बढ़ाने लगेंगी।

यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक नई मौद्रिक मज़दूरी $2W_1$ नहीं हो जाती, जिससे वास्तविक मज़दूरी फिर से W_1/P_1 के स्तर पर जाती है और रोज़गार स्तर N_1 तथा उत्पादन स्तर Y_1 पर लौट आता है। यही प्रक्रिया मूल्य स्तर $3P_1$ पर भी दोहराई जाती है, जहाँ मौद्रिक मज़दूरी $3W_1$ हो जाती है और वास्तविक मज़दूरी स्थिर बनी रहती है।

इस पूरी प्रक्रिया का निष्कर्ष यह है कि क्लासिकल मॉडल में कुल पूर्ति वक्र **ऊर्ध्वाधर (vertical)** होता है, जिसका अर्थ है कि दीर्घकाल में उत्पादन का स्तर मूल्य स्तर से प्रभावित नहीं होता। उत्पादन और रोज़गार पूरी तरह से पूर्ति पक्ष के कारकों — तकनीक, पूंजी और श्रम बल — द्वारा निर्धारित होते हैं।

इस प्रकार, क्लासिकल मॉडल में उत्पादन और रोज़गार का निर्धारण पूरी तरह पूर्ति-निर्भर होता है और मूल्य स्तरों में परिवर्तन केवल मौद्रिक मज़दूरी को प्रभावित करते हैं, न कि दीर्घकालीन उत्पादन स्तर को।

5.6 'से' का बाज़ार नियम (Say's Law of Market)

'से' का बाज़ार नियम, जिसे फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **जीन-बैप्टिस्ट से (Jean-Baptiste Say)** ने प्रतिपादित किया था, क्लासिकल अर्थशास्त्र का एक मूलभूत सिद्धांत है। यह सिद्धांत अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय और मांग के बीच संबंध को समझाता है।

'से' के बाज़ार नियम का मूल सिद्धांत यह है कि **"पूर्ति अपनी मांग का स्वयं सृजन करती है" (Supply creates its own demand)**। इसका अर्थ यह है कि जब भी किसी वस्तु या सेवा का उत्पादन होता है, तो उस उत्पादन के परिणामस्वरूप उतनी ही मूल्य की आय उत्पन्न होती है जो उस उत्पादित वस्तु या सेवा को खरीदने के लिए पर्याप्त होती है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन प्रक्रिया स्वयं ही अपने लिए आवश्यक क्रय शक्ति (purchasing power) का निर्माण करती है।

इस नियम का सीधा निष्कर्ष यह है कि अर्थव्यवस्था में **सामान्य अति-उत्पादन (general overproduction)** या **सामान्य बेरोजगारी (general unemployment)** की समस्या नहीं हो सकती। यदि किसी क्षेत्र में अस्थायी

रूप से अधिक उत्पादन होता भी है, तो बाजार की शक्तियाँ (कीमतों, मज़दूरी और ब्याज दरों में लोचशीलता) स्वतः ही इसे समायोजित कर लेती हैं।

मान्यताएँ (Assumptions)

'से' का बाज़ार नियम कई महत्वपूर्ण मान्यताओं पर आधारित है, जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं:

- **पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition):** बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता मौजूद होती है, जहाँ असंख्य क्रेता और विक्रेता होते हैं, और कोई भी अकेला बाज़ार शक्ति को प्रभावित नहीं कर सकता।
- **कीमतों, मज़दूरी और ब्याज की दर में लोचशीलता (Flexibility in Prices, Wages, and Interest Rates):** अर्थव्यवस्था में कीमतें, मज़दूरी और ब्याज दरें पूरी तरह से लचीली होती हैं, यानी वे आवश्यकतानुसार ऊपर या नीचे समायोजित हो सकती हैं ताकि मांग और पूर्ति में संतुलन बना रहे।
- **मुद्रा केवल एक आवरण मात्र (Money is only a veil):** क्लासिकल अर्थशास्त्री मानते हैं कि मुद्रा केवल विनिमय का माध्यम है, और इसका वास्तविक आर्थिक गतिविधियों (जैसे उत्पादन और रोज़गार) पर कोई वास्तविक प्रभाव नहीं पड़ता। लोग वस्तुओं और सेवाओं के लिए काम करते हैं, न कि केवल मुद्रा के लिए।
- **सारी मुद्रा खर्च कर दी जाती है (All money is spent):** यह माना जाता है कि अर्थव्यवस्था में जितनी भी आय उत्पन्न होती है, उसे या तो उपभोग पर खर्च कर दिया जाता है या निवेश (बचत) कर दिया जाता है। कोई भी आय बेकार नहीं पड़ी रहती (कोई नकदी संचय या होर्डिंग नहीं होता)। यदि बचत होती भी है, तो वह ब्याज दरों के माध्यम से निवेश में परिवर्तित हो जाती है।
- **सरकार का हस्तक्षेप नहीं (No Government Intervention):** अर्थव्यवस्था में सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है; बाज़ार की शक्तियाँ स्वयं ही संतुलन स्थापित करती हैं।
- **बाजार का आकार विस्तृत (Wide Market Size):** यह नियम तभी लागू होता है जब बाजार का आकार इतना बड़ा हो कि उत्पादित सभी वस्तुओं के लिए खरीदार मिल सकें।
- **दीर्घकाल में लागू (Applicable in Long Run):** 'से' का नियम मुख्य रूप से दीर्घकाल की अवधारणा है, जहाँ सभी समायोजन संभव हो पाते हैं।

- **उत्पादन उपभोक्ताओं की पसंद के अनुसार (Production as per Consumer Preference):** यह माना जाता है कि उत्पादक वही वस्तुएँ और सेवाएँ उत्पन्न करते हैं जिनकी उपभोक्ताओं को वास्तव में आवश्यकता होती है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि उत्पादित वस्तुएँ बिक जाएँ।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में व्याख्या (Explanation in Different Economies)

a) वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था (Barter Economy): 'से' का नियम वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था में सबसे आसानी से समझा जा सकता है। इस अर्थव्यवस्था में, लोग वस्तुओं का उत्पादन इसलिए करते हैं ताकि वे उन्हें अन्य वस्तुओं के बदले में विनिमय कर सकें। उदाहरण के लिए, एक किसान अनाज का उत्पादन इसलिए करता है ताकि वह उसे जुलाहे से कपड़े खरीदने के लिए दे सके। जब किसान अनाज का उत्पादन करता है (पूर्ति का सृजन करता है), तो वह स्वाभाविक रूप से कपड़ों की मांग (अपने उत्पाद के बदले में) का सृजन करता है। चूंकि सीधे वस्तुओं का विनिमय होता है, इसलिए यह स्पष्ट है कि जितनी वस्तुएँ पैदा होंगी, उतनी ही मांग भी पैदा होगी। इस प्रकार, पूर्ति सीधे अपनी मांग का सृजन करती है, और अति-उत्पादन की कोई संभावना नहीं होती है।

b) मौद्रिक अर्थव्यवस्था (Monetary Economy): क्लासिकल अर्थशास्त्री 'से' के नियम को मौद्रिक अर्थव्यवस्था में भी लागू मानते थे। उनका तर्क था कि मुद्रा केवल एक **विनिमय का माध्यम (medium of exchange)** है। जब एक उत्पादक अपनी वस्तुओं को बेचकर मुद्रा के रूप में आय प्राप्त करता है, तो वह उस मुद्रा को अन्य वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने पर खर्च कर देता है। उत्पादन की प्रक्रिया में, उत्पादन के कारकों (श्रम, भूमि, पूंजी, उद्यम) को मज़दूरी, लगान, ब्याज और लाभ के रूप में आय प्राप्त होती है। यह आय वस्तुओं और सेवाओं की मांग का निर्माण करती है। यदि बचत होती भी है, तो वह क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज दर के माध्यम से निवेश में परिवर्तित हो जाती है (ब्याज दर बचत और निवेश को बराबर करती है)। इसलिए, कुल आय हमेशा कुल व्यय के बराबर होती है, और इससे कुल मांग कुल पूर्ति के बराबर हो जाती है।

5.6.1 'से' का बाज़ार नियम ऑस्कर लांग के अनुसार (Say's Market Law According to Oscar Lange)

ऑस्कर लांग (Oscar Lange) ने 'से' के नियम को इस रूप में देखा कि यह एक **वास्तविक चर मॉडल** है जिसमें मुद्रा की तटस्थता (neutrality of money) निहित है। उनके अनुसार, 'से' का नियम मूल रूप से यह बताता है कि वास्तविक अर्थव्यवस्था (उत्पादन, उपभोग, रोज़गार) मुद्रा की मात्रा से अप्रभावित रहती है। मुद्रा केवल अंकित मूल्यों (nominal values) को प्रभावित करती है, जैसे कीमत स्तर, लेकिन वास्तविक उत्पादन और रोज़गार का

निर्धारण वास्तविक कारकों (जैसे उत्पादन क्षमता और प्राथमिकताओं) से होता है। लांग ने जोर दिया कि क्लासिकल प्रणाली में, मुद्रा का एक अलग क्षेत्र होता है जो वास्तविक क्षेत्र से स्वतंत्र होता है।

5.6.2 'से' का बाज़ार नियम ए. सी. पीगू के अनुसार (Say's Market Law According to A.C. Pigou)

ए. सी. पीगू (A.C. Pigou) एक प्रमुख क्लासिकल अर्थशास्त्री थे और 'से' के नियम के प्रबल समर्थक थे। पीगू ने विशेष रूप से **पूर्ण रोज़गार संतुलन** पर जोर दिया। उनका मानना था कि यदि कीमतें और मज़दूरी पूरी तरह से लचीली हों, तो बाजार की शक्तियाँ हमेशा अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोज़गार संतुलन की ओर ले जाएंगी। यदि अस्थायी बेरोजगारी उत्पन्न होती भी है, तो मज़दूरी दरें गिरेंगी, जिससे श्रम की मांग बढ़ेगी और रोज़गार के अवसर सृजित होंगे। पीगू ने 'से' के नियम को एक तंत्र के रूप में देखा जिसके द्वारा बाज़ार में स्वतः सुधार होता है, और पूर्ण रोज़गार बनाए रखा जा सकता है। उन्होंने **"पीगू प्रभाव" (Pigou Effect)** का भी उल्लेख किया, जिसके अनुसार कीमत स्तर में गिरावट से वास्तविक धन संतुलन (real money balances) बढ़ता है, जिससे उपभोग में वृद्धि होती है और कुल मांग बढ़ती है, जिससे अर्थव्यवस्था पूर्ण रोज़गार की ओर लौटती है।

5.6.3 'से' के बाज़ार नियम के निहितार्थ (Implications of Say's Market Law)

'से' के नियम के कई महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं, खासकर क्लासिकल अर्थशास्त्र के लिए:

- **सामान्य अति-उत्पादन असंभव (General Overproduction is Impossible):** यह नियम कहता है कि अर्थव्यवस्था में कभी भी कुल मांग की कमी के कारण सामान्य अति-उत्पादन नहीं हो सकता। यदि कोई वस्तु नहीं बिकती है, तो इसका मतलब है कि दूसरी वस्तु की मांग है।
- **सामान्य बेरोजगारी असंभव (General Unemployment is Impossible):** यदि श्रम बाजार लचीला है (मज़दूरी में लोचशीलता), तो कोई भी दीर्घकालिक सामान्य बेरोजगारी नहीं हो सकती। यदि कुछ लोग बेरोजगार हैं, तो मज़दूरी कम होकर उन्हें रोज़गार मिल जाएगा।
- **बाज़ार की स्वतः-समायोजन प्रकृति (Self-Adjusting Nature of the Market):** अर्थव्यवस्था स्वतः ही संतुलन में आ जाती है। सरकार के हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि बाजार की शक्तियाँ (कीमतें, मज़दूरी, ब्याज दरें) किसी भी असंतुलन को अपने आप ठीक कर लेती हैं।
- **मुद्रा की तटस्थता (Neutrality of Money):** मुद्रा केवल विनिमय का माध्यम है और वास्तविक अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं डालती।

- **दीर्घकाल में पूर्ण रोज़गार (Full Employment in the Long Run):** अर्थव्यवस्था हमेशा पूर्ण रोज़गार स्तर पर या उसके करीब काम करती है।

5.6.4 'से' के नियम की आलोचना (Criticism of Say's Law)

'से' के नियम की सबसे महत्वपूर्ण आलोचना **जॉन मेनार्ड कीन्स (John Maynard Keynes)** द्वारा की गई थी, विशेष रूप से उनकी पुस्तक "द जनरल थ्योरी ऑफ एम्प्लॉयमेंट, इंटरेस्ट एंड मनी" (1936) में। कीन्स ने 1929 की महामंदी (Great Depression) के दौरान 'से' के नियम को अप्रभावी पाया, जहाँ व्यापक बेरोजगारी और अति-उत्पादन की समस्याएँ मौजूद थीं। प्रमुख आलोचनाएँ इस प्रकार हैं:

- **पूर्ति अपनी मांग का स्वयं सृजन नहीं करती (Supply does not create its own demand):** कीन्स ने तर्क दिया कि उत्पादन के लिए पर्याप्त मांग आवश्यक है। यदि मांग पर्याप्त नहीं है, तो अति-उत्पादन हो सकता है, और उत्पादक उत्पादन कम कर सकते हैं, जिससे बेरोजगारी बढ़ सकती है।
- **बचत और निवेश में असंतुलन (Imbalance between Saving and Investment):** 'से' का नियम मानता है कि सभी बचतें तुरंत निवेश में बदल जाती हैं। कीन्स ने दिखाया कि बचत और निवेश के निर्णय अलग-अलग कारकों पर निर्भर करते हैं और अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा लिए जाते हैं। लोग मुद्रा को जमा कर सकते हैं (hoarding), जिससे मांग में कमी आती है और निवेश के लिए धन उपलब्ध नहीं होता। ब्याज दरें हमेशा बचत और निवेश को बराबर नहीं कर पातीं।
- **मुद्रा की गैर-तटस्थता (Non-neutrality of Money):** कीन्स ने तर्क दिया कि मुद्रा केवल विनिमय का माध्यम नहीं है, बल्कि **मूल्य का भंडार (store of value)** भी है। लोग तरलता पसंद (liquidity preference) के कारण मुद्रा को अपने पास रखना पसंद करते हैं। मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन वास्तविक उत्पादन और रोज़गार को प्रभावित कर सकता है।
- **कीमतों और मज़दूरी में लोचशीलता का अभाव (Lack of Flexibility in Prices and Wages):** कीन्स ने कहा कि वास्तविक दुनिया में कीमतें और मज़दूरी उतनी लचीली नहीं होतीं जितनी क्लासिकल अर्थशास्त्री मानते हैं। विशेष रूप से, मज़दूरी नीचे की ओर **कठोर (sticky downward)** होती है (श्रमिक मज़दूरी में कमी का विरोध करते हैं)। यह मज़दूरी की कठोरता बेरोजगारी का कारण बन सकती है।

- **सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता (Need for Government Intervention):** कीन्स का मानना था कि मंदी या अवसाद की स्थिति में, बाजार की शक्तियाँ स्वतः संतुलन स्थापित करने में विफल हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में, सरकार को अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए **हस्तक्षेप (intervention)** करना चाहिए, जैसे सार्वजनिक व्यय बढ़ाना या ब्याज दरों को कम करना।
- **अल्पकालिक पर जोर (Emphasis on Short Run):** 'से' का नियम दीर्घकाल की अवधारणा पर केंद्रित है। कीन्स ने अल्पकाल के महत्व पर जोर दिया, जिसमें बेरोजगारी और अति-उत्पादन की समस्याएँ गंभीर हो सकती हैं और स्वतः ठीक नहीं होतीं। उन्होंने कहा, "दीर्घकाल में हम सब मर चुके होंगे।"

संक्षेप में, 'से' का बाज़ार नियम क्लासिकल अर्थशास्त्र की नींव है, जो अर्थव्यवस्था की स्वतः-समायोजन क्षमता और पूर्ण रोज़गार की प्रवृत्ति पर जोर देता है। हालांकि, कीन्स ने इस नियम को एक सीमित और अपर्याप्त मॉडल के रूप में चुनौती दी, खासकर वास्तविक दुनिया की मंदी और बेरोजगारी की समस्याओं को समझाने में।

5.7 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

5.7.1 सही विकल्प चुनिए

1: शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार, अर्थव्यवस्था किस स्थिति में कार्य करती है?

a) अपूर्ण रोजगार b) पूर्ण रोजगार c) स्थिर आय d) स्थिर पूंजी

2: 'से' के बाजार नियम के अनुसार—

a) मांग ही आपूर्ति उत्पन्न करती है b) आपूर्ति स्वयं अपनी मांग उत्पन्न करती है

c) निवेश ही बचत के बराबर होता है d) आय, खपत से अधिक होती है

3: शास्त्रीय मॉडल में मजदूरी और मूल्य में कौन-सा गुणधर्म होता है?

a) कठोरता b) लचीलापन c) अपरिवर्तनीयता d) स्थायित्व

4: शास्त्रीय दृष्टिकोण में श्रम की माँग किस पर निर्भर करती है?

a) वास्तविक मजदूरी दर पर b) नाममात्र मजदूरी दर पर

c) पूंजी पर d) उपभोग पर

5: ऑस्कर लांग ने 'से' के सिद्धांत की आलोचना किस आधार पर की थी?

a) मुद्रास्फीति की दर b) पूंजीगत वस्तुओं की कमी

c) प्रभावी मांग की अनुपस्थिति d) व्यापार घाटा

5.7.2 सही या गलत बताइए (True or False)

1. शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार, अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी दीर्घकालिक हो सकती है।
2. 'से' का बाजार नियम कहता है कि उत्पादन स्वयं अपनी मांग उत्पन्न कर लेता है।
3. शास्त्रीय मॉडल में मजदूरी और मूल्य पूरी तरह लचीले होते हैं।
4. ऑस्कर लांग और ए. सी. पीगू दोनों ने 'से' के सिद्धांत की बिना किसी आलोचना के समर्थन किया।
5. शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार, सरकार को बेरोजगारी या मंदी की स्थिति में हस्तक्षेप करना चाहिए।

5.8 सारांश (Summary)

शास्त्रीय मॉडल की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह **उत्पादन और रोज़गार की पूर्ति-निर्धारित प्रकृति** को केंद्र में रखता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, उत्पादन और रोज़गार का स्तर मुख्यतः अर्थव्यवस्था की **उत्पादन क्षमता**, संसाधनों की उपलब्धता, और **पूर्ति-पक्षीय कारकों** पर निर्भर करता है, न कि कुल माँग पर। इस विशेषता को **ऊर्ध्वाधर कुल पूर्ति वक्र (Vertical Aggregate Supply Curve)** के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है, जो दर्शाता है कि दीर्घकाल में मूल्य स्तर में परिवर्तन से उत्पादन के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस मॉडल की नींव कुछ विशिष्ट धारणाओं पर आधारित है, जिनमें **मूल्य और मज़दूरी का लचीलापन** तथा **बाजार प्रतिभागियों के पास पूर्ण जानकारी** प्रमुख हैं। शास्त्रीय अर्थशास्त्र मानता है कि यदि किसी भी बाज़ार में माँग और पूर्ति में असंतुलन होता है, तो मूल्य और मजदूरी दरें त्वरित रूप से समायोजित होकर नया संतुलन स्थापित कर देती हैं। इसके अनुसार श्रम बाजार और उत्पाद बाजार दोनों **नीलामी बाजारों** की तरह कार्य करते हैं, जहाँ संतुलन अपने-आप स्थापित हो जाता है।

शास्त्रीय मॉडल यह भी मानता है कि अर्थव्यवस्था में **पूर्ण रोजगार की स्थिति स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती है**, और कोई भी बेरोज़गारी केवल अस्थायी होती है। इस स्वचालित संतुलन के पीछे **लचीलापन और पूर्ण जानकारी** जैसे कारक निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

हालाँकि, यथार्थ जीवन में ये स्थितियाँ प्रायः नहीं पाई जातीं। मूल्य और मजदूरी दोनों में कई बार कठोरता देखी जाती है, और सभी बाज़ार प्रतिभागियों के पास पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं होती। इसी संदर्भ में **कीन्स** ने शास्त्रीय दृष्टिकोण की आलोचना की और यह सिद्ध किया कि अल्पकाल में **मांग-पक्षीय कारक** भी उत्पादन और रोज़गार के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस अध्याय में शास्त्रीय दृष्टिकोण के आधारभूत तर्कों, धारणाओं, और 'से' के बाजार नियम जैसे सिद्धांतों की विस्तार से चर्चा की गई, जिससे हमें यह समझने में सहायता मिलती है कि शास्त्रीय मॉडल कैसे कार्य करता है। यह भी स्पष्ट हुआ कि यद्यपि शास्त्रीय मॉडल सिद्धांत रूप में सुसंगत है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में इसकी कई सीमाएँ हैं। इसी कारणवश, आर्थिक विचारधारा में आगे चलकर **कीन्सीय क्रांति** ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

5.9 सूचक शब्द (Keywords)

- **शास्त्रीय अर्थशास्त्र (Classical Economics):** यह आर्थिक विचारधारा 18वीं और 19वीं शताब्दी में विकसित हुई, जो मानती है कि अर्थव्यवस्था स्वयं संतुलन की ओर बढ़ती है और सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
- **पूर्ण रोजगार (Full Employment):** वह स्थिति जहाँ सभी इच्छुक और योग्य श्रमिकों को काम मिल जाता है, और बेरोजगारी केवल अस्थायी या स्वैच्छिक होती है।
- **से का बाजार नियम (Say's Law of Market):** यह सिद्धांत कहता है कि "हर आपूर्ति अपनी स्वयं की मांग उत्पन्न करती है," अर्थात् उत्पादन ही आय और व्यय को जन्म देता है।
- **कुल पूर्ति वक्र (Aggregate Supply Curve):** यह वक्र अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन और मूल्य स्तर के संबंध को दर्शाता है; शास्त्रीय दृष्टिकोण में यह दीर्घकाल में ऊर्ध्वाधर होता है।
- **मूल्य और मज़दूरी का लचीलापन (Flexibility of Prices and Wages):** शास्त्रीय मॉडल में माना जाता है कि यदि किसी बाज़ार में असंतुलन होता है, तो मूल्य और मज़दूरी तुरंत समायोजित होकर नया संतुलन स्थापित कर लेते हैं।
- **वास्तविक मज़दूरी (Real Wage):** श्रमिक की मौद्रिक मज़दूरी (W) को मूल्य स्तर (P) से विभाजित करके प्राप्त की जाती है। यह दर्शाती है कि मजदूरी की क्रय शक्ति कितनी है (W/P)।

- **श्रम की मांग और पूर्ति (Labor Demand and Supply):** उत्पादन प्रक्रिया में श्रमिकों की आवश्यकता (मांग) और श्रमिकों की उपलब्धता (पूर्ति) को दर्शाती है। इन दोनों से ही रोजगार का संतुलन स्तर तय होता है।

5.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions-SAQs)

1. **शास्त्रीय दृष्टिकोण में उत्पादन और रोज़गार किस प्रकार निर्धारित होते हैं**? (How are output and employment determined under the classical approach?)
2. **'से' के बाजार नियम का क्या तात्पर्य है**? **इसकी प्रमुख मान्यताओं के साथ समझाइए।** (What is Say's Law of Market? Explain its meaning along with major assumptions.)
3. **ऊर्ध्वाधर कुल पूर्ति वक्र** (Vertical Aggregate Supply Curve) **की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।** (Explain the concept of the Vertical Aggregate Supply Curve.)
4. **शास्त्रीय मॉडल में मूल्य और मज़दूरी का लचीलापन क्यों आवश्यक माना गया है**? (Why is flexibility of prices and wages considered essential in the classical model?)
5. **ऑस्कर लांग और ए. सी. पीगू ने 'से' के नियम की किस प्रकार व्याख्या या आलोचना की है**? (How did Oscar Lange and A.C. Pigou interpret or criticize Say's Law?)
6. **शास्त्रीय दृष्टिकोण और कीन्सीय दृष्टिकोण में क्या प्रमुख अंतर हैं**? (What are the key differences between Classical and Keynesian approaches?)
7. **शास्त्रीय दृष्टिकोण की प्रमुख सीमाएँ क्या हैं**? (What are the major limitations of the Classical Approach?)

5.11 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर दें (Answers to Check Your Progress)

5.7.1 => सही उत्तर: 1. b) पूर्ण रोजगार, 2. b) आपूर्ति स्वयं अपनी मांग उत्पन्न करती है, 3. b) लचीलापन, 4. a) वास्त वक मजदूरी दर पर, 5. c) प्रभावी मांग की अनुपस्थिति।

5.7.2=> सही उत्तर: 1. गलत (शास्त्रीय ष्टिकोण मानता है क अर्थव्यवस्था हमेशा पूर्ण रोजगार की स्थिति में

रहती है।), 2. सही, 3. सही, 4. गलत, 5. गलत।

5.12 संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)

- Abel, Andrew B., Ben S. Bernanke & Dean Croushore – *Macroeconomics* (8th Edition), Pearson Education.
- Ackley, G. – *Macroeconomics: Theory and Policy*, Macmillan Publishing.
- Dornbusch, R., Fischer, S. and Startz, R. – *Macroeconomics*, McGraw Hill.
- Branson, W. A. – *Macroeconomic Theory and Policy*, Harper & Row.
- Jhingan, M.L. – *Samasti Arthashastra (समष्टि अर्थशास्त्र)*, Vrinda Publications, Delhi.
- Ahuja, H.L. – *Modern Economics*, S. Chand & Co., New Delhi.
- Keynes, J.M. – *The General Theory of Employment, Interest and Money*, Harcourt Brace.
- Froyen, Richard T. – *Macroeconomics: Theories and Policies*, Pearson Education.

विषय: अर्थशास्त्र (समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत I)	
विषय क्रमांक: बीए BECO-301	लेखक: डॉ. सोमनाथ परूथी
अध्याय: 6	वेट्टर:
कीन्स का दृष्टिकोण: प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धांत एवं समष्टि संतुलन	

अध्याय की संरचना (Structure of the Chapter)

6.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 **बेरोज़गारी की समस्या** (The Problem of Unemployment)

6.3 **सरल कीन्सीयन मॉडल** (Simple Keynesian Model)

6.4 कुल मांग के घटक (Components of Aggregate Demand)

6.5 संतुलन आय का निर्धारण (Determination of Equilibrium Income)

6.6 संतुलन आय में परिवर्तन (Change in Equilibrium Income)

6.7 राजकोषीय स्थिरीकरण नीति (Fiscal Stabilization Policy)

6.8 सरल कीन्सीयन मॉडल में निर्यात और आयात की भूमिका (The Role of Exports and Imports in the Simple Keynesian model)

6.9 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

6.10 सारांश **(Summary)**

6.11 सूचक शब्द **(Keywords)**

6.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assessment Questions-SAQs)**

6.13 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर दें (Answers to Check Your Progress)

6.14 **संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)**

6.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित बिंदुओं को समझने और विश्लेषण करने में सक्षम होंगे:

- कीन्सीय दृष्टिकोण की विशेषताओं को समझना, जो शास्त्रीय दृष्टिकोण से भिन्न है और जो समष्टि स्तर पर मांग की भूमिका को प्रमुखता देता है।
- बेरोज़गारी की समस्या को पहचानना तथा यह समझना कि कुल मांग की कमी के कारण अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी क्यों बनी रहती है।
- सरल कीन्सीयन मॉडल की संरचना एवं कार्यविधि को समझना, जिसमें संतुलन आय कुल मांग के स्तर पर निर्भर करती है।
- कुल मांग के घटकों — उपभोग, निवेश, सरकारी व्यय और विदेशी व्यापार (निर्यात व आयात) — की भूमिका का अध्ययन करना।
- यह जानना कि संतुलन आय कैसे निर्धारित होती है, और जब कुल मांग में परिवर्तन होता है तो आय में किस प्रकार का बदलाव आता है।
- यह समझना कि राजकोषीय नीति के माध्यम से सरकार आर्थिक अस्थिरता और बेरोज़गारी की समस्या से कैसे निपट सकती है।
- यह विश्लेषण करना कि निर्यात और आयात का सरल कीन्सीयन मॉडल में क्या स्थान है और वे आय निर्धारण को कैसे प्रभावित करते हैं।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में हमने शास्त्रीय दृष्टिकोण के अंतर्गत यह समझा कि उत्पादन और रोज़गार मुख्यतः पूर्ति-पक्षीय कारकों पर निर्भर करते हैं, और यह भी कि कीमतों तथा मज़दूरी में लचीलापन होने के कारण अर्थव्यवस्था स्वाभाविक रूप से पूर्ण रोजगार की स्थिति की ओर बढ़ती है। शास्त्रीय मॉडल यह मानता है कि सभी संसाधनों का पूर्ण उपयोग होता है और बाजार स्वयं को संतुलित कर लेते हैं। किंतु, वास्तविक जीवन में हमें अक्सर ऐसी

परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं जब संसाधन अप्रयुक्त रह जाते हैं, बेरोज़गारी बनी रहती है और उत्पादन अपनी संभावित क्षमता से नीचे होता है।

यही वह बिंदु है जहाँ **जॉन मेनार्ड कीन्स** का क्रांतिकारी दृष्टिकोण सामने आता है। कीन्स ने यह तर्क दिया कि अल्पकाल में मांग-पक्षीय कारक — विशेष रूप से **कुल प्रभावी मांग (Effective Demand)** — ही उत्पादन और रोजगार के प्रमुख निर्धारक होते हैं। यदि कुल मांग पर्याप्त नहीं है, तो अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति तक नहीं पहुँच सकती, भले ही पूर्ति पक्ष पूरी तरह सक्षम हो।

इस अध्याय में हम कीन्सीय प्रणाली की मूल अवधारणाओं का अध्ययन करेंगे। हम जानेंगे कि किस प्रकार **सरल कीन्सीयन मॉडल** के अंतर्गत कुल मांग (Aggregate Demand) की भूमिका से आय का संतुलन स्तर तय होता है। इसके अतिरिक्त हम यह भी समझेंगे कि बेरोज़गारी की समस्या इस मॉडल में कैसे उत्पन्न होती है, तथा इसे कैसे दूर किया जा सकता है। कुल मांग के घटकों — उपभोग, निवेश, सरकारी व्यय, और विदेशी व्यापार (निर्यात-आयात) — की संरचना और उनका संतुलन आय पर प्रभाव भी इस अध्याय का एक महत्वपूर्ण भाग होगा।

इसके साथ ही हम **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)** की भूमिका पर भी विचार करेंगे — विशेषकर तब जब सरकार आर्थिक मंदी या बेरोज़गारी जैसी समस्याओं का समाधान करना चाहती है। कीन्स का दृष्टिकोण न केवल आर्थिक विश्लेषण को एक नई दिशा देता है, बल्कि यह नीति-निर्माताओं के लिए भी व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार, यह अध्याय हमें यह समझने में सहायता करेगा कि शास्त्रीय मॉडल की सीमाओं के परे जाकर, कीन्सीय प्रणाली कैसे आधुनिक समष्टि अर्थशास्त्र की नींव रखती है — जहाँ **मांग की भूमिका** केंद्रीय है, और नीति के माध्यम से अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान की जा सकती है।

6.2 बेरोज़गारी की समस्या (The Problem of Unemployment)

1930 के दशक की *महामंदी (Great Depression)* ने पूरी दुनिया को हिला कर रख दिया — खासकर अमेरिका और ब्रिटेन को। इसी पृष्ठभूमि में एक नए सोच की शुरुआत हुई, जिसे हम आज **कीन्सीयन अर्थशास्त्र** (Keynesian Economics) के नाम से जानते हैं। *1933* तक अमेरिका में **बेरोज़गारी दर 25.2%** तक पहुँच गई थी — यानि हर 4 में से 1 व्यक्ति बेरोज़गार! 1929 से 1933 तक, देश का **वास्तविक राष्ट्रीय उत्पादन 30%** गिर गया। और 1939 तक भी अर्थव्यवस्था 1929 के स्तर तक नहीं लौटी।

ब्रिटेन की कहानी कुछ अलग थी: ब्रिटेन में बेरोज़गारी की समस्या 1920 के दशक से ही चल रही थी और 1930 के दशक तक बनी रही। इसने वहाँ के नीति निर्माताओं और अर्थशास्त्रियों को मजबूर किया कि वे सोचें — आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? **यहाँ आते हैं जॉन मेनार्ड कीन्स** / कीन्स ने इन हालातों पर गहरी नजर डाली और पाया कि समस्या की **जड़ है — कुल मांग में गिरावट (fall in aggregate demand)।** उनका कहना था: *"जब कुल मांग गिरती है, तो लोग खर्च नहीं करते, कंपनियाँ उत्पादन घटा देती हैं, और इससे बेरोज़गारी बढ़ती है।"*

समाधान? **सरकार को आगे आना चाहिए और खर्च बढ़ाना चाहिए।** खासतौर पर *सार्वजनिक निर्माण परियोजनाओं (public works)* पर, ताकि लोगों को काम मिले, उनकी आय बढ़े और उपभोग भी।

लेकिन उस समय की सोच अलग थी। उस समय **क्लासिकल अर्थशास्त्र** का बोलबाला था। उनका मानना था कि बाज़ार *अपने आप* संतुलन बना लेता है। अगर सरकार खर्च बढ़ाएगी या कर्ज लेगी, तो इससे सिर्फ महंगाई बढ़ेगी — **रोज़गार या उत्पादन नहीं।** ब्रिटेन की कंजर्वेटिव पार्टी और चर्चिल जैसे नेता मानते थे कि: "सरकार का उधार लेना और खर्च करना ज़्यादा नौकरियाँ नहीं लाता।"

अमेरिका में भी यही हाल था। अमेरिकी राष्ट्रपति *हर्बर्ट हूवर* ने 1932 में मंदी के चरम पर टैक्स बढ़ा दिए — ताकि बजट संतुलित किया जा सके! फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट तक ने पहले *सरकारी खर्च में कटौती* की बात की। क्लासिकल सोच ये मानती थी कि: बजट संतुलित हो (टैक्स = खर्च), मांग बढ़ाने की जरूरत नहीं है क्योंकि मांग उत्पादन को प्रभावित नहीं करती

कीन्स का क्रांतिकारी दृष्टिकोण: कीन्स ने इस सोच को पूरी तरह चुनौती दी। उन्होंने कहा "अगर हम बेरोज़गारी खत्म करना चाहते हैं, तो सरकार को खर्च बढ़ाना ही होगा — खासकर तब जब प्राइवेट सेक्टर डर के मारे निवेश नहीं कर रहा हो।" उनका मानना था कि क्लासिकल मॉडल की सबसे बड़ी कमजोरी ये थी कि उसमें **कुल मांग का स्पष्ट सिद्धांत ही नहीं था।** कीन्स को लगता था कि जब तक इस मॉडल में मांग की भूमिका को नहीं समझा जाएगा, तब तक बेरोज़गारी जैसी समस्याएं नहीं सुलझेंगी।

अगर संक्षेप में बात करें तो

- 1930 की महामंदी ने क्लासिकल मॉडल की कमजोरियों को उजागर किया।
- कीन्स ने बताया कि बेरोज़गारी की असली वजह कुल मांग में गिरावट है।

- समाधान: सरकार को खर्च बढ़ाना चाहिए (expansionary fiscal policy)।
- क्लासिकल सोच के अनुसार, सरकारी खर्च या टैक्स से रोजगार या उत्पादन नहीं बढ़ते।
- कीन्स ने इस सोच को गलत साबित किया और एक नए समष्टि आर्थिक सिद्धांत की नींव रखी।
- यह सिद्धांत बाद में "कीनेसियन क्रांति" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

6.3 सरल कीन्सीयन मॉडल (Simple Keynesian Model)

केंसियन मॉडल की एक प्रमुख धारणा यह है कि किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का संतुलन स्तर तभी हासिल होता है जब कुल उत्पादन, कुल मांग के बराबर हो। हमारे मॉडल के संदर्भ में, इस संतुलन की स्थिति को हम निम्नलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं:

$$Y = E \quad \text{.....(6.1)}$$

यहाँ, **Y** का अर्थ है कुल उत्पादन (जिसे हम GDP कहते हैं), और **E** से तात्पर्य है कुल मांग या उत्पादन पर किया गया वांछित व्यय। कुल मांग (**E**) को तीन मुख्य घटकों में बाँटा जा सकता है: घरेलू उपभोग (**C**), वांछित निवेश मांग (**I**) और सरकार द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग (**G**)। इसलिए, संतुलन की स्थिति में समीकरण कुछ इस प्रकार बनता है:

$$Y = E = C + I + G \quad \text{.....(6.2)}$$

समीकरण (6.2) को एक सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस सरलता के पीछे कारण यह है कि GDP और राष्ट्रीय आय की परिभाषाओं से जुड़ी कुछ जटिलताओं को फिलहाल नजरअंदाज किया गया है। गौर करने वाली बात यह है कि समीकरण (6.2) में निर्यात और आयात शामिल नहीं हैं, क्योंकि इस चरण पर हम एक "बंद अर्थव्यवस्था" की बात कर रहे हैं, जिसमें विदेशी व्यापार की भूमिका नहीं मानी जाती।

इस मॉडल में हम GDP और GNP के बीच अंतर नहीं करते हैं, न ही मूल्यह्रास को शामिल करते हैं, जिससे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद को अलग से देखने की जरूरत नहीं पड़ती। हम मानते हैं कि GDP और राष्ट्रीय आय समान हैं, अर्थात् ऐसी कोई वस्तु शामिल नहीं है जिससे इन दोनों में अंतर उत्पन्न हो (जैसे अप्रत्यक्ष कर)। एक और महत्वपूर्ण धारणा यह है कि इस अध्याय में हम **मूल्य स्तर को स्थिर मानते हैं** और सभी चरों को **वास्तविक (real) रूप में** देखा जाता है। यानी, कोई भी परिवर्तन वास्तविक रूप में ही माना गया है।

जब हम राष्ट्रीय उत्पाद **Y** को राष्ट्रीय आय के रूप में मापते हैं, तो उसे इस प्रकार लिखा जा सकता है:

Y = C + S + T .....(6.3)

यह एक लेखांकन पहचान (identity) है, जो यह बताती है कि राष्ट्रीय आय, जिसे पूरी तरह से साधन सेवाओं (जैसे मजदूरी, ब्याज, किराया, लाभ) के बदले में परिवारों को भुगतान किया जाता है, या तो **उपभोग (C)** के रूप में खर्च की जाती है, **कर (T)** के रूप में सरकार को दी जाती है, या **बचत (S)** के रूप में रखी जाती है।

इसके साथ ही, इस तथ्य के आधार पर कि Y राष्ट्रीय उत्पाद है, हम इसे इस रूप में भी लिख सकते हैं:

Y = C + Ir + G .....(6.4)

यह समीकरण (6.4) राष्ट्रीय उत्पाद को उपभोग, **वास्तविक निवेश (Ir)**, और सरकारी खर्च के योग के रूप में परिभाषित करता है।

अब, हम समीकरण (6.2) में दी गई संतुलन आय की स्थिति को समीकरण (6.3) और (6.4) की सहायता से दो वैकल्पिक तरीकों से लिख सकते हैं, जो संतुलन की प्रकृति को और बेहतर समझने में मदद करते हैं। चूंकि (6.2) के अनुसार संतुलन में Y = C + I + G और (6.3) के अनुसार Y = C + S + T, इसलिए:

C + S + T = Y = C + I + G

या, सरल रूप में:

S + T = I + G .....(6.5)

इसी तरह, समीकरण (6.2) और (6.4) से यह निष्कर्ष निकलता है कि:

C + Ir + G = Y = C + I + G

इससे हम पाते हैं:

Ir = I .....(6.6)

तो, संतुलन की तीन समकक्ष स्थितियाँ इस प्रकार हैं:

- **Y = E = C + I + G .....(6.2)**
- **S + T = I + G .....(6.5)**

- **Ir = I .....(6.6)**

Figure 6.1

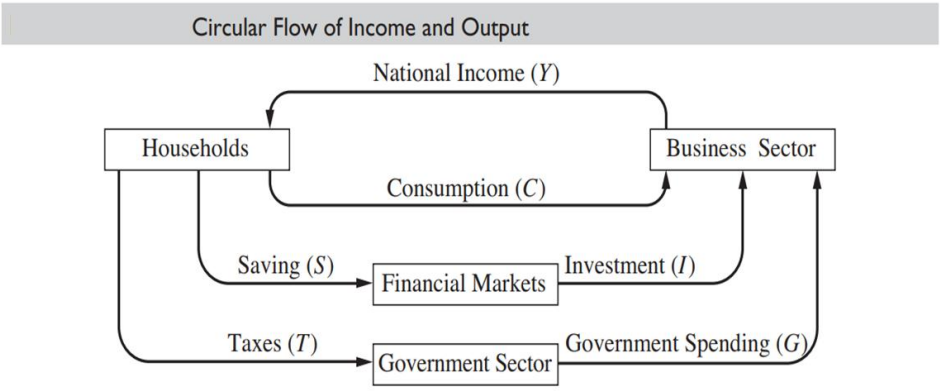

इन समीकरणों को बेहतर समझने के लिए हम **चित्र 6.1 में दिए गए फ्लोचार्ट** को देख सकते हैं। इस चार्ट में हर परिमाण (जैसे C, I, G, आदि) एक **प्रवाह चर (flow variable)** है, जिसे किसी अवधि (जैसे प्रति वर्ष) में मापा जाता है। आमतौर पर इन्हें अरबों डॉलर प्रति वर्ष के रूप में मापा जाता है।

फ्लोचार्ट के शीर्ष पर स्थित तीर दर्शाता है कि व्यावसायिक क्षेत्र से घरेलू क्षेत्र को राष्ट्रीय आय का प्रवाह हो रहा है, जो उत्पादन के साधनों की सेवाओं के बदले में भुगतान है। यह प्रवाह ही राष्ट्रीय आय है और यह राष्ट्रीय उत्पाद के बराबर होता है। हालांकि घरेलू क्षेत्र से व्यावसायिक क्षेत्र को जो प्रवाह होता है (जैसे श्रम या सेवाएँ), उसे चार्ट में नहीं दिखाया गया है क्योंकि वह मुद्रा प्रवाह नहीं है।

राष्ट्रीय आय को परिवार तीन भागों में विभाजित करते हैं—**उपभोग (C)**, **बचत (S)** और **कर भुगतान (T)**। उपभोग वाला भाग फिर से व्यावसायिक क्षेत्र में जाता है और उत्पादन की मांग उत्पन्न करता है। इस प्रकार, आरेख का केंद्रीय लूप दिखाता है कि फर्में उत्पादन करती हैं (Y), जो परिवारों को आय के रूप में मिलती है, और फिर यही आय उत्पादन की मांग बन जाती है (C)।

लेकिन पूरी आय सीधे उत्पादन की मांग में नहीं जाती। बचत और कर प्रवाह **आंतरिक लूप से रिसाव (leakages)** माने जाते हैं। बचत वित्तीय बाजारों में जाती है, और कर सरकार को। **कर प्रवाह** को **"शुद्ध कर (net taxes)"** के रूप में दिखाया गया है—यानी कुल कर घटा (minus) सरकार द्वारा किए गए ट्रांसफर भुगतान (जैसे सामाजिक सुरक्षा, बेरोजगारी लाभ आदि)। इसलिए कर में किसी प्रकार का परिवर्तन हस्तांतरण भुगतान में विपरीत परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है।

अब सवाल उठता है कि यदि परिवार आय का सारा हिस्सा उत्पादन पर खर्च नहीं करते, तो क्या कुल मांग कम हो जाएगी? नहीं, क्योंकि फर्में स्वयं निवेश करती हैं और सरकार भी उत्पादन की मांग करती है। ये दोनों गतिविधियाँ चक्रीय प्रवाह में **इंजेक्शन (injections)** के रूप में कार्य करती हैं। **निवेश प्रवाह**, वित्तीय बाजारों से होकर फर्मों तक जाता है और यह फर्मों द्वारा उधारी के जरिए निवेश करने को दर्शाता है।

सरकारी व्यय भी व्यावसायिक क्षेत्र को जाता है, और सरकारी मांग को दिखाता है।

अब हम तीनों समीकरणों—(6.2), (6.5), और (6.6)—का विश्लेषण करते हैं।

उत्पादन Y, परिवारों को आय के रूप में प्राप्त होता है। इसका एक हिस्सा उपभोग (C) के रूप में वापस उत्पादन की मांग बन जाता है। यदि बचा हुआ हिस्सा, यानी S + T, निवेश और सरकारी खर्च (I + G) के बराबर हो, तो:

S + T = I + G .....(6.5)

यह संतुलन की वह स्थिति है जिसमें जितनी आय घरेलू क्षेत्र से "लीक" होती है, उतनी ही दो अन्य क्षेत्रों—निवेश और सरकार—से वापस "इंजेक्ट" होती है।

तीसरी स्थिति जो संतुलन को दर्शाती है वह है:

Ir = I .....(6.6)

यह बताती है कि वांछित निवेश और वास्तविक निवेश बराबर होना चाहिए। GDP लेखाकार **वास्तविक निवेश** को दो हिस्सों में मापते हैं:

1. **संयंत्र व उपकरण पर खर्च**, और
2. **इन्वेंट्री (गोदाम में जमा वस्तुएँ)** में परिवर्तन।

यह माना गया है कि संयंत्र व उपकरण पर किया गया वांछित खर्च और वास्तविक खर्च बराबर होता है। **विभिन्नता इन्वेंट्री निवेश में आती है**, क्योंकि कोई वस्तु यदि बन गई और नहीं बिकी, तो वह वास्तविक निवेश में गिनी जाएगी—चाहे वह फर्म की योजना का हिस्सा हो या नहीं।

अब देखें कि यदि उत्पादन कुल मांग से अधिक हो जाए, यानी:

Y > E

C + Ir + G > C + I + G

तो:

Ir > I .....(6.7)

यह स्थिति दर्शाती है कि अतिरिक्त उत्पादन बेचने में विफल रहने के कारण **अनपेक्षित भंडार (inventory) संचय** होता है।

वहीं दूसरी ओर, यदि मांग उत्पादन से अधिक हो:

E > Y

C + I + G > C + Ir + G

तो:

I > Ir .....(6.8)

इसका अर्थ है कि उत्पादन कम है, और मांग अधिक, जिससे **अनपेक्षित भंडार (inventory) की कमी** हो जाती है।

संतुलन बिंदु तब आता है जब I = Ir होता है—अर्थात् न तो इन्वेंट्री अनपेक्षित रूप से जमा हो रही है और न ही कम हो रही है।

इस तीसरे दृष्टिकोण से स्पष्ट होता है कि यदि किसी भी स्थिति में I ≠ Ir हो, तो फर्में अपने उत्पादन को समायोजित करेंगी।

यदि **Y > E**, तो इन्वेंट्री बढ़ेगी और फर्में उत्पादन घटाएंगी।

यदि **E > Y**, तो इन्वेंट्री घटेगी और फर्में उत्पादन बढ़ाएंगी।

केवल तब जब **Y = E** होगा, तब ही फर्में अपने उत्पादन स्तर से संतुष्ट होंगी और अर्थव्यवस्था संतुलन में होगी।

6.4 कुल मांग के घटक (Components of Aggregate Demand)

हमने सरल कीन्सीयन मॉडल में संतुलन की स्थिति को कुल मांग के घटकों के संदर्भ में व्यक्त किया है। आय के स्तर को निर्धारित करने वाले कारकों को देखने के लिए, हम उन कारकों पर विचार करते हैं जो कुल मांग के घटकों को प्रभावित करते हैं: उपभोग, निवेश और सरकारी खर्च। हमारी चर्चा में बचत और कर भी शामिल हैं।

उपभोग (Consumption): उपभोक्ता व्यय कुल मांग का सबसे बड़ा घटक है, जो हाल के वर्षों में जीडीपी का 60 से 70 प्रतिशत रहा है।

कीन्स का मानना था कि उपभोक्ता व्यय का स्तर प्रायोज्य आय (Disposable Income) का एक स्थिर फलन था, जहाँ हमारे सरल मॉडल में प्रायोज्य आय (Y_D) राष्ट्रीय आय घटा (minus) शुद्ध कर भुगतान ($Y_D = Y - T$) है। कीन्स ने इस बात से इनकार नहीं किया कि आय के अलावा अन्य चर भी उपभोग को प्रभावित करते हैं, लेकिन उनका मानना था कि आय उपभोग का प्रमुख निर्धारक थी। पहले अनुमान में, अन्य प्रभावों की उपेक्षा की जा सकती थी। कीन्स द्वारा प्रस्तावित उपभोग फलन (Consumption Function), उपभोग-आय संबंध का विशिष्ट रूप इस प्रकार था:

$$C = a + bY_D,\ a > 0,\ 0 < b < 1 \text{ .....(6.9)}$$

Figure 6.2

Keynesian Consumption Function

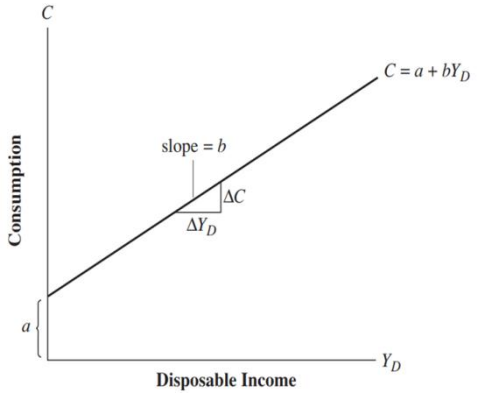

चित्र 6.2 इस संबंध को दर्शाता है। a स्वायत्त उपभोग, जिसे धनात्मक माना जाता है, प्रायोज्य आय शून्य होने पर उपभोग का मान है। इस प्रकार, a को आय के अलावा अन्य चरों के उपभोग पर पड़ने वाले प्रभाव के माप के रूप में सोचा जा सकता है, जो इस सरल मॉडल में स्पष्ट रूप से शामिल नहीं हैं। पैरामीटर b, फलन का ढलान, प्रायोज्य आय में प्रति इकाई वृद्धि पर उपभोक्ता व्यय में वृद्धि देता है। नोटेशन में, हम अक्सर उपयोग करते हैं:

$$b = \Delta C / \Delta Y_D \text{ .....(6.10)}$$

जहाँ अंतर प्रतीक Δ, उस चर में परिवर्तन को इंगित करता है जिसके पहले वह आता है। आय में प्रति इकाई वृद्धि पर उपभोक्ता व्यय में वृद्धि (b) को उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Consume - MPC)

कहा जाता है। कीन्सीयन धारणा यह है कि प्रायोज्य आय में वृद्धि के साथ उपभोग बढ़ेगा (b > 0) लेकिन उपभोग में वृद्धि प्रायोज्य आय में वृद्धि से कम होगी (b < 1)।

राष्ट्रीय आय की परिभाषा से,

$$Y \equiv C + S + T \quad \text{.....(6.3)}$$

हम लिख सकते हैं:

$$Y_D \equiv Y - T \equiv C + S \quad \text{.....(6.11)}$$

जो दर्शाता है कि प्रायोज्य आय, परिभाषा के अनुसार, उपभोग+बचत है। इस प्रकार उपभोग-आय संबंध का एक सिद्धांत भी परोक्ष रूप से बचत-आय संबंध को निर्धारित करता है। कीन्सीयन सिद्धांत के मामले में, हमारे पास है:

$$S = -a + (1 - b)Y_D \quad \text{.....(6.12)}$$

यदि Y_D शून्य होने पर उपभोग a इकाइयाँ है, तो उस बिंदु पर:

$$S \equiv Y_D - C = 0 - a = -a$$

यदि प्रायोज्य आय में 1-इकाई की वृद्धि से उपभोग में b इकाइयों की वृद्धि होती है, तो शेष (1 – b) बचत में वृद्धि होती है:

Figure 6.3

Keynesian Saving Function

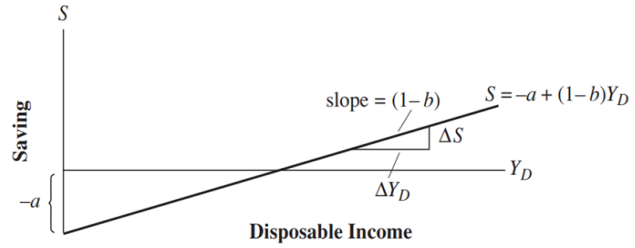

$$\Delta S / \Delta Y_D = 1 - b \quad \text{.....(6.13)}$$

प्रायोज्य आय में प्रति इकाई वृद्धि पर बचत में यह वृद्धि (1 – b) बचत की सीमांत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Save - MPS) कहलाती है। बचत फलन का ग्राफ चित्र 6.3 में दिखाया गया है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कीन्स ने आय को उपभोक्ता खर्च का प्रमुख निर्धारक माना था। उपभोग के बाद के सिद्धांतों ने कीन्स के सिद्धांत को कई दिशाओं में विस्तारित किया है। एक यह है कि उपभोग पर घरेलू धन (Household Wealth) के अतिरिक्त प्रभाव को पहचानना। आय के एक निश्चित स्तर के लिए, उच्च धन से उपभोक्ता खर्च का उच्च स्तर होता है। घरेलू धन में घरों द्वारा रखे गए स्टॉक और बांड जैसी वित्तीय संपत्तियों का मूल्य शामिल होता है। घरेलू धन में होम इक्विटी भी शामिल होती है जिसे बंधक ऋण के शुद्ध घर के मूल्य के रूप में परिभाषित किया जाता है।

उपभोग पर बाद के शोध द्वारा ली गई एक और दिशा आय की अवधारणा को केवल वर्तमान आय से एक व्यापक अवधारणा तक विस्तारित करना है जिसे स्थायी आय (Permanent Income) कहा जाता है जिसमें वर्तमान और अपेक्षित भविष्य के आय स्तरों का औसत होता है। हम अपने विश्लेषण में बाद के बिंदुओं पर इन अधिक जटिल उपभोग सिद्धांतों पर विचार करेंगे। इस अध्याय में कीन्सीयन मॉडल विकसित करते समय हम समीकरण (6.9) में दिए गए सरल उपभोग फलन पर बने रहते हैं।

निवेश (Investment): निवेश भी कीन्सीयन प्रणाली में एक महत्वपूर्ण चर था। वांछित व्यावसायिक निवेश व्यय में परिवर्तन उन प्रमुख कारकों में से एक था जिसे कीन्स ने आय में परिवर्तनों के लिए जिम्मेदार माना था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कीन्स का मानना था कि उपभोग प्रायोज्य आय का एक स्थिर फलन था। इस दृष्टिकोण का मतलब यह नहीं था कि उपभोग व्यय समय के साथ स्थिर रहेगा। इसका मतलब यह था कि, आय को बदलने वाले अन्य कारकों की अनुपस्थिति में, उपभोग व्यय आय में परिवर्तनशीलता का एक महत्वपूर्ण स्वतंत्र स्रोत नहीं होगा। उपभोग मुख्य रूप से प्रेरित व्यय (Induced Expenditure) था, जिसका अर्थ है कि यह व्यय सीधे आय पर निर्भर करता है।

सवाल यह है: निवेश को क्या निर्धारित करता है? कीन्स ने अल्पावधि में निवेश व्यय के प्राथमिक निर्धारकों के रूप में दो चरों का सुझाव दिया: ब्याज दर और व्यावसायिक अपेक्षाओं की स्थिति।

निवेश और ब्याज दर के बीच संबंध की व्याख्या करते हुए, कीन्स का विश्लेषण शास्त्रीय दृष्टिकोण से भिन्न नहीं था। निवेश का स्तर ब्याज दर के स्तर से विपरीत रूप से संबंधित माना जाता है। उच्च ब्याज दरों पर, कम निवेश परियोजनाओं का इतना उच्च संभावित प्रतिफल होता है कि उन्हें वित्तपोषित करने के लिए उधार लेना उचित हो। अभी के लिए, क्योंकि हमने यह नहीं बताया है कि कीन्सीयन मॉडल में ब्याज दर कैसे निर्धारित की जाती है, हम

निवेश पर ब्याज दर के प्रभाव की उपेक्षा करते हैं। हम निवेश को निर्धारित करने वाले दूसरे कारक, निवेश परियोजनाओं पर अपेक्षित प्रतिफल पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

निवेश परियोजनाओं की भविष्य की लाभप्रदता के बारे में व्यावसायिक प्रबंधकों की अपेक्षाएं कीन्स के विश्लेषण में एक केंद्रीय तत्व हैं। कीन्स ने "अनिश्चित ज्ञान" पर जोर दिया जिस पर भविष्य की अपेक्षाएं आधारित होनी चाहिए। एक परियोजना की लाभप्रदता का अनुमान लगाने के लिए जो 20 या 30 वर्षों तक उत्पादन करेगी, एक प्रबंधक को भविष्य के बारे में बहुत अधिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। उसे उत्पाद की भविष्य की मांग जानने की आवश्यकता है, जिसके लिए भविष्य के उपभोक्ता स्वाद और कुल मांग की स्थिति के बारे में ज्ञान की आवश्यकता होती है। उसे भविष्य की लागतों के बारे में ज्ञान की आवश्यकता है, जिसमें मुद्रा मजदूरी, ब्याज दरें और कर दरें शामिल हैं; ऐसे चरों का एक अच्छी तरह से आधारित पूर्वानुमान 20 या 30 वर्षों के लिए भविष्य में नहीं किया जा सकता है।

फिर भी, निवेश निर्णय लिए जाते हैं। कीन्स का मानना था कि अत्यधिक अनिश्चितता के तहत निर्णय लेने की आवश्यकता का सामना करने वाले तर्कसंगत प्रबंधक निम्नलिखित तकनीकों का उपयोग करके अपेक्षाएं बनाते हैं:

- वे पिछले रुझानों को भविष्य में बढ़ाने की प्रवृत्ति रखते थे, संभावित भविष्य के परिवर्तनों की अनदेखी करते थे, जब तक कि किसी संभावित परिवर्तन के बारे में विशिष्ट जानकारी नहीं थी।
- "यह जानकर कि हमारा अपना व्यक्तिगत निर्णय बेकार है, हम शेष दुनिया के निर्णय पर निर्भर रहने का प्रयास करते हैं, जो शायद बेहतर सूचित है। यानी, हम बहुमत या औसत के व्यवहार के अनुरूप होने का प्रयास करते हैं। व्यक्तियों के समाज का मनोविज्ञान, जिनमें से प्रत्येक दूसरों की नकल करने का प्रयास कर रहा है, जिसे हम सख्ती से पारंपरिक निर्णय कह सकते हैं, की ओर ले जाता है।" कीन्स का मानना था कि इस तरह से बनी अपेक्षा में निम्नलिखित गुण होंगे।
- विशेष रूप से, इतनी कमजोर नींव पर आधारित होने के कारण, यह अचानक और हिंसक परिवर्तनों के अधीन है। शांति और स्थिरता, निश्चितता और सुरक्षा का अभ्यास अचानक टूट जाता है। नई आशंकाएं और आशाएं, बिना किसी चेतावनी के, मानवीय व्यवहार पर हावी हो जाएंगी। मोहभंग की ताकतें अचानक मूल्यांकन का एक नया पारंपरिक आधार थोप सकती हैं। ये सभी सुंदर, विनम्र तकनीकें, एक अच्छी तरह से पैनल वाले बोर्ड रूम के लिए बनाई गई हैं, ढहने के लिए उत्तरदायी हैं। हर समय अस्पष्ट आतंक के डर

और समान रूप से अस्पष्ट और अतार्किक आशाएं वास्तव में शांत नहीं होती हैं, और सतह के ठीक नीचे थोड़ी दूर स्थित होती हैं।

संक्षेप में, निवेश परियोजनाओं की भविष्य की लाभप्रदता की अपेक्षाएं ज्ञान के एक अनिश्चित आधार पर टिकी हुई थीं, और कीन्स का मानना था कि ऐसी अपेक्षाएं नई जानकारी और घटनाओं के जवाब में अक्सर, कभी-कभी नाटकीय रूप से, बदल सकती हैं। नतीजतन, निवेश मांग अस्थिर थी।

सरकारी खर्च और कर (Government Spending and Taxes): सरकारी खर्च (G) स्वायत्त व्यय (Autonomous Expenditures) का दूसरा तत्व है। सरकारी खर्च को नीति निर्माता द्वारा नियंत्रित माना जाता है और इसलिए यह सीधे आय के स्तर पर निर्भर नहीं करता है।

हम मानते हैं कि कर प्राप्तियों (T) का स्तर भी नीति निर्माता द्वारा नियंत्रित होता है और एक नीति चर है। एक अधिक यथार्थवादी धारणा यह है कि नीति निर्माता कर दर निर्धारित करता है, और कर प्राप्तियां आय के साथ भिन्न होती हैं। यह धारणा हमारी गणना को जटिल बनाएगी लेकिन आवश्यक निष्कर्षों को नहीं बदलेगी।

6.5 संतुलन आय का निर्धारण (Determination of Equilibrium Income)

अब हमारे पास संतुलन आय (उत्पादन) निर्धारित करने के लिए आवश्यक सभी तत्व हैं। आय के संतुलन स्तर की शर्त का पहला रूप है:

Y=E=C+I+G .....(6.2)

संतुलन आय (Y) वह अंतर्जात चर (endogenous variable) है जिसे निर्धारित किया जाना है। स्वायत्त व्यय (autonomous expenditure e.g. I and G) पद I और G दिए गए हैं, जैसा कि T का स्तर है; ये मॉडल के बाहर के कारकों द्वारा निर्धारित बहिर्जात चर (exogenous variables) हैं।

उपभोग, अधिकांश भाग के लिए, उपभोग फलन

$$C = a + bY_D \; or \; C = a + b(Y - T) or \; C = a + bY - bT \; \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6.9)$$

द्वारा अंतर्जात रूप से निर्धारित प्रेरित व्यय (induced expenditure) है, जहाँ दूसरी समानता प्रायोज्य आय (Y_D ≡Y−T) की परिभाषा का उपयोग करती है। उपभोग के लिए समीकरण (6.9) द्वारा दिए गए समीकरण को संतुलन शर्त (6.2) में प्रतिस्थापित करने पर, हम आय के संतुलन स्तर Y के लिए निम्न प्रकार से हल कर सकते हैं:

$$Y = C + I + G$$

$$Y = a + bY - bT + I + G$$

$$Y - bY = a - bT + I + G \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6.14)$$

$$Y(1 - b) = a - bT + I + G$$

$$\bar{Y} = \frac{1}{(1 - b)} \times (a - bT + I + G)$$

चित्र 6.4 संतुलन आय के निर्धारण को दर्शाता है। आय को क्षैतिज अक्ष के साथ मापा जाता है, और कुल मांग के घटकों को ऊर्ध्वाधर अक्ष के साथ मापा जाता है। ग्राफ़ के धनात्मक चतुर्थांश को विभाजित करने के लिए 45° रेखा खींची गई है। इस रेखा के साथ सभी बिंदु दर्शाते हैं कि कुल व्यय कुल उत्पादन के बराबर है। ऊर्ध्वाधर अक्ष पर मापे गए चरों का मान, (C+I+G), क्षैतिज अक्ष पर मापे गए चर, (Y) के मान के बराबर है। उपभोग फलन ($C=a+bY_D$) को ग्राफ़ पर दिखाया गया है, और हमने (C+I+G) या **कुल व्यय (E) अनुसूची** को भी प्लॉट किया है, जो प्रत्येक आय स्तर पर उपभोग व्यय में स्वायत्त व्यय घटकों, निवेश और सरकारी खर्च को जोड़कर प्राप्त की जाती है। क्योंकि स्वायत्त व्यय घटक (I,G) सीधे आय पर निर्भर नहीं करते हैं, (C+I+G) अनुसूची उपभोग फलन से एक स्थिर राशि से ऊपर रहती है।

Figure 6.4

Determination of Equilibrium Income

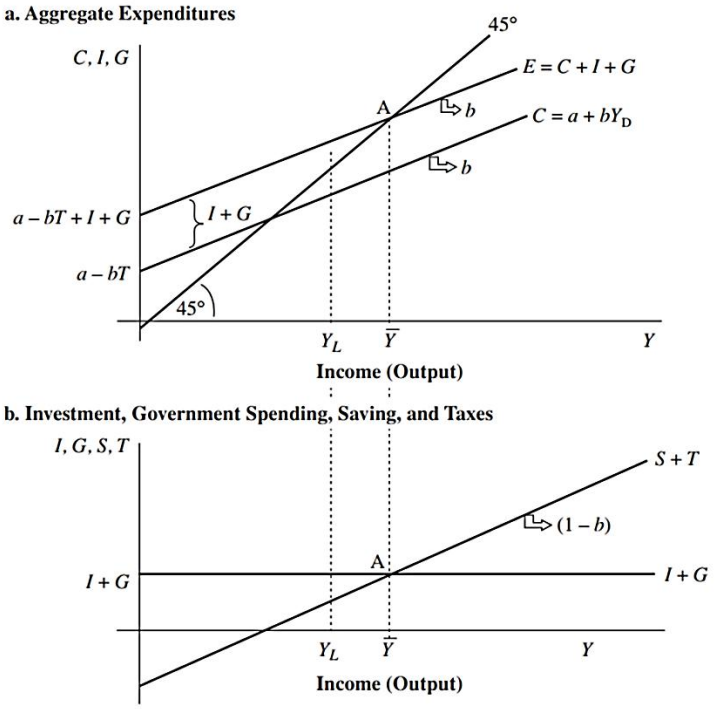

जैसा कि चित्र 6.4a में दिखाया गया है, इन स्वायत्त व्यय घटकों को अकेले प्लॉट करने वाली रेखा, I+G रेखा, क्षैतिज है क्योंकि उनका स्तर Y पर निर्भर नहीं करता है। ऊपर की ओर ढलान वाली रेखा, ग्राफ़ में S+T चिह्नित, बचत प्लस करों का मान प्लॉट करती है। यह अनुसूची ऊपर की ओर ढलान वाली है क्योंकि बचत आय के साथ सकारात्मक रूप से बदलती है।

चित्र 6.4a में, आय का संतुलन स्तर उस बिंदु पर दिखाया गया है जहाँ (C+I+G) अनुसूची 45° रेखा को कटती है, और कुल मांग इसलिए आय (Y) के बराबर है। यह प्रतिच्छेदन समीकरण (6.2) में व्यक्त संतुलन शर्त को दर्शाता है। संतुलन में, यह भी सच होना चाहिए कि (S+T) अनुसूची (I+G) क्षैतिज अनुसूची को काटती है। यह प्रतिच्छेदन, चित्र 6.4b में दिखाया गया है, समीकरण (6.5) में व्यक्त संतुलन शर्त को दर्शाता है।

अब विचार करें कि ग्राफ़ पर अन्य बिंदु संतुलन के बिंदु क्यों नहीं हैं। Y से नीचे आय के एक स्तर पर विचार करें, उदाहरण के लिए, चित्र 6.4a में Y_L चिह्नित बिंदु। Y_L के बराबर आय का एक स्तर उपभोग फलन के साथ दिखाए गए अनुसार उपभोग उत्पन्न करता है। जब उपभोग का यह स्तर स्वायत्त व्ययों (I+G) में जोड़ा जाता है, तो कुल मांग आय से अधिक हो जाती है; (C+I+G) अनुसूची 45° रेखा से ऊपर है। समकक्ष रूप से, इस बिंदु पर I+G, S+T से अधिक है, जैसा कि चित्र 6.4b में देखा जा सकता है। यह भी इस प्रकार है कि मांग उत्पादन से अधिक होने के कारण, वांछित निवेश वास्तविक निवेश से अधिक होगा जैसे Y_L पर (C+I+G>Y=C+Ir+G; इसलिए, I>Ir)। Y से नीचे ऐसे बिंदुओं पर एक **अनपेक्षित इन्वेंट्री की कमी** होगी और इसलिए उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति होगी।

इसके विपरीत, चित्र 6.4a और 6.4b में Y से ऊपर आय के स्तर पर, उत्पादन मांग से अधिक होगा (45° रेखा C+I+G अनुसूची से ऊपर है), और **अनपेक्षित इन्वेंट्री निवेश** हो रहा होगा (Y=C+Ir+G>C+I+G; इसलिए, Ir >I), और उत्पादन में गिरावट की प्रवृत्ति होगी। केवल Y पर ही उत्पादन कुल मांग के बराबर होता है; कोई अनपेक्षित इन्वेंट्री की कमी या संचय नहीं होता है और, परिणामस्वरूप, उत्पादन में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है।

संतुलन आय के लिए हमारे समीकरण (6.14) पर लौटते हुए, हम इस समीकरण को एक ऐसे रूप में फिर से लिख सकते हैं जो आय निर्धारण के कीन्स के दृष्टिकोण का सार देता है। संतुलन के लिए हमारी अभिव्यक्ति में दो भाग होते हैं:

$$\bar{Y} = \frac{1}{(1-b)} \times (a - bT + I + G)$$

$\bar{Y}$ = Autonomous Multiplier × (Autonomous Expenditures) … … … … (6.15)

पहला पद, 1/(1−b), को **स्वायत्त व्यय गुणक (autonomous expenditure multiplier)** कहा जाता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

$$b = 0.5: \quad \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{1-0.5} = \frac{1}{0.5} = 2$$

$$b = 0.8: \quad \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{1-0.8} = \frac{1}{0.2} = 5$$

$$b = 0.9: \quad \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{1-0.9} = \frac{1}{0.1} = 10$$

हम इस पद (term) को स्वायत्त व्यय गुणक कहते हैं क्योंकि संतुलन आय में इसके योगदान को प्राप्त करने के लिए स्वायत्त व्यय के प्रत्येक डॉलर को इस कारक से गुणा किया जाता है। अभिव्यक्ति में दूसरा पद **स्वायत्त व्ययों का स्तर** है। हमने पहले ही स्वायत्त व्ययों के दो तत्वों, निवेश (I) और सरकारी खर्च (G) पर चर्चा की है। पहले दो पदों (a और −bT) के लिए कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। ये पद उपभोग व्ययों के स्वायत्त घटक (a) और कुल मांग पर कर संग्रह के स्वायत्त प्रभाव (−bT) को मापते हैं, जो उपभोग के माध्यम से भी काम करता है। उपभोग, अधिकांश भाग के लिए, प्रेरित व्यय है, जैसा कि पहले समझाया गया है। हालांकि, दो पद (a और −bT) आय (Y) के दिए गए स्तर के लिए उपभोग की मात्रा को प्रभावित करते हैं। चित्र 6.4 के संदर्भ में, वे उपभोग फलन की ऊँचाई निर्धारित करते हैं। G और । की तरह, वे आय के दिए गए स्तर के लिए कुल मांग की मात्रा को प्रभावित करते हैं, बजाय इसके कि वे स्वयं सीधे आय द्वारा निर्धारित हों। इस प्रकार उन्हें कुल मांग को प्रभावित करने वाले स्वायत्त कारकों (autonomous factors affecting aggregate demand) के रूप में उचित रूप से शामिल किया गया है।

कीन्स का सिद्धांत अपने सरलतम रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है। **उपभोग आय का एक स्थिर फलन है**; अर्थात, MPC स्थिर है। **आय में परिवर्तन मुख्य रूप से कुल मांग के स्वायत्त घटकों में परिवर्तन से आते हैं**, विशेष रूप से अस्थिर निवेश घटक में परिवर्तन से। कुल मांग के एक स्वायत्त घटक में एक दिया गया परिवर्तन गुणक के कारण संतुलन आय में एक बड़ा परिवर्तन करता है, जिसके कारण हम बाद में समझाएंगे। समीकरण

(6.15) यह स्पष्ट करता है कि, अर्थव्यवस्था को स्थिर करने के लिए सरकारी नीतियों की अनुपस्थिति में, **निवेश की अस्थिरता के कारण आय अस्थिर होगी**। समीकरण (6.15) से यह भी देखा जा सकता है कि सरकारी खर्च (G) और करों (T) में उचित परिवर्तनों से सरकार निवेश में बदलाव के प्रभावों का प्रतिकार कर सकती है। G और T में उचित परिवर्तन कोष्ठकों में पदों (स्वायत्त व्यय) के योग को स्थिर रख सकते हैं, भले ही। पद में अवांछित परिवर्तन हों।

6.6 संतुलन आय में परिवर्तन (Change in Equilibrium Income)

हम यह जानना चाहते हैं कि अगर सिर्फ निवेश में बदलाव हो (बाकी सब चीज़ें जैसे की सरकार का खर्च, कर, उपभोग आदि स्थिर रहें), तो वह देश की कुल आय को कैसे और कितनी मात्रा में प्रभावित करेगा — और इसके लिए हम अर्थशास्त्र का गणितीय समीकरण (6.15) इस्तेमाल करेंगे।

$$\Delta \bar{Y} = \frac{1}{(1-b)} \times \Delta I \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6.16)$$

या

$$\frac{\Delta \bar{Y}}{\Delta I} = \frac{1}{(1-b)} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6.17)$$

जब निवेश (Investment) में परिवर्तन होता है, तो इसका प्रभाव केवल उसी राशि तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उससे कहीं अधिक होता है। यह अधिक प्रभाव एक प्रक्रिया के तहत होता है, जिसे **गुणक प्रक्रिया (Multiplier Process)** कहा जाता है। गुणक यह दर्शाता है कि स्वायत्त व्यय (जैसे कि निवेश) में एक इकाई की वृद्धि से कुल आय (Total Income) में कितनी वृद्धि होगी। यदि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) को 'b' माना जाए, तो आय में परिवर्तन 1/(1−b) गुना होता है। उदाहरण के लिए, यदि MPC = 0.8 हो, तो निवेश में प्रत्येक 1 इकाई वृद्धि आय में 5 इकाई की वृद्धि लाती है।

इस प्रक्रिया को समझने के लिए एक सुंदर समानता दी जाती है — **तालाब में फेंके गए पत्थर की लहरें**। जब आप एक पत्थर शांत तालाब में फेंकते हैं, तो वह पानी की सतह पर एक बिंदु को विचलित करता है और फिर चारों ओर लहरें उत्पन्न होती हैं। ठीक उसी प्रकार, निवेश में परिवर्तन भी एक प्रारंभिक "आघात" की तरह होता है, जो बाद में कई बार आय और व्यय के चक्र के रूप में फैलता है। मान लें कि निवेश में 100 इकाई की वृद्धि हुई है। इस निवेश से कुछ फर्मों को ज़्यादा मांग का अनुभव होता है, जिससे वे उत्पादन बढ़ाती हैं और उत्पादन

कारकों (मजदूरी, किराया, ब्याज, लाभ) को भुगतान करती हैं। इससे परिवारों की आय में वृद्धि होती है। जब परिवारों की आय बढ़ती है, तो वे उसका एक हिस्सा उपभोग में खर्च करते हैं। यदि MPC 0.8 है, तो वे 100 की आय में से 80 इकाई उपभोग करेंगे। यह 80 इकाई का उपभोग फिर से उत्पादकों के लिए आय बनता है, और यह प्रक्रिया दोहराई जाती है। दूसरी बार 80 की आय में से 64 इकाई का उपभोग होगा, फिर 51.2, और इसी तरह यह श्रेणी आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार, प्रारंभिक 100 इकाई के निवेश का प्रभाव गुणक के ज़रिए पूरे अर्थव्यवस्था में फैलता है और कुल आय में बड़ा परिवर्तन लाता है।

अब यह समझना भी ज़रूरी है कि आय में यह परिवर्तन ठीक 1/(1−b) के अनुसार क्यों होता है। यदि हम मान लें कि सरकार का खर्च (G) और कर नीति (T) स्थिर हैं, और केवल निवेश (I) में परिवर्तन हो रहा है, तो हम संतुलन आय में परिवर्तन को इस प्रकार लिख सकते हैं:

$$\Delta Y = \Delta I + \Delta C \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (6.18)$$

चूंकि उपभोग (C) स्वयं आय (Y) पर निर्भर करता है, और MPC = b है, इसलिए ΔC = bΔY होगा। समीकरण (6.18) में पदों को पुनर्व्यवस्थित करने पर, हमें प्राप्त होता है:

$$\Delta Y - \Delta C = \Delta I \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (6.19)$$

$$\Delta S = \Delta I \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (6.19)$$

समीकरण (6.19) भी संतुलन आय की स्थिति को व्यक्त करने के हमारे दूसरे तरीके से निकलता है:

$$S + T = I + G \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (6.5)$$

इस गणितीय प्रक्रिया के पीछे का अर्थ यह है कि जब निवेश बढ़ता है, तो आय भी बढ़ती है ताकि उस अतिरिक्त निवेश के बराबर अतिरिक्त बचत (Saving) उत्पन्न हो सके। चूंकि उपभोग का हिस्सा बढ़ता है, तो बचत भी बढ़ती है — और संतुलन की स्थिति तभी बनती है जब बचत = निवेश हो। इसे हम दूसरे समीकरण ΔS = ΔI या S + T = I + G के रूप में भी देख सकते हैं। जब T और G स्थिर हों, तो I में वृद्धि के लिए S को उसी मात्रा में बढ़ना होगा। इसका अर्थ यह है कि आय को इतनी मात्रा में बढ़ना होगा कि वह नई बचत को संभव बना सके।

इस प्रकार, हम यह समझते हैं कि निवेश में किसी भी परिवर्तन का प्रभाव सीधे और एक बार में नहीं होता, बल्कि उपभोग और आय के चक्र के माध्यम से यह लहरों की तरह फैलता है, जिससे आय में कई गुना अधिक वृद्धि होती है। यही गुणक सिद्धांत का सार है।

जब हम यह मानते हैं कि बचत में परिवर्तन (ΔS) सीमांत बचत प्रवृत्ति (MPS = 1 – b) और आय में परिवर्तन (ΔY) के गुणनफल के बराबर होता है, तो हमें समीकरण (6.19) से यह प्राप्त होता है:

$$(1-b)\Delta Y = \Delta I$$

$$\frac{\Delta \bar{Y}}{\Delta I} = \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{(1-MPC)} = \frac{1}{MPS} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6.20)$$

उदाहरण के लिए, यदि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC या b) 0.8 है, तो सीमांत बचत प्रवृत्ति (MPS = 1 – b) 0.2 होगी। इसका अर्थ है कि आय में प्रत्येक 1 डॉलर की वृद्धि से 0.20 डॉलर यानी 20 सेंट की नई बचत उत्पन्न होगी। अब अगर 1 डॉलर के निवेश को संतुलित करना है, तो 1 डॉलर की नई बचत होनी चाहिए, जिसके लिए आय में 5 डॉलर की वृद्धि आवश्यक होगी। इस स्थिति में गुणक (Multiplier) का मान 5 होगा।

Figure 6.5

Effect of an Increase in Autonomous Investment on Equilibrium Income

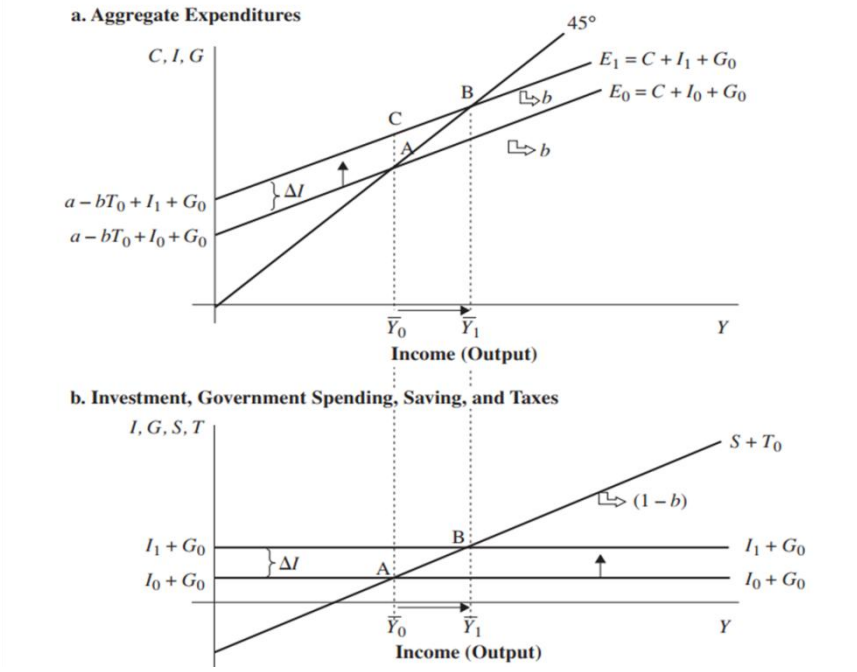

स्वायत्त निवेश में वृद्धि के प्रभाव को **चित्र 6.5** के माध्यम से समझाया जा सकता है। प्रारंभ में, जब निवेश I_0, सरकारी खर्च G_0 और कर T_0 के स्तर पर होते हैं, तो संतुलन आय Y_0 पर होती है। अब यदि निवेश को I_1 तक बढ़ा दिया जाए, तो कुल मांग (E) की रेखा $\Delta I = I_1 - I_0$ की मात्रा से ऊपर की ओर खिसक जाती है। E_0 (= C + I_0

+ G_0) से यह E_1 (= C + I_1 + G_0) तक पहुँच जाती है। इसी प्रकार, (I + G) रेखा भी उतनी ही राशि से ऊपर की ओर खिसकती है। नया संतुलन अब Y_1 पर स्थापित होता है, जहाँ आय उच्च कुल मांग के स्तर के बराबर होती है। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि आय में वृद्धि केवल निवेश के कारण नहीं होती, बल्कि उपभोग में प्रेरित वृद्धि (ΔC) भी होती है। साथ ही, नई संतुलन स्थिति में बचत भी ठीक निवेश के बराबर बढ़ती है (ΔS = ΔI), जो संतुलन बनाए रखती है।

गुणक की अवधारणा कीन्स के सिद्धांत की नींव है, क्योंकि यह दर्शाती है कि निवेश में परिवर्तन, विशेष रूप से व्यापारिक अपेक्षाओं में बदलाव से प्रेरित परिवर्तन, अर्थव्यवस्था में एक श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया को जन्म देता है जो उपभोग और आय दोनों को प्रभावित करता है। गुणक यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार एक क्षेत्र में उत्पन्न हुआ झटका धीरे-धीरे पूरे आर्थिक तंत्र में फैलता है। कीन्स का सिद्धांत यह भी बताता है कि स्वायत्त व्यय के अन्य घटक — जैसे सरकारी खर्च और कर — भी संतुलन आय को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभावों को भी हम उसी प्रकार से समझ सकते हैं, जैसे निवेश में बदलाव के प्रभाव को समझा गया था।

यदि हम सरकारी खर्च (G) में परिवर्तन पर विचार करें और मानें कि बाकी सभी स्वायत्त व्यय घटक स्थिर हैं, तो आय में परिवर्तन इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$\Delta\bar{Y} = \frac{1}{1-b} \times \Delta G \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6.21)$$

$$\frac{\Delta\bar{Y}}{\Delta G} = \frac{1}{1-b} \times$$

यह समीकरण (6.21) है, और इसका अर्थ है कि सरकारी खर्च में 1 डॉलर की वृद्धि, निवेश की तरह ही, कुल आय को उसी गुणक के अनुसार बढ़ाएगी। यानी, निवेश और सरकारी खर्च — दोनों ही स्वायत्त व्यय घटक हैं, जिनका गुणक प्रभाव एक जैसा होता है। गुणक प्रक्रिया — जिसमें आय में वृद्धि उपभोग में प्रेरित वृद्धि उत्पन्न करती है — सरकारी खर्च में वृद्धि के लिए भी निवेश जैसी ही है।

Figure 6.6

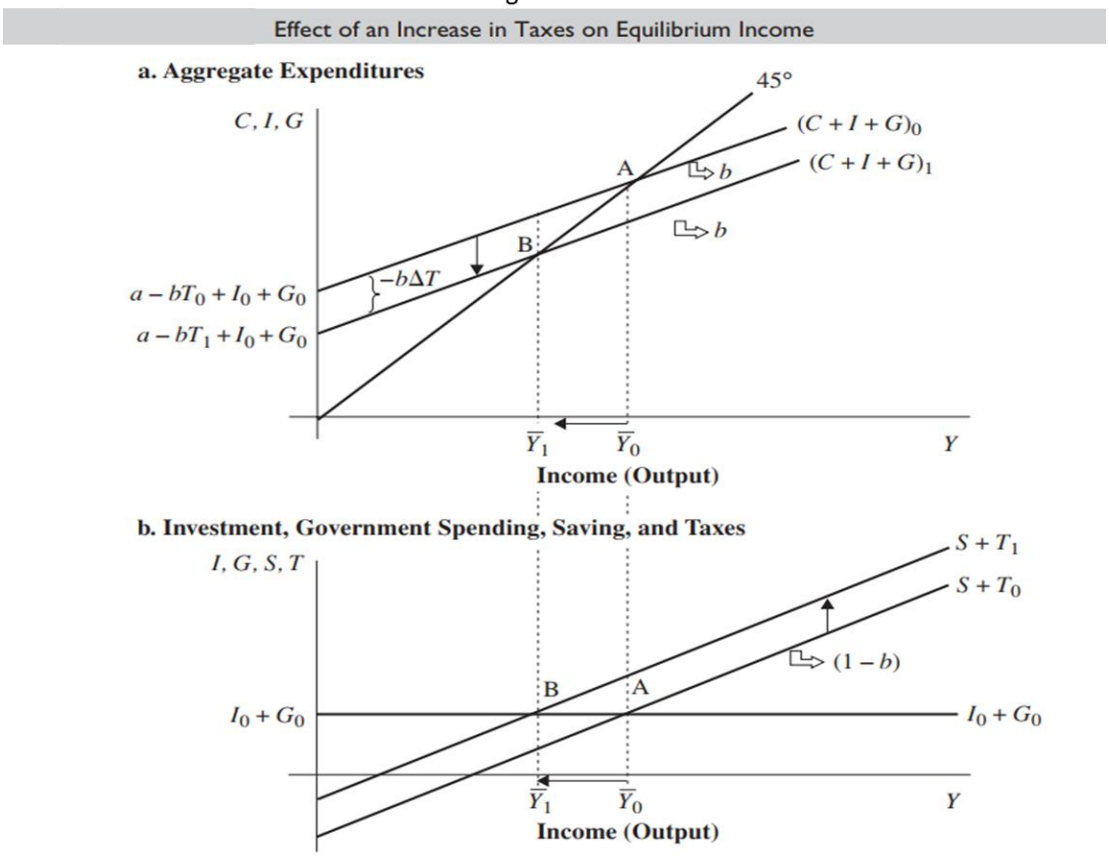

चित्र 6.5 के संदर्भ में, यदि हम भाग a देखें, तो सरकारी खर्च में ΔG की वृद्धि, व्यय अनुसूची को उसी राशि से ऊपर की ओर शिफ्ट कर देगी जैसी वृद्धि निवेश में होती है। इसी तरह, भाग b में, I + G अनुसूची $I_0 + G_0$ से $I_0 + G_1$ तक ऊपर शिफ्ट हो जाएगी। दोनों स्थितियों में, Y_0 से Y_1 तक की ΔY यानी आय में वृद्धि समान होती है।

अब यदि हम करों (Taxes) में परिवर्तन देखें, तो उनका प्रभाव कुल मांग पर विपरीत दिशा में होता है। जब करों में वृद्धि होती है, तो वह किसी भी दिए गए राष्ट्रीय आय स्तर Y पर प्रयोज्य आय (Disposable Income = Y − T) को घटा देती है। परिणामस्वरूप उपभोग में गिरावट आती है और कुल मांग अनुसूची नीचे की ओर शिफ्ट होती है। इस प्रभाव को **चित्र 6.6** में दर्शाया गया है।

मान लें कि कर T_0 से T_1 तक बढ़ते हैं (ΔT)। इस वृद्धि के कारण कुल मांग अनुसूची $(C + I + G)_0$ से $(C + I + G)_1$ तक नीचे की ओर खिसकती है। यह परिवर्तन उपभोग फलन में गिरावट को दर्शाता है, जो कर वृद्धि के कारण प्रयोज्य आय में कमी से उत्पन्न होता है। इसके परिणामस्वरूप संतुलन आय Y_0 से घटकर Y_1 पर आ जाती है।

यह ध्यान देना आवश्यक है कि कुल मांग अनुसूची **केवल –bΔT** मात्रा से ही नीचे की ओर खिसकती है, न कि पूरे ΔT से। इसका कारण यह है कि 1 डॉलर के कर वृद्धि से प्रयोज्य आय भले ही 1 डॉलर घटे, लेकिन उपभोग केवल b डॉलर घटता है (क्योंकि b ही MPC है)। शेष (1 – b) डॉलर की कमी बचत में गिरावट द्वारा समायोजित होती है। इस कारण से, करों में 1 डॉलर की वृद्धि कुल मांग में केवल b डॉलर की गिरावट लाती है, जबकि सरकारी खर्च या निवेश में 1 डॉलर की वृद्धि कुल मांग में पूरा 1 डॉलर जोड़ती है।

करों के मामले में, संतुलन आय में परिवर्तन इस समीकरण से ज्ञात किया जा सकता है:

$$\Delta\bar{Y} = \frac{1}{1-b} \times (-b)\Delta T \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (5.22)$$

$$\frac{\Delta\bar{Y}}{\Delta T} = \frac{-b}{1-b}$$

यह समीकरण (6.22) है, और यह दर्शाता है कि कर वृद्धि से आय में गिरावट होगी और वह गिरावट b/(1 – b) के अनुपात में होगी। उदाहरण के लिए, यदि b = 0.8 है, तो आय में गिरावट 0.8 / (1 – 0.8) = 4 गुना होगी।

सरकारी व्यय और कर गुणकों के बीच एक रोचक संबंध होता है। नीचे कुछ उदाहरण दिए गए हैं:

$$b = 0.5: \quad \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{1-0.5} = \frac{1}{0.5} = 2; \quad \frac{-b}{1-b} = \frac{-0.5}{1-0.5} = -1$$

$$b = 0.8: \quad \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{1-0.8} = \frac{1}{0.2} = 5; \quad \frac{-b}{1-b} = \frac{-0.8}{1-0.8} = -4$$

$$b = 0.9: \quad \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{1-0.9} = \frac{1}{0.1} = 10; \quad \frac{-b}{1-b} = \frac{-0.9}{1-0.9} = -9$$

इनसे यह पता चलता है कि **कर गुणक का निरपेक्ष मान हमेशा व्यय गुणक से 1 कम होता है।** इसका एक महत्वपूर्ण निहितार्थ यह है कि यदि सरकारी खर्च को करों में समान राशि की वृद्धि से वित्तपोषित किया जाए — जिसे **संतुलित बजट नीति (Balanced Budget Policy)** कहते हैं — तो कुल संतुलन आय में **ठीक 1 इकाई** की वृद्धि होगी।

$$\frac{\Delta\bar{Y}}{\Delta G} + \frac{\Delta\bar{Y}}{\Delta T} = \frac{1}{1-b} + \frac{-b}{1-b} = 1$$

इस परिणाम को **संतुलित-बजट गुणक (Balanced Budget Multiplier)** कहते हैं, और यह इस तथ्य को दर्शाता है कि कर परिवर्तन, व्यय परिवर्तन की तुलना में प्रति डॉलर संतुलन आय को कम प्रभावित करते हैं। जबकि यह सरल मॉडल में स्पष्ट होता है, लेकिन यह मूल विचार कि **करों का प्रभाव व्यय की तुलना में कमजोर होता है**, अधिक जटिल आर्थिक मॉडलों में भी आम तौर पर सही पाया गया है।

6.7 राजकोषीय स्थिरीकरण नीति (Fiscal Stabilization Policy)

संतुलन आय पर सरकारी खर्च और करों में बदलाव का गहरा असर पड़ता है। जब निवेश जैसे घटक अस्थिर होते हैं, तब सरकार राजकोषीय नीति के माध्यम से स्वायत्त व्यय के कुल योग को स्थिर रख सकती है और इस तरह संतुलन आय को भी स्थिर बना सकती है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए अर्थव्यवस्था संभावित उत्पादन स्तर Y_P पर संतुलन में है, जहाँ कुल मांग $C+I_0+G_0$ के बराबर है। अगर अचानक निवेश घटकर I_1 हो जाता है—जैसे व्यापार जगत की उम्मीदें कमजोर पड़ने पर होता है—तो कुल मांग घटकर $C+I_1+G_0$ हो जाती है और संतुलन आय Y_L तक गिर जाती है, जो Y_P से नीचे है। ऐसी स्थिति में सरकार यदि सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर G_1 कर दे, तो कुल मांग फिर से बढ़कर पुराने स्तर $C+I_1+G_1$ पर पहुँच सकती है और संतुलन आय Y_P पर बहाल हो जाती है। इसी तरह, करों में कटौती करके भी कुल मांग को बढ़ाया जा सकता है, लेकिन चूंकि कर गुणक (tax multiplier) खर्च के मुकाबले छोटा होता है, इसलिए उतनी ही आय बहाली के लिए अपेक्षाकृत अधिक कर कटौती करनी होगी।

Figure 6.7

An Example of Fiscal Stabilization Policy

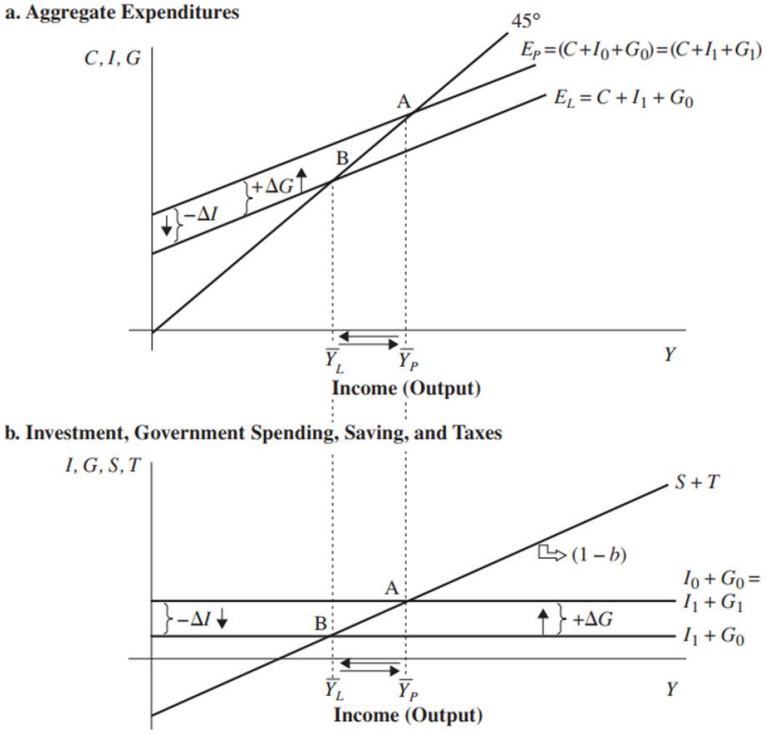

6.8 सरल कीन्सीयन मॉडल में निर्यात और आयात की भूमिका (The Role of Exports and Imports in the Simple Keynesian model)

हाल के वर्षों में देखा गया है कि अधिकांश देशों में आयात और निर्यात, दोनों का योगदान उनकी जीडीपी में बढ़ता जा रहा है। इसलिए, जब हम संतुलन आय की बात करते हैं, तो यह जरूरी हो जाता है कि हम निर्यात (X) और आयात (Z) को भी ध्यान में रखें। याद करें कि जीडीपी (Y) में चार प्रमुख घटक होते हैं: उपभोग (C), निवेश (I), सरकारी खर्च (G) और शुद्ध निर्यात (X−Z)। अतः खुली अर्थव्यवस्था में संतुलन आय की शर्त होगी:

$$\mathbf{Y = E = C + I + G + X - Z} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\mathbf{6.23})$$

इस समीकरण में निर्यात को जोड़ा गया है क्योंकि यह घरेलू उत्पादन की विदेशी मांग को दर्शाता है और कुल मांग का हिस्सा है। वहीं आयात को घटाया गया है क्योंकि उपभोग, निवेश और सरकारी खर्च में विदेशी वस्तुओं की माँग शामिल हो सकती है, जबकि वे घरेलू उत्पादन का हिस्सा नहीं होतीं।

उपभोग और आयात का निर्धारण

हम यह मानते हैं कि निवेश (I) और सरकारी खर्च (G) दोनों बहिर्जात (exogenous) हैं, यानी ये स्वतंत्र रूप से तय

होते हैं। उपभोग (C) को हम उपभोग फलन से दर्शाते हैं:

$$\mathbf{C = a + bY} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\mathbf{6.24})$$

जहाँ 'a' स्वायत्त उपभोग है और 'b' सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) है।

इसी तरह, आयात की माँग भी आय पर निर्भर करती है और इसमें एक स्वायत्त घटक होता है:

$$\mathbf{Z = u + vY} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\mathbf{6.25})$$

जहाँ u > 0 **और** 0 < v < 1

यहाँ 'u' आयात का स्वायत्त हिस्सा है और 'v' आयात की सीमांत प्रवृत्ति है — जैसे कि MPC के समान एक अवधारणा।

अब हम समीकरण (6.23) को इन सभी घटकों के साथ जोड़कर संतुलन आय निकाल सकते हैं:

$$\mathbf{Y = C + I + G + X - Z} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\mathbf{6.23})$$

$$\Rightarrow \mathbf{Y = a + bY + I + G + X - u - vY}$$

$$\Rightarrow \mathbf{Y - bY + vY = a + I + G + X - u}$$

$$\Rightarrow \mathbf{Y\ (1 - b + v) = a + I + G + X - u}$$

$$\mathbf{Y} = \frac{\mathbf{1}}{(\mathbf{1} - \boldsymbol{b} + \boldsymbol{v})} \times (\mathbf{a + I + G + X - u}) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\mathbf{6.26})$$

बंद बनाम खुली अर्थव्यवस्था

यदि हम तुलना करें बंद अर्थव्यवस्था से, जहाँ आय का समीकरण था:

$$\boldsymbol{Y} = \frac{\mathbf{1}}{(\mathbf{1} - \boldsymbol{b})} \times (\boldsymbol{a + I + G}) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (\mathbf{6.27})$$

तो हम पाएंगे कि आयात की सीमांत प्रवृत्ति (v) के जुड़ने से गुणक छोटा हो गया है। उदाहरण के लिए,

यदि **b = 0.8** और **v = 0.3**,

तो बंद अर्थव्यवस्था में गुणक होगा:

$$Multiplier\ in\ Closed\ Economy = \frac{1}{(1-b)} = \frac{1}{(1-0.8)} = 5$$

और खुली अर्थव्यवस्था में गुणक होगा:

$$Multiplier\ in\ Oppened\ Economy = \frac{1}{(1-b+v)} = \frac{1}{(1-0.8+0.3)} = 2$$

इससे साफ है कि जितनी अधिक खुली अर्थव्यवस्था होगी (यानी v बड़ा होगा), उतना ही छोटा होगा गुणक। इसका मतलब है कि जब सरकार व्यय या निवेश में कोई परिवर्तन करती है, तो उसका असर आय पर सीमित हो जाएगा क्योंकि उस खर्च का बड़ा हिस्सा विदेशी वस्तुओं पर चला जाता है।

गुणक की प्रक्रिया इस तरह काम करती है: सरकारी खर्च में वृद्धि से आय बढ़ती है, जिससे उपभोग बढ़ता है और इससे फिर आय बढ़ती है। लेकिन यदि अधिक उपभोग विदेशी वस्तुओं का हो, तो घरेलू उत्पादों की माँग में अपेक्षाकृत कम वृद्धि होगी और इस कारण आय में वृद्धि सीमित रह जाएगी। इसीलिए, आयात की सीमांत प्रवृत्ति (v) के बढ़ने से गुणक में गिरावट आती है।

स्वायत्त व्यय का स्तर और उसका प्रभाव: संतुलन आय के समीकरण (6.26) में दूसरी महत्वपूर्ण चीज है स्वायत्त व्यय का स्तर — इसमें 'a', 'I', 'G', 'X', और 'u' शामिल हैं। इनमें 'X' निर्यात और 'u' आयात का स्वायत्त हिस्सा हैं। ये ऐसे कारक हैं जो आय के स्तर पर निर्भर नहीं होते, लेकिन इनका परिवर्तन संतुलन आय को प्रभावित करता है।

यदि निर्यात में वृद्धि होती है, तो:

$$\frac{\Delta Y}{\Delta X} = \frac{1}{(1-b+v)} \dots\dots\dots\dots\dots\dots (6.28)$$

और यदि आयात के स्वायत्त भाग 'u' में वृद्धि होती है, तो:

$$\frac{\Delta Y}{\Delta u} = \frac{1}{(1-b+v)} \dots\dots\dots\dots\dots\dots (6.29)$$

इसका अर्थ है कि निर्यात बढ़ने से घरेलू उत्पादन की माँग बढ़ती है और संतुलन आय में वृद्धि होती है। वहीं, यदि लोग विदेशी वस्तुओं की ओर ज्यादा झुकते हैं (जैसे 1970 के दशक में अमेरिकी उपभोक्ता छोटी विदेशी कारें खरीदने लगे), तो घरेलू उत्पादन की माँग घटती है और संतुलन आय में गिरावट आती है।

अंत में, हम कह सकते हैं कि निर्यात में वृद्धि का प्रभाव विस्तारवादी होता है — यह अर्थव्यवस्था को बढ़ाता है,

जबकि आयात में स्वायत्त वृद्धि का प्रभाव संकुचनकारी होता है — यह घरेलू मांग को कम करता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि निर्यात अच्छा और आयात बुरा है। आयात का भी महत्त्व है क्योंकि यह वैश्विक दक्षता को बढ़ाता है। फिर भी, इन प्रभावों के कारण कई बार सरकारें निर्यात को बढ़ावा देने और आयात को सीमित करने की कोशिश करती हैं ताकि घरेलू आय को बढ़ाया जा सके।

6.9 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

6.9.1 सही विकल्प चुनिए

1: कीन्स के अनुसार समष्टि अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोज़गार का निर्धारण किस पर मुख्यतः निर्भर करता है?

A. कुल आपूर्ति B. मुद्रा की मात्रा C. कुल प्रभावी मांग D. ब्याज दर

2: कीन्सीय प्रणाली में संतुलन आय प्राप्त होती है जब:

A. कुल आपूर्ति, कुल बचत के बराबर होती है B. निवेश, उपभोग के बराबर होता है

C. कुल मांग, कुल आपूर्ति के बराबर होती है D. सरकारी व्यय, करों के बराबर होता है

3: निम्नलिखित में से कौन-सा कुल मांग का घटक नहीं है?

A. उपभोग व्यय B. निवेश व्यय C. कर राजस्व D. सरकारी व्यय

4: कीन्सीय मॉडल के अनुसार मंदी की स्थिति में सरकार को क्या करना चाहिए?

A. सरकारी व्यय में कटौती B. निर्यात घटाना C. सरकारी व्यय बढ़ाना D. मुद्रा आपूर्ति घटाना

5: खुली अर्थव्यवस्था के सरल कीन्सीयन मॉडल में कुल मांग के घटकों में कौन-से घटक जुड़ते हैं?

A. केवल उपभोग और निवेश B. केवल सरकारी व्यय C. निर्यात और आयात D. केवल कर और सब्सिडी

6.9.2 सही या गलत बताइए (True or False)

1. कीन्स के अनुसार बेरोज़गारी की मुख्य वजह कुल मांग की कमी होती है।

2. सरल कीन्सीयन मॉडल में यह माना जाता है कि कीमतें और मज़दूरी पूरी तरह लचीली होती हैं।

3. कीन्सीय मॉडल में संतुलन आय तब प्राप्त होती है जब कुल बचत, कुल निवेश के बराबर होती है।

4. सरकारी व्यय कुल मांग को प्रभावित नहीं करता।

5. खुली अर्थव्यवस्था में निर्यात कुल मांग को बढ़ाता है जबकि आयात उसे घटाता है।

6.10 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने कीन्सीय समष्टि अर्थशास्त्र की मूल अवधारणाओं का अध्ययन किया, जो शास्त्रीय दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। कीन्स का यह मानना था कि वास्तविक दुनिया में बेरोज़गारी की समस्या का मुख्य कारण कुल प्रभावी मांग की कमी होती है, और अर्थव्यवस्था अपने आप पूर्ण रोजगार की स्थिति में नहीं पहुँचती।

सरल कीन्सीयन मॉडल में हमने यह समझा कि संतुलन आय का निर्धारण कुल मांग और कुल आपूर्ति के बीच संबंध से होता है। यदि कुल मांग घट जाती है, तो आय और रोजगार का स्तर भी घटता है। कुल मांग के मुख्य घटक — उपभोग, निवेश, सरकारी व्यय तथा निर्यात एवं आयात — सभी का अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव होता है।

इस मॉडल में यह भी स्पष्ट किया गया कि सरकार किस प्रकार राजकोषीय नीति के माध्यम से मंदी या बेरोज़गारी की स्थिति में कुल मांग को बढ़ा सकती है। सरकारी व्यय में वृद्धि या करों में कटौती से कुल मांग को प्रोत्साहन मिलता है, जिससे संतुलन आय और रोजगार में वृद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त, हमने निर्यात और आयात की भूमिका को भी समझा, जो खुली अर्थव्यवस्था में संतुलन आय के निर्धारण में महत्वपूर्ण होते हैं। आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप कुल मांग के विभिन्न घटक कैसे प्रभावित होते हैं, यह भी अध्याय का एक प्रमुख पहलू था।

अंततः, कीन्सीय प्रणाली हमें यह सिखाती है कि बाजार तंत्र के भरोसे रहने की बजाय सक्रिय सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है, विशेषकर तब जब अर्थव्यवस्था मंदी और बेरोज़गारी का सामना कर रही हो।

6.11 सूचक शब्द (Keywords)

- **कुल प्रभावी मांग (Aggregate Effective Demand):**
  यह कुल मांग का वह स्तर है जो किसी अर्थव्यवस्था में वर्तमान मूल्य स्तर पर वस्तुओं और सेवाओं की वास्तविक मांग को दर्शाता है। कीन्स के अनुसार, रोजगार और उत्पादन का निर्धारण इसी पर निर्भर करता है।

- **सरल कीन्सीयन मॉडल (Simple Keynesian Model):**
  यह एक समष्टि आर्थिक मॉडल है जो यह दर्शाता है कि आय और उत्पादन का संतुलन कुल मांग द्वारा निर्धारित होता है, विशेष रूप से अल्पकाल में जब कीमतें स्थिर मानी जाती हैं।

- **संतुलन आय (Equilibrium Income):**
  वह आय का स्तर जहाँ कुल मांग (AD) कुल आपूर्ति (AS) के बराबर होती है। इस बिंदु पर अर्थव्यवस्था अस्थायी संतुलन में होती है।

- **उपभोग व्यय (Consumption Expenditure):**
  यह वह व्यय है जो परिवार अपने आय का उपयोग करके वस्तुओं और सेवाओं की खरीद पर करते हैं। यह कुल मांग का एक प्रमुख घटक होता है।

- **निवेश व्यय (Investment Expenditure):**
  यह वह व्यय है जो फर्में पूंजीगत वस्तुओं जैसे मशीन, भवन आदि की खरीद पर करती हैं। यह भी कुल मांग का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है और भविष्य की उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है।

- **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy):**
  यह सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली वह नीति है जिसके अंतर्गत वह कर और सार्वजनिक व्यय को नियंत्रित करके कुल मांग को प्रभावित करती है, ताकि बेरोज़गारी और मुद्रास्फीति जैसी समस्याओं से निपटा जा सके।

6.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions-SAQs)

1. सरल कीन्सीयन मॉडल में संतुलन आय का निर्धारण किस प्रकार होता है**?** समझाइए। *(How is equilibrium income determined in the simple Keynesian model? Explain.)*
2. कुल प्रभावी मांग की अवधारणा का अर्थ स्पष्ट कीजिए और बताइए कि यह अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोज़गार को कैसे प्रभावित करती है। *(Explain the concept of aggregate effective demand and how it affects output and employment in the economy.)*
3. कीन्सीय दृष्टिकोण में बेरोज़गारी के कारणों की विवेचना कीजिए। *(Discuss the causes of unemployment according to the Keynesian perspective.)*

4. कुल मांग के विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए। इनमें से कौन-सा घटक सबसे अधिक परिवर्तनशील होता है**?** *(Describe the components of aggregate demand. Which among them is the most volatile?)*
5. राजकोषीय नीति की भूमिका कीन्सीय मॉडल में क्या है**?** किसी उपयुक्त उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए। *(What is the role of fiscal policy in the Keynesian model? Explain with a suitable example.)*
6. खुली अर्थव्यवस्था में निर्यात और आयात का संतुलन आय पर क्या प्रभाव पड़ता है**?** समझाइए। *(How do exports and imports affect equilibrium income in an open economy? Explain.)*
7. क्या आपको लगता है कि कीन्सीय मॉडल आधुनिक अर्थव्यवस्था की समस्याओं को पूरी तरह समझा सकता है**?** अपने उत्तर को तर्क सहित प्रस्तुत कीजिए। *(Do you think the Keynesian model adequately explains the problems of a modern economy? Justify your answer.)*

6.13 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर दें (Answers to Check Your Progress)

6.9.1 => सही उत्तर: 1. C. कुल प्रभावी मांग, 2. C. कुल मांग, कुल आपूर्ति के बराबर होती है, 3. C. कर राजस्व, 4. C. सरकारी व्यय बढ़ाना, 5. C. निर्यात और आयात।

6.9.2=> **सही उत्तर**: 1. **सही**, 2. **गलत**, 3. **सही**, 4. **गलत**, 5. **सही ।**

6.14 संदर्भ ग्रंथ **/** निर्देशित पुस्तकें **(References / Suggested Readings)**

1. Abel, Andrew B., Ben S. Bernanke & Dean Croushore – Macroeconomics (8th Edition), Pearson Education.
2. Ackley, G. – *Macroeconomics: Theory and Policy*, Macmillan Publishing
3. Dornbusch, R., Fischer, S. and Startz, R. – *Macroeconomics*, McGraw Hill
4. Branson, W. A. – *Macroeconomic Theory and Policy*, Harper & Row
5. Jhingan, M.L. – *Samasti Arthashastra (समष्टि अर्थशास्त्र)*, Vrinda Publications, Delhi

6. Ahuja, H.L. – *Modern Economics*, S. Chand & Co., New Delhi

7. Froyen, Richard T. – *Macroeconomics: Theories and Policies*, Pearson Education.

विषय: अर्थशास्त्र (समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत I)	
विषय क्रमांक: बीए BECO-301	लेखक: डॉ. सोमनाथ परूथी
अध्याय: 8	वेट्टर:
बैंकिंग: वाणिज्यिक बैंकों के कार्य एवं साख सृजन की प्रक्रिया; कीन्स का तरलता वरीयता सिद्धांत	

अध्याय की संरचना (Structure of the Chapter)

8.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 **कीन्सीयन प्रणाली में मुद्रा** (Money in the Keynesian System)

8.2.1 **ब्याज दर और कुल मांग पर उसका प्रभाव** (Interest Rate and Its Effect on Aggregate Demand)
8.2.2 ब्याज दर का कीन्सीयन सिद्धांत **(Keynesian Theory of Interest Rate)**

8.2.3 मुद्रा मांग का कीन्सीयन सिद्धांत (Keynesian Theory of Demand for Money)

8.2.4 **मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि के प्रभाव** (Effects of an Increase in the Money Supply)

8.3.1 **अर्थव्यवस्था में वाणिज्यिक बैंकों का महत्व** (Importance of Commercial Banks in the Economy)

8.3.2 **वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख निर्माण की प्रक्रिया** (Process of Credit Creation by Commercial Banks)

8.3.3 **साख निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक** (Factors Affecting Credit Creation)

8.3.4 **साख निर्माण की सीमाएँ** (Limitations of Credit Creation)

8.4 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

8.5 सारांश **(Summary)**

8.6 सूचक शब्द **(Keywords)**

8.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न **(Self Assessment Questions-SAQs)**

8.8 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

8.9 **संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें (References / Suggested Readings)**

8.0 अधिगम के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी निम्नलिखित बिंदुओं को समझने और विश्लेषण करने में सक्षम होंगे:

- कीन्सीयन प्रणाली में मुद्रा की भूमिका और उसकी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव को समझना।
- यह विश्लेषण करना कि ब्याज दर किस प्रकार कुल मांग को प्रभावित करती है।
- कीन्स के ब्याज दर सिद्धांत को समझना और उसकी पारंपरिक अवधारणाओं से तुलना करना।
- मुद्रा की मांग के तीन प्रमुख उद्देश्यों — लेनदेन, सावधानी, और सट्टा — को विस्तार से समझना।
- मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि का समष्टि आर्थिक चर जैसे ब्याज दर, निवेश और उत्पादन पर प्रभाव जानना।
- वाणिज्यिक बैंकों के प्राथमिक, सहायक और सामान्य उपयोगिता कार्यों को स्पष्ट करना।
- अर्थव्यवस्था में वाणिज्यिक बैंकों के महत्व को समझना और उनका समष्टि आर्थिक योगदान पहचानना।
- साख निर्माण की प्रक्रिया को समझना तथा उसे प्रभावित करने वाले कारकों और सीमाओं का विश्लेषण करना।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में हमने मुद्रा की परिभाषा, प्रकार, कार्य तथा मात्रा सिद्धांतों का विस्तृत अध्ययन किया। हमने यह जाना कि मुद्रा आधुनिक अर्थव्यवस्था की मूलभूत इकाई है, जो न केवल विनिमय का माध्यम है, बल्कि मूल्य मापन, संचय और भुगतान की भूमिका भी निभाती है। साथ ही, फिशर और कैम्ब्रिज के माध्यम से हमने समझा कि मुद्रा की आपूर्ति किस प्रकार मूल्य स्तर को प्रभावित कर सकती है।

किन्तु मुद्रा केवल मूल्य स्तर तक सीमित प्रभाव नहीं डालती — यह समग्र मांग, ब्याज दर, निवेश, और उत्पादन को भी गहराई से प्रभावित करती है। कीन्सीय दृष्टिकोण में मुद्रा का यह व्यापक प्रभाव प्रमुखता से उभर कर सामने आता है।

इस अध्याय में हम कीन्स की मौद्रिक प्रणाली को विस्तार से समझेंगे, जिसमें ब्याज दर की भूमिका, मुद्रा की मांग के उद्देश्य (लेनदेन, सावधानी, और सट्टा), तथा मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि के प्रभावों का विश्लेषण किया जाएगा। इसके साथ ही, हम वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका, उनके कार्यों, साख निर्माण की प्रक्रिया, तथा उस पर प्रभाव डालने वाले कारकों और सीमाओं का भी अध्ययन करेंगे।

इस प्रकार, यह अध्याय हमें यह समझने में सहायता करेगा कि मुद्रा केवल एक निष्क्रिय माध्यम नहीं है, बल्कि यह एक सक्रिय घटक है जो पूरे आर्थिक ढाँचे को प्रभावित करता है — विशेषकर जब हम कीन्सीय प्रणाली के संदर्भ में इसे देखते हैं।

8.2 कीन्सीयन प्रणाली में मुद्रा (Money in the Keynesian System)

कीन्स के मुद्रा सिद्धांत का मूल विचार यह है कि मुद्रा, ब्याज दर के माध्यम से आय को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, जब मुद्रा की आपूर्ति बढ़ती है, तो इससे ब्याज दरों में गिरावट आती है, और कम ब्याज दरें कुल मांग और आय को बढ़ावा देती हैं। इस पूरी प्रक्रिया को समझने के लिए, हमें दो महत्वपूर्ण कड़ियों का विश्लेषण करना होता है: पहली कड़ी है — मुद्रा आपूर्ति और ब्याज दर के बीच संबंध; और दूसरी कड़ी — ब्याज दर का कुल मांग पर प्रभाव। इस अनुभाग में हम दूसरी कड़ी से शुरुआत करते हैं।

8.2.1 ब्याज दर और कुल मांग पर उसका प्रभाव (Interest Rate and Its Effect on Aggregate Demand)

हम पहले पढ़ चुके हैं कि व्यापारिक निवेश के निर्णय मुख्य रूप से ब्याज दर पर निर्भर करते हैं। आसान शब्दों में कहें तो कोई भी निवेश तभी किया जाता है जब उससे मिलने वाला अनुमानित लाभ उस परियोजना में लगे जोखिम और पूंजी लागत (ब्याज दर) को कवर कर सके। यदि ब्याज दर ज्यादा होती है, यानी उधार लेना महंगा हो जाता है, तो कम निवेश परियोजनाएं लाभकारी साबित होती हैं, और निवेश में गिरावट आती है।

लेकिन कुल मांग पर असर केवल व्यापारिक निवेश तक ही सीमित नहीं है। इसके अन्य घटक भी ब्याज दर से प्रभावित होते हैं। पहला है **आवासीय निर्माण में निवेश**। यह राष्ट्रीय आय में निवेश के रूप में गिना जाता है, लेकिन

इसका ब्याज दर से संबंध थोड़ा अलग होता है। घर बनाने वाले बिल्डर अक्सर निर्माण के लिए अल्पकालिक ऋण लेते हैं। यदि ब्याज दर बढ़ जाती है, तो निर्माण लागत भी बढ़ जाती है और इससे आवास निर्माण धीमा पड़ जाता है।

इसके साथ ही, **घर खरीदने वालों की मांग** भी ब्याज दर से प्रभावित होती है। अधिकतर लोग घर खरीदने के लिए दीर्घकालिक बंधक (mortgage) ऋण लेते हैं। अगर ब्याज दरें बढ़ती हैं, तो बंधक ऋण महंगा हो जाता है, जिससे घर खरीदने की क्षमता घट जाती है और नए घरों की मांग भी कम हो जाती है।

एक और महत्वपूर्ण घटक है **उपभोक्ताओं द्वारा टिकाऊ वस्तुओं की खरीद** — जैसे कार, फ्रिज, कंप्यूटर, आदि। तकनीकी रूप से यह निवेश नहीं कहलाता, लेकिन व्यवहार में यह एक प्रकार का व्यक्तिगत निवेश होता है। अक्सर ऐसी वस्तुएं उधार लेकर खरीदी जाती हैं। जब ब्याज दर बढ़ती है, तो उपभोक्ताओं के लिए उधार महंगा हो जाता है और इस तरह की खरीदी में गिरावट आती है, जिससे कुल मांग घट जाती है।

राज्य और स्थानीय सरकारों द्वारा किया गया पूंजीगत व्यय भी ब्याज दर से प्रभावित हो सकता है। ये सरकारें अक्सर अपने निवेश खर्च को पूरा करने के लिए बांड जारी करती हैं। अगर ब्याज दरें ज्यादा हों, तो उनके लिए पूंजी जुटाना महंगा हो जाता है और वे अपनी कुछ परियोजनाओं को टाल सकती हैं। हालांकि यह प्रभाव हमेशा स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि सरकारी निर्णय अन्य राजनीतिक और सामाजिक कारकों पर भी निर्भर करते हैं।

अब **चित्र 8.1** की मदद से हम देख सकते हैं कि ब्याज दर में गिरावट कैसे कुल मांग और संतुलन आय को प्रभावित करती है। मान लीजिए, अर्थव्यवस्था शुरुआत में Y_0 के स्तर पर संतुलन में है, जहाँ कुल मांग $E_0 = C + I_0 + G_0$ है, और यह ब्याज दर r_0 के साथ संतुलित है। अब यदि ब्याज दर घटकर r_1 हो जाती है, तो निवेश I_0 से बढ़कर I_1 हो जाता है, जिससे कुल मांग वक्र बढ़कर $E_1 = C + I_1 + G_0$ हो जाता है और संतुलन आय Y_0 से बढ़कर Y_1 हो जाती है। यह पूरा परिवर्तन चार घटकों के ज़रिए आया — व्यावसायिक निवेश, आवासीय निर्माण, टिकाऊ वस्तुओं पर उपभोक्ता व्यय, और सरकारी निवेश व्यय।

संतुलन आय में यह वृद्धि ($Y_1 - Y_0$) इस बात पर निर्भर करती है कि ब्याज दर में गिरावट से कुल मांग में कितना बदलाव हुआ। यदि कुल मांग के घटक ब्याज दरों के प्रति अधिक संवेदनशील हों, तो मांग में बड़ा बदलाव होगा और इससे संतुलन आय पर अधिक प्रभाव पड़ेगा। इसलिए मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि कुल मांग कितनी "ब्याज संवेदनशील" है।

चित्र 8.1a में यह दिखाया गया है कि निवेश और ब्याज दर के बीच एक नकारात्मक संबंध होता है। जब ब्याज

दर r_0 होती है, तब निवेश का स्तर I_0 होता है (बिंदु A)। लेकिन यदि ब्याज दर घटकर r_1 हो जाए, तो निवेश बढ़कर I_1 हो जाता है (बिंदु B)।

चित्र 8.1b में दिखाया गया है कि जैसे ही निवेश बढ़ता है, कुल व्यय वक्र ऊपर की ओर खिसक जाता है — संतुलन बिंदु A से B की ओर चला जाता है और इससे संतुलन आय Y_0 से बढ़कर Y_1 हो जाती है।

Figure 8.1

Effect of a Decrease in the Interest Rate on Investment and Equilibrium Income

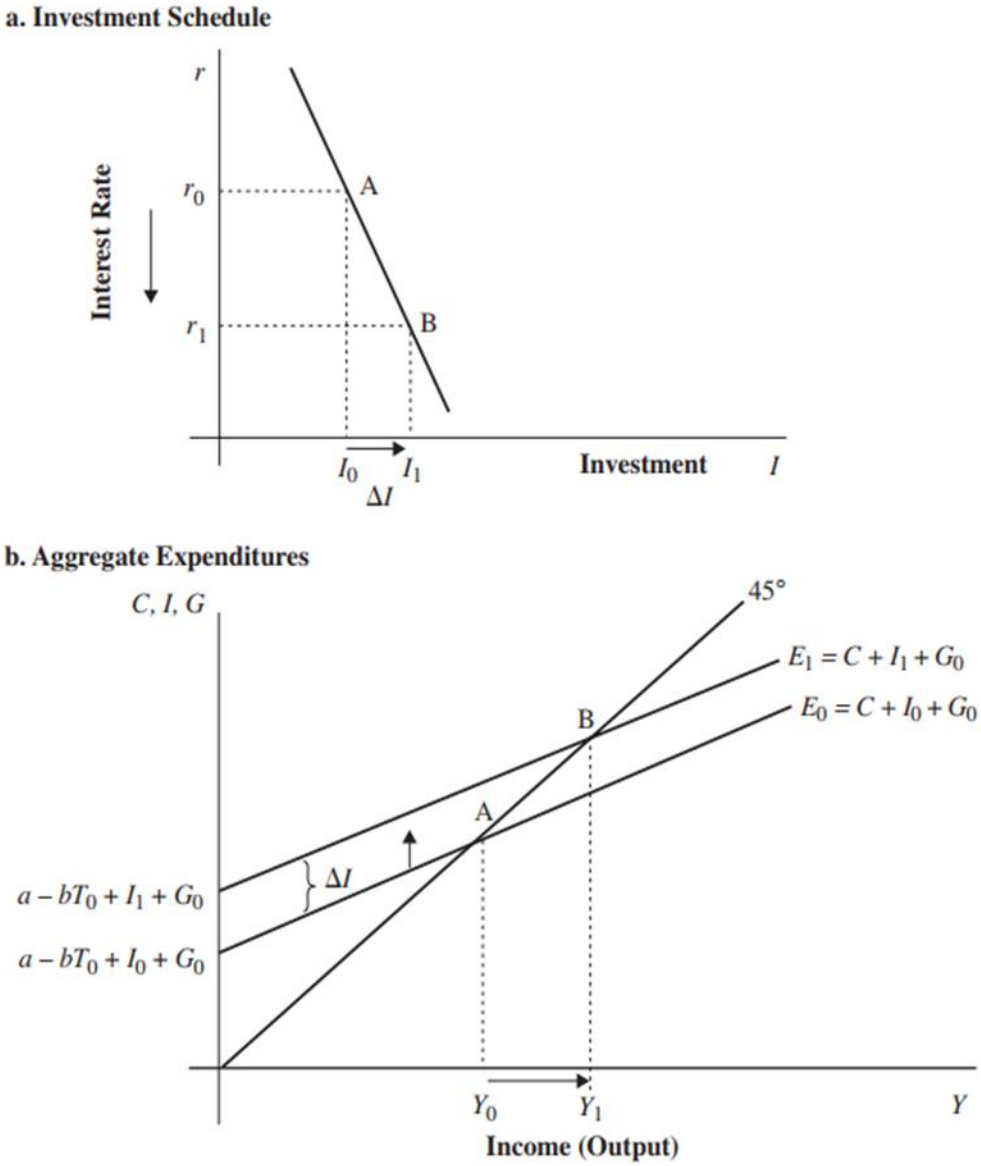

हालांकि हमारे मॉडल में हम निवेश (I) को ही आमतौर पर ब्याज दर से जुड़ा मानते हैं, लेकिन जैसा कि इस

खंड में बताया गया, वास्तव में कुल मांग के कई और घटक ब्याज दरों से प्रभावित होते हैं। इसलिए यदि हम मौद्रिक नीति के असर को पूरी तरह समझना चाहते हैं, तो हमें "निवेश" को व्यापक रूप से समझना होगा — जिसमें उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं, आवासीय निर्माण, और कुछ सरकारी व्यय भी शामिल हों।

8.2.2 ब्याज दर का कीन्सीयन सिद्धांत (Keynesian Theory of Interest Rate)

अब हम उस महत्वपूर्ण संबंध की चर्चा करते हैं जो **मुद्रा की मात्रा (Money Supply)** और **ब्याज दर (Interest Rate)** के बीच होता है। कीन्स का मानना था कि मुद्रा की मात्रा अर्थव्यवस्था में ब्याज दर तय करने में केंद्रीय भूमिका निभाती है। उन्होंने इसे समझाने के लिए एक व्यवस्थित ढांचा प्रस्तुत किया।

मुद्रा और बांड: दो प्रकार की परिसंपत्तियां

कीन्स ने एक सरल परिकल्पना से शुरुआत की — कि वित्तीय परिसंपत्तियों को दो भागों में बांटा जा सकता है:

1. **मुद्रा (Money)**
2. **गैर-मुद्रा परिसंपत्तियां**, जिन्हें उन्होंने सामान्य रूप से **बांड (Bonds)** कहा।

उनके लिए यह अंतर बहुत मायने रखता था। कीन्स ने माना कि मुद्रा परिसंपत्तियां **अत्यंत तरल और अल्पकालिक** होती हैं — मतलब इन्हें तुरंत बिना किसी मूल्य हानि के खर्च या विनिमय किया जा सकता है। इसके विपरीत, बांड **कम तरल और दीर्घकालिक** परिसंपत्तियां होती हैं, जिनमें जोखिम होता है क्योंकि इनकी कीमतें समय के साथ बदलती रहती हैं। उन्होंने इसी विचार को **तरलता वरीयता (Liquidity Preference)** कहा — यानी लोग अपनी परिसंपत्तियों को अधिक तरल रूप में रखना पसंद करते हैं।

तरलता, किसी परिसंपत्ति की वह विशेषता होती है, जो यह दर्शाती है कि उसे बिना मूल्य हानि के कितनी जल्दी नकदी में बदला जा सकता है। कीन्स के मॉडल में, "मुद्रा" को संकीर्ण अर्थ में M1 कहा गया — जिसमें नकदी और वे बैंक खाते शामिल हैं जिनसे व्यक्ति चेक लिख सकता है। दूसरी ओर, "बांड" में लंबी अवधि के सरकारी बॉन्ड, कॉर्पोरेट इक्विटी (स्टॉक) और अन्य वित्तीय संपत्तियां आती हैं जो ब्याज प्रदान करती हैं लेकिन कम तरल होती हैं।

ब्याज और परिसंपत्तियों की प्राथमिकता:

कीन्स के अनुसार, लोग अपनी संपत्ति को इन दोनों रूपों में विभाजित करते हैं — कुछ हिस्सा मुद्रा के रूप में और बाकी बांड के रूप में। मान लीजिए किसी व्यक्ति की कुल संपत्ति $50,000 है। अगर वह $10,000 नकदी में रखता

है, तो बाकी $40,000 वह बांड में रखेगा। यह परिसंपत्ति विभाजन एक "पोर्टफोलियो निर्णय" होता है, और यह तय करता है कि ब्याज दरों में क्या संतुलन बनेगा।

इस संदर्भ में, संतुलन ब्याज दर वह दर होती है जिस पर लोग मुद्रा और बांड के बीच ऐसा विभाजन करते हैं कि वे अपने दोनों प्रकार के परिसंपत्तियों से संतुष्ट होते हैं। यदि किसी स्थिति में लोगों को लगता है कि उनके पास पर्याप्त नकदी नहीं है, तो वे बांड बेचकर नकदी रखना चाहेंगे। इससे बांड की मांग घटेगी और ब्याज दर बढ़ेगी। इसके विपरीत, यदि लोग अधिक नकदी रखते हैं और उन्हें लगता है कि बांड खरीदकर ब्याज कमाना बेहतर है, तो वे बांड खरीदेंगे, जिससे ब्याज दर घटेगी।

इसलिए, हम कह सकते हैं कि ब्याज दर की संतुलन स्थिति को **दो दृष्टिकोणों** से समझा जा सकता है:

1. **बांड की मांग और आपूर्ति के संतुलन** के रूप में।
2. **मुद्रा की मांग और आपूर्ति के संतुलन** के रूप में।

दोनों दृष्टिकोण एक-दूसरे के पूरक हैं, लेकिन कीन्स ने दूसरा दृष्टिकोण अपनाया क्योंकि वे यह दिखाना चाहते थे कि ब्याज दरें **मुद्रा बाजार** में असंतुलन के जवाब में कैसे तय होती हैं।

चित्र 8.2 में यह दिखाया गया है कि मुद्रा की आपूर्ति को केंद्रीय बैंक द्वारा एक निश्चित स्तर पर तय किया जाता है — इसे M_0 कहा गया है। इस तय आपूर्ति के मुकाबले, मुद्रा की मांग एक वक्र (Md) द्वारा दर्शाई गई है, जो ब्याज दर के अनुसार घटती-बढ़ती है।

Figure 8.2

Determination of the Equilibrium Interest Rate

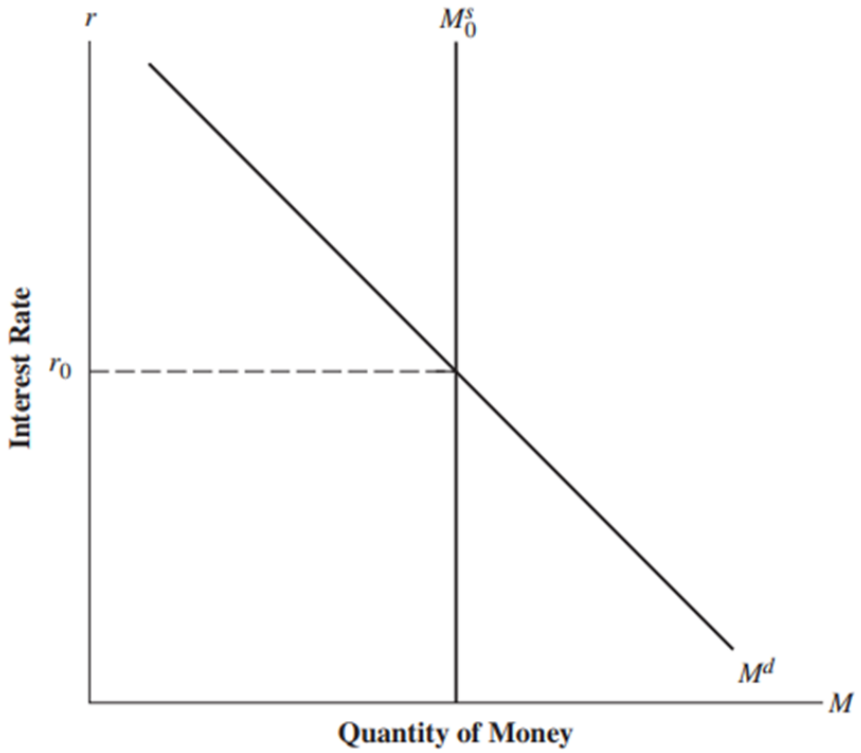

जहां यह मुद्रा मांग वक्र, मुद्रा की स्थिर आपूर्ति से मिलता है, वहीं पर संतुलन ब्याज दर (r_0) तय होती है। इसका अर्थ है कि उस ब्याज दर पर लोग जितनी नकदी रखना चाहते हैं, वह ठीक उतनी ही है जितनी बाजार में उपलब्ध है — न कम, न ज्यादा।

मुद्रा की मांग को प्रभावित करने वाले कारक: अब हम इस ओर बढ़ते हैं कि **मुद्रा की मांग को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्व** क्या हैं। कीन्स का मानना था कि यह मांग कई कारकों से तय होती है — जैसे कि लोगों की **आय का स्तर**, **लेन-देन की जरूरतें**, **भविष्य की अनिश्चितताएं**, और **ब्याज दरें**। जैसे-जैसे आय बढ़ती है या लेन-देन की गतिविधियां अधिक होती हैं, लोग नकदी के रूप में ज्यादा संपत्ति रखना चाहते हैं।

दूसरी ओर, यदि ब्याज दरें बहुत अधिक हैं, तो लोग नकदी की बजाय बांड रखना पसंद करेंगे क्योंकि बांड पर ब्याज मिलता है और नकदी पर नहीं।

यह पूरी चर्चा इस विचार पर केंद्रित है कि ब्याज दरें केवल बांड बाजार में मांग-आपूर्ति से नहीं, बल्कि इस बात से भी तय होती हैं कि लोग अपने धन को नकदी और अन्य परिसंपत्तियों के बीच कैसे विभाजित करते हैं। यही कीन्स का मौलिक योगदान था — **ब्याज दर निर्धारण को "तरलता वरीयता" सिद्धांत** से जोड़ना।

8.2.3 मुद्रा मांग का कीन्सीयन सिद्धांत (Keynesian Theory of Demand for Money)

जॉन मेनार्ड कीन्स ने मुद्रा रखने के तीन मुख्य उद्देश्यों को पहचाना और उनके आधार पर मुद्रा की मांग का विश्लेषण प्रस्तुत किया। ये उद्देश्य हैं: लेनदेन का उद्देश्य, सावधानी का उद्देश्य और सट्टा उद्देश्य। प्रत्येक उद्देश्य के पीछे अलग-अलग प्रेरणाएँ होती हैं, जो यह निर्धारित करती हैं कि व्यक्ति या फर्में कितनी मुद्रा अपने पास रखेंगी।

1. लेनदेन उद्देश्य के लिए मुद्रा की मांग (Demand for Money for Transaction Motive)

मुद्रा की सबसे बुनियादी मांग हमारी रोज़मर्रा की ज़रूरतों से जुड़ी होती है — जैसे सामान खरीदना, सेवाओं के बदले भुगतान करना आदि। इस उद्देश्य से हम जो मुद्रा अपने पास रखते हैं, उसे **लेनदेन की मांग (Transaction Demand)** कहते हैं। चूंकि किसी भी व्यक्ति को अपनी आय प्राप्त होने और खर्च करने के बीच एक समयांतराल होता है, इसलिए इस अंतर को भरने के लिए लोग कुछ राशि अपने पास नकद रूप में रखते हैं। उदाहरण के लिए, अगर किसी को महीने की शुरुआत में वेतन मिलता है, लेकिन खर्च पूरे महीने चलता है, तो उन्हें बीच के समय के लिए नकद की जरूरत होती है।

इसका सीधा मतलब है कि जिसकी **आय अधिक होती है**, उसे ज़्यादा लेनदेन करने होते हैं — यानी उसे ज़्यादा मुद्रा की जरूरत पड़ती है। इसलिए, **लेनदेन के उद्देश्य से मुद्रा की मांग सीधे तौर पर आय पर निर्भर करती है**।

हालांकि आज के समय में लोग अपनी अतिरिक्त नकदी को अस्थायी रूप से **बांड जैसे वित्तीय साधनों** में निवेश कर सकते हैं और ज़रूरत पड़ने पर उन्हें बेच भी सकते हैं, लेकिन यह प्रक्रिया आसान नहीं होती। इसमें **ब्रोकरेज शुल्क**, **समय**, और कभी-कभी **जोखिम** भी शामिल होता है। विशेष रूप से जब बात **छोटी राशि** या **कम समय** के लिए हो, तो यह तरीका व्यवहारिक नहीं होता। इसलिए अधिकतर लोग सीधे कुछ राशि नकद रूप में अपने पास रखना ही बेहतर समझते हैं।

लेकिन जब **ब्याज दरें अधिक होती हैं**, तो लोगों को यह महसूस होता है कि अगर वे अपनी नकदी को बांड जैसे साधनों में निवेश करें, तो उन्हें अधिक ब्याज मिल सकता है। इस कारण वे **लेनदेन के लिए रखी गई मुद्रा की**

मात्रा को कम करने की कोशिश करते हैं, ताकि ज्यादा पैसा निवेश के रूप में काम करे और उन्हें अधिक लाभ मिले।

इससे हमें यह समझ आता है कि **लेनदेन के उद्देश्य से मुद्रा की मांग दो बातों पर निर्भर करती है**:

1. **आय** — जो सीधा संबंध रखती है (आय बढ़ेगी तो मांग बढ़ेगी), और
2. **ब्याज दर** — जो उल्टा संबंध रखती है (ब्याज दर बढ़ेगी तो मांग घटेगी)।

हालांकि **कीन्स** (Keynes) ने मूल रूप से लेनदेन मांग के निर्धारण में ब्याज दर को ज्यादा महत्व नहीं दिया था, लेकिन बाद में यह पाया गया कि विशेष रूप से **व्यावसायिक संस्थानों** के लिए ब्याज दर काफी मायने रखती है। जब ब्याज दरें ज्यादा होती हैं, तो ये संस्थान अपनी **नकदी प्रबंधन प्रणाली** (cash management system) को अधिक प्रभावी बनाने की कोशिश करते हैं, ताकि वे कम नकद में ही अपना काम चला सकें और बाकी धन को निवेश कर सकें।

इस तरह, **ब्याज दरें बढ़ने पर लेनदेन हेतु मुद्रा रखने की प्रवृत्ति घटती है**, खासकर बड़े पैमाने पर काम करने वाले संस्थानों के मामले में।

2. सावधानी उद्देश्य के लिए मुद्रा की मांग (Demand for Money for Precautionary Motive)

कीन्स ने यह बहुत अच्छी तरह से समझा कि लोग सिर्फ अपने नियमित लेनदेन के लिए ही नहीं, बल्कि **अप्रत्याशित खर्चों** के लिए भी कुछ नकद अपने पास रखना पसंद करते हैं। उदाहरण के लिए, अचानक कोई **चिकित्सा आपात स्थिति**, **घर की मरम्मत**, या कोई और **अचानक खर्च** आ सकता है — और ऐसे समय में नकदी की जरूरत पड़ती है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए जो मुद्रा लोग अपने पास रखते हैं, उसे **सावधानी मांग** (Precautionary Demand) कहा जाता है। यह मांग भी आमतौर पर **व्यक्ति की आय पर निर्भर करती है**। जैसे-जैसे किसी की आय बढ़ती है, वह भविष्य की अनिश्चितताओं से निपटने के लिए अधिक नकद रखना चाहता है। उच्च आय वाले लोग इसलिए सामान्यतः अधिक राशि को सुरक्षा के रूप में अपने पास रखते हैं।

अब सवाल आता है — क्या **ब्याज दरों का असर** इस सावधानी मांग पर भी होता है?

उत्तर है — *हाँ, हो सकता है।*

यदि बाजार में ब्याज दरें अधिक हों, तो लोगों को यह लग सकता है कि अपने पास रखी गई अतिरिक्त नकदी

को वे **बांड** में लगाकर अच्छा रिटर्न कमा सकते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपनी नकद होल्डिंग को कम कर सकते हैं और उससे अर्जित ब्याज को प्राथमिकता दे सकते हैं। ठीक वैसे ही जैसे लेनदेन की मांग पर ब्याज दर का असर होता है, **सावधानी मांग भी ब्याज दरों से प्रभावित हो सकती है** — हालांकि यह असर हमेशा सीधा या तीव्र नहीं होता।

इस वजह से, **व्यवहार में लेनदेन और सावधानी दोनों मांगों को अक्सर एक साथ लिया जाता है**। क्योंकि दोनों का उद्देश्य एक ही है — **व्यक्तिगत खर्चों की नियमितता और अनिश्चितता को संभालना**। इसलिए, इन दोनों मांगों को मिलाकर कभी-कभी "**लेनदेन उद्देश्य की समग्र मांग**" के रूप में देखा जाता है।

इस एकीकृत दृष्टिकोण से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि किसी व्यक्ति द्वारा अपने पास नकद रखने का निर्णय केवल योजनाबद्ध खर्चों के लिए नहीं होता, बल्कि अनपेक्षित परिस्थितियों को संभालने के लिए भी होता है — और इस निर्णय में **आय और ब्याज दर दोनों** महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

3. सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की मांग (Demand for Money for Speculative Motive)

कीन्स ने मुद्रा की मांग के तीसरे उद्देश्य के रूप में **सट्टा मांग (speculative demand)** की अवधारणा प्रस्तुत की। उन्होंने एक बहुत महत्वपूर्ण सवाल उठाया — *जब बांड ब्याज देते हैं और मुद्रा नहीं, तो लोग लेनदेन और सावधानी जरूरतों से अधिक मुद्रा क्यों अपने पास रखते हैं?*

इसका उत्तर कीन्स ने भविष्य की **ब्याज दरों की अनिश्चितता** और **बांड की कीमतों में संभावित पूंजीगत लाभ या हानि** में खोजा।

हमें याद रखना चाहिए कि **बांड की कीमतें और ब्याज दरें हमेशा विपरीत दिशा में चलती हैं**। जब ब्याज दरें बढ़ती हैं, तो बांड की कीमतें गिरती हैं — और इससे पहले से खरीदे गए बांड पर नुकसान (पूंजीगत हानि) होता है। इसके उलट, यदि ब्याज दरें घटती हैं, तो बांड की कीमतें बढ़ जाती हैं — और पूंजीगत लाभ मिलता है।

इसलिए, अगर किसी निवेशक को लगता है कि भविष्य में **ब्याज दरें बढ़ेंगी**, तो वह **बांड में निवेश करने से बचेगा**। उसके लिए **मुद्रा रखना अधिक सुरक्षित** होगा — क्योंकि मुद्रा पर न तो लाभ होता है और न ही हानि।

कीन्स ने इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए मुद्रा और बांड पर **अपेक्षित प्रतिफल (expected return)** की तुलना इस तरह से की:

- **मुद्रा पर प्रतिफल = 0**
- **बांड पर अपेक्षित प्रतिफल = ब्याज आय (r) ± पूंजीगत लाभ/हानि**

अब अगर पूंजीगत हानि की संभावना ब्याज आय से **अधिक** हो, तो कुल प्रतिफल **ऋणात्मक** हो सकता है। ऐसी स्थिति में, लोग **बांड नहीं खरीदेंगे** और अपनी पूरी पूंजी **मुद्रा** के रूप में रखेंगे। इस अवस्था में जो मुद्रा की मांग उत्पन्न होती है, वही **सट्टा मांग** कहलाती है।

ब्याज दर और सट्टा मांग का संबंध

अब सवाल उठता है कि **ब्याज दर और सट्टा मांग के बीच क्या संबंध है?** कीन्स ने यह माना कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में **"सामान्य ब्याज दर" (normal interest rate)** की एक धारणा होती है — यानी वह दर जो उसे सामान्य या औसत लगती है।

- जब बाजार की ब्याज दर इस सामान्य दर से **ऊँची** होती है, तो व्यक्ति को लगता है कि दरें भविष्य में गिरेंगी — और वह बांड **खरीदने को तैयार होता है**।
- लेकिन जब ब्याज दर इस सामान्य दर से **नीचे** चली जाती है, तो व्यक्ति को लगता है कि भविष्य में दरें बढ़ेंगी — और वह **बांड से दूरी बना लेता है**, और अपनी बचत **मुद्रा के रूप में रखता है**।

हर व्यक्ति के लिए यह **महत्वपूर्ण ब्याज दर (critical interest rate)** अलग हो सकती है। जब बाजार की दर इस "critical rate" से नीचे चली जाती है, तो व्यक्ति अपने सभी धन को **मुद्रा के रूप में** रखने लगता है — और **बांड में कोई निवेश नहीं करता**।

इस स्थिति को कीन्स ने **तरलता जाल (Liquidity Trap)** कहा है।

इसमें क्या होता है?

- ब्याज दर चाहे जितनी कम हो जाए,
- मुद्रा की मांग बढ़ती रहती है,
- लेकिन कोई भी **निवेश नहीं बढ़ता**,

- क्योंकि सभी लोग नकद ही रखना चाहते हैं — उन्हें डर रहता है कि भविष्य में ब्याज दर बढ़ेगी और बांड में नुकसान होगा।

कुल मुद्रा की मांग (Total Demand for Money)

अब तक हमने तीनों उद्देश्यों को समझ लिया:

1. **लेनदेन मांग (transaction demand)**
2. **सावधानी मांग (precautionary demand)**
3. **सट्टा मांग (speculative demand)**

अब हम इन तीनों को मिलाकर **कुल मुद्रा मांग** का सूत्र बना सकते हैं।

लेनदेन और सावधानी मांग — दोनों आय (Y) के साथ **सीधा संबंध** रखती हैं और ब्याज दर (r) के साथ **उल्टा संबंध**।

सट्टा मांग — पूरी तरह ब्याज दर (r) से **नकारात्मक रूप से जुड़ी** होती है।

इसलिए कुल मुद्रा मांग को इस तरह लिखा जाता है:

$$Md = L(Y, r) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (8.1)$$

जहाँ:

- **Md** = कुल मुद्रा मांग
- **Y** = आय
- **r** = ब्याज दर

यह समीकरण हमें बताता है कि आय बढ़ने पर मुद्रा की मांग बढ़ती है और ब्याज दर बढ़ने पर मुद्रा की मांग घटती है।

कभी-कभी विश्लेषण को आसान बनाने के लिए इसे एक **रैखिक रूप** में भी लिखा जाता है:

$$Md = c_0 + c_1Y - c_2r \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (8.2)$$

जहाँ:

- $\mathbf{c_1} > \mathbf{0}$ (आय बढ़ने पर मुद्रा मांग बढ़ती है)
- $\mathbf{c_2} > \mathbf{0}$ (ब्याज दर बढ़ने पर मुद्रा मांग घटती है)

इस रैखिक समीकरण से हमें यह समझ आता है कि:

- जब **Y** में 1 इकाई की वृद्धि होती है, तो मुद्रा की मांग $\mathbf{c_1}$ से बढ़ती है,
- और जब **r** में 1 इकाई की वृद्धि होती है, तो मुद्रा की मांग $\mathbf{c_2}$ से घटती है।

इस प्रकार, यह मॉडल हमें पूरी तरह से यह समझाने में मदद करता है कि कैसे कुल मुद्रा मांग आय और ब्याज दर दोनों का एक संयुक्त परिणाम है।

8.2.4 मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि के प्रभाव (Effects of an Increase in the Money Supply)

चित्र 8.3 में हम कीन्सीयन सिद्धांत के अंतर्गत मुद्रा की मांग और ब्याज दर के बीच संबंध को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हैं। इस चित्र में मुद्रा मांग की रेखा (जो समीकरण 8.2 पर आधारित है) नीचे की ओर झुकी हुई दिखाई देती है, जो यह दर्शाती है कि जब ब्याज दर घटती है, तो लोग अधिक मात्रा में मुद्रा अपने पास रखना पसंद करते हैं। यानी, ब्याज दर में गिरावट से मुद्रा की मांग बढ़ जाती है। इस विश्लेषण में यह भी मान लिया गया है कि आय का स्तर स्थिर है, ताकि मुद्रा मांग फलन की स्थिति में कोई बदलाव न हो। चित्र 8.3 में जो मुद्रा मांग की रेखा दर्शाई गई है, वह Y_0 नामक आय स्तर के लिए खींची गई है। यदि आय बढ़ जाए तो यह रेखा दाईं ओर खिसक जाएगी क्योंकि किसी भी निश्चित ब्याज दर पर अब मुद्रा की मांग अधिक होगी। इस बात को ध्यान में रखते हुए, मुद्रा आपूर्ति को एक नीति चर (policy variable) माना गया है, जिसे किसी बाहरी शक्ति द्वारा नियंत्रित किया जाता है, और जिसकी प्रारंभिक मात्रा M_0^s निर्धारित की गई है।

Figure 8.3

Equilibrium in the Money Market

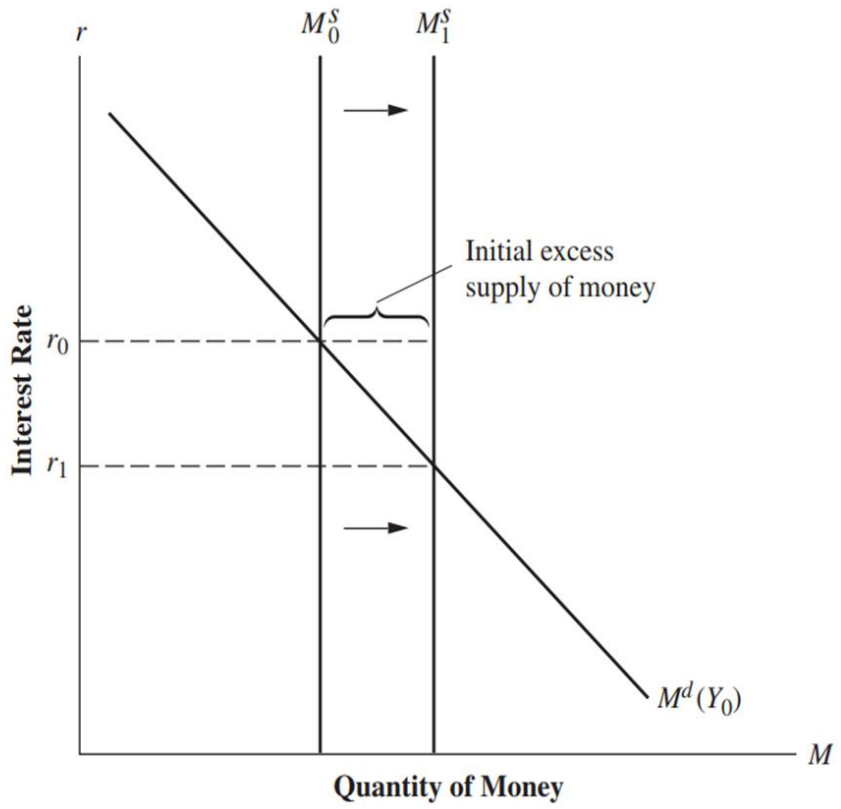

अब सोचिए कि यदि मुद्रा आपूर्ति बढ़ा दी जाए तो क्या होगा? चित्र 8.3 में यह वृद्धि M_1^s रेखा द्वारा दर्शाई गई है। प्रारंभिक संतुलन ब्याज दर r_0 पर, जब मुद्रा आपूर्ति बढ़ाई जाती है, तो मुद्रा की अधिकता (excess supply of money) उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था में, लोग अपनी बढ़ी हुई मुद्रा होल्डिंग्स से संतुष्ट नहीं होते हैं और वे इस अतिरिक्त मुद्रा से बांड खरीदने का प्रयास करते हैं। जब बांड की मांग बढ़ती है, तो उसके परिणामस्वरूप बांड की कीमतें बढ़ती हैं और इसके उलट ब्याज दरों में गिरावट आती है, क्योंकि बांड जारी करने वाले (जैसे कि उधारकर्ता) अब कम ब्याज दर पर भी बांड बेचने को तैयार हो जाते हैं। इस ब्याज दर में गिरावट से मुद्रा की मांग में पुनः वृद्धि होती है, और अंततः एक नया संतुलन r_1 की ब्याज दर पर स्थापित हो जाता है।

अब तक हमने यह समझा कि मुद्रा आपूर्ति में परिवर्तन से ब्याज दर किस प्रकार प्रभावित होती है। हम पहले ही यह भी देख चुके हैं कि ब्याज दरों में परिवर्तन, कुल मांग को कैसे प्रभावित करता है। इस बिंदु पर यह विचार उठना स्वाभाविक है कि क्या हम चित्र 8.3 को चित्र 8.1 के साथ जोड़कर इस पूरी प्रक्रिया को इस क्रम में नहीं देख सकते

कि मुद्रा आपूर्ति में परिवर्तन आय पर किस प्रकार प्रभाव डालता है?

हालांकि यह विचार सहज प्रतीत होता है, लेकिन दुर्भाग्यवश, हम ऐसा नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि चित्र 8.3 का विश्लेषण केवल मुद्रा बाजार के भीतर सीमित है, जिसमें अन्य बाजारों पर इसके प्रभावों को शामिल नहीं किया गया है। विशेष रूप से, हमने इस विश्लेषण में आय को Y_0 के स्तर पर स्थिर रखा ताकि मुद्रा मांग फलन की स्थिति स्थिर बनी रहे। परंतु जैसे ही ब्याज दर r_0 से घटकर r_1 हो जाती है, हम चित्र 8.1 से जानते हैं कि इससे आय में वृद्धि होकर Y_0 से Y_1 तक पहुँच जाती है। इस बढ़ी हुई आय का परिणाम यह होगा कि चित्र 8.3 में मुद्रा मांग रेखा दाईं ओर खिसक जाएगी क्योंकि अब लोग अधिक मुद्रा की मांग करेंगे।

इस तरह, ब्याज दर में r_0 की ओर और गिरावट होगी और उसके साथ ही आय में एक और बदलाव देखा जाएगा। यह परस्पर क्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि एक नया संतुलन बिंदु प्राप्त नहीं हो जाता, जिसमें ब्याज दर और आय दोनों स्थिर हो जाएं। इसलिए, हमें आवश्यकता है ऐसे विश्लेषण की जो मुद्रा और वस्तु – दोनों बाजारों में संतुलन के प्रभाव को एक साथ दर्शा सके। हमारे पास सभी आवश्यक संबंध (जैसे कि मुद्रा मांग, मुद्रा आपूर्ति, ब्याज दर और कुल मांग) तो पहले से मौजूद हैं, लेकिन उन्हें एक समेकित ढांचे में रखने के लिए हमें एक नए उपकरण की आवश्यकता है। यही नया उपकरण है — **IS-LM मॉडल जिसे हम अगले सेमेस्टर में पढ़ेंगे**।अगले भाग में हम वाणिज्य बैंको के बारे में पढ़ेंगे

8.3 वाणिज्यिक बैंक और उनके कार्य (Commercial Banks and Their Functions)

वाणिज्यिक बैंक (Commercial Banks) वे वित्तीय संस्थान हैं जो लाभ कमाने के उद्देश्य से वित्तीय सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करते हैं। ये अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं, बचत को निवेश में परिवर्तित करने और आर्थिक गतिविधियों को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में, वाणिज्यिक बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) द्वारा विनियमित किया जाता है।

वाणिज्यिक बैंकों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

1. **सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक (Public Sector Banks):** ये वे बैंक हैं जिनमें सरकार की अधिकांश हिस्सेदारी होती है (उदाहरण: भारतीय स्टेट बैंक, पंजाब नेशनल बैंक)।
2. **निजी क्षेत्र के बैंक (Private Sector Banks):** ये वे बैंक हैं जिनमें निजी संस्थाओं या व्यक्तियों की अधिकांश हिस्सेदारी होती है (उदाहरण: आईसीआईसीआई बैंक, एचडीएफसी बैंक)।

3. **विदेशी बैंक (Foreign Banks):** ये वे बैंक हैं जिनका मुख्यालय विदेश में होता है लेकिन वे भारत में अपनी शाखाओं के माध्यम से काम करते हैं (उदाहरण: स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक, सिटी बैंक)।

1. वाणिज्यिक बैंकों के मुख्य कार्य (Primary Functions of Commercial Banks)

वाणिज्यिक बैंकों के कार्य व्यापक और विविध हैं, लेकिन उन्हें मुख्य रूप से दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है: प्राथमिक कार्य और सहायक कार्य।

1. जमा स्वीकार करना (Accepting Deposits):

बैंकों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य जनता से बचत और अधिशेष धन को जमा के रूप में स्वीकार करना है। वे विभिन्न प्रकार के जमा खाते प्रदान करते हैं जो ग्राहकों की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करते हैं:

- **चालू जमा खाता (Current Account Deposits):** ये व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, फर्मों और कंपनियों के लिए होते हैं। इन खातों में जमा की गई राशि पर कोई ब्याज नहीं मिलता है, लेकिन इनमें असीमित लेनदेन की सुविधा होती है। बैंक इन सेवाओं के लिए कुछ शुल्क ले सकते हैं।
- **बचत जमा खाता (Savings Account Deposits):** ये आम जनता के लिए होते हैं। इनका उद्देश्य लोगों में बचत की आदत को बढ़ावा देना है। इन खातों में जमा राशि पर कम ब्याज दर मिलती है और लेनदेन की संख्या पर कुछ प्रतिबंध हो सकते हैं।
- **सावधि जमा खाता/मियादी जमा (Fixed Deposit Accounts/Term Deposits):** इनमें एक निश्चित अवधि (जैसे 6 महीने, 1 वर्ष, 5 वर्ष) के लिए एक निश्चित राशि जमा की जाती है। इन पर सबसे अधिक ब्याज दर मिलती है क्योंकि बैंक इस धन को लंबे समय तक अपने पास रख सकते हैं और निवेश कर सकते हैं। समय से पहले निकासी पर जुर्माना लग सकता है।
- **आवर्ती जमा खाता (Recurring Deposit Accounts):** यह सावधि जमा का एक प्रकार है जिसमें ग्राहक एक निश्चित अवधि के लिए नियमित मासिक किस्तों में एक निश्चित राशि जमा करते हैं। सावधि जमा की तुलना में इस पर ब्याज दर थोड़ी कम हो सकती है, लेकिन यह उन लोगों के लिए आदर्श है जो छोटी बचत करना चाहते हैं।

2. ऋण और अग्रिम प्रदान करना (Granting Loans and Advances):

जमा स्वीकार करने के बाद, बैंक इस धन का उपयोग विभिन्न व्यक्तियों, व्यवसायों और उद्योगों को ऋण और

अग्रिम प्रदान करने के लिए करते हैं। यह बैंकों के लिए आय का मुख्य स्रोत है। ऋण के कुछ सामान्य प्रकार हैं:

- **नकद ऋण (Cash Credit):** बैंक ग्राहक के चालू खाते में एक निश्चित सीमा तक धन निकालने की अनुमति देता है। यह सुविधा आमतौर पर व्यवसायों को उनकी कार्यशील पूंजी की जरूरतों को पूरा करने के लिए दी जाती है। ब्याज केवल निकाली गई राशि पर लगाया जाता है।
- **ओवरड्राफ्ट सुविधा (Overdraft Facility):** यह चालू खाते वाले ग्राहकों को दी जाने वाली एक अल्पकालिक सुविधा है, जिसके तहत वे अपने खाते में उपलब्ध शेष राशि से अधिक निकाल सकते हैं, एक पूर्व-अनुमोदित सीमा तक। इस पर ब्याज केवल उस अतिरिक्त राशि पर लगता है जो निकाली गई है।
- **मांग ऋण (Demand Loans):** ये वे ऋण होते हैं जिन्हें बैंक किसी भी समय बिना किसी पूर्व सूचना के वापस बुला सकता है। आमतौर पर, ऐसे ऋणों को कुछ प्रतिभूतियों के खिलाफ सुरक्षित किया जाता है।
- **अल्पकालिक ऋण (Short-Term Loans):** ये व्यक्तिगत ऋण, उपभोग ऋण, वाहन ऋण, शिक्षा ऋण आदि जैसे विभिन्न उद्देश्यों के लिए दिए जाते हैं। इन्हें एक निश्चित अवधि के लिए दिया जाता है और इसमें किस्तों में पुनर्भुगतान शामिल होता है।

2. वाणिज्यिक बैंकों के सहायक कार्य (Subsidiary/Agency Functions of Commercial Banks)

प्राथमिक कार्यों के अलावा, वाणिज्यिक बैंक अपने ग्राहकों को कई सहायक या एजेंसी सेवाएं भी प्रदान करते हैं:

1. एजेंसी कार्य (Agency Functions):

बैंक अपने ग्राहकों के एजेंट के रूप में कार्य करते हैं और उनकी ओर से विभिन्न लेनदेन करते हैं:

- **फंड का हस्तांतरण (Transfer of Funds):** चेक, ड्राफ्ट, एनईएफटी (NEFT), आरटीजीएस (RTGS), आईएमपीएस (IMPS) आदि के माध्यम से एक खाते से दूसरे खाते में या एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन हस्तांतरण।
- **विभिन्न भुगतानों का संग्रह (Collection of Various Payments):** ग्राहकों के चेक, बिल, ड्राफ्ट, ब्याज और लाभांश का संग्रह।
- **विभिन्न भुगतानों का भुगतान (Making Various Payments):** ग्राहकों की ओर से बीमा प्रीमियम, किराया, ऋण की किस्तों आदि का भुगतान।

- **प्रतिभूतियों की खरीद और बिक्री (Purchase and Sale of Securities):** बैंक ग्राहकों की ओर से शेयरों, डिबेंचर और अन्य प्रतिभूतियों को खरीदने और बेचने में मदद करते हैं।
- **ट्रस्टी और निष्पादक (Trustee and Executor):** बैंक ग्राहकों की संपत्ति के ट्रस्टी या निष्पादक के रूप में कार्य कर सकते हैं।
- **विदेशी मुद्रा लेनदेन (Foreign Exchange Transactions):** ग्राहकों को विदेशी मुद्रा खरीदने और बेचने में सुविधा प्रदान करना।

3. सामान्य उपयोगिता कार्य (General Utility Functions)

ये वे सेवाएं हैं जो जनता को सामान्य उपयोगिता के लिए प्रदान की जाती हैं:

- **लॉकर सुविधा (Locker Facility):** मूल्यवान वस्तुओं जैसे गहने, महत्वपूर्ण दस्तावेज आदि को सुरक्षित रखने के लिए सुरक्षित जमा लॉकर किराए पर देना।
- **यात्री चेक (Traveller's Cheques):** यात्रा के दौरान नकदी ले जाने के जोखिम को कम करने के लिए यात्री चेक जारी करना।
- **साख पत्र (Letters of Credit):** आयातकों और निर्यातकों के लिए व्यापार लेनदेन को सुविधाजनक बनाने के लिए साख पत्र जारी करना।
- **अंडरराइटिंग सेवाएं (Underwriting Services):** नई कंपनियों के शेयरों और डिबेंचर का अंडरराइटिंग करना, जिससे उनके सफल जारी होने में मदद मिलती है।
- **आर्थिक आंकड़े और सलाह (Economic Data and Advice):** आर्थिक और व्यावसायिक मामलों पर आंकड़े और सलाह प्रदान करना।
- **डिजिटल बैंकिंग सेवाएं (Digital Banking Services):** इंटरनेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, यूपीआई (UPI) आदि के माध्यम से 24/7 बैंकिंग सेवाएं प्रदान करना।

8.3.1 अर्थव्यवस्था में वाणिज्यिक बैंकों का महत्व (Importance of Commercial Banks in the Economy)

वाणिज्यिक बैंक किसी भी आधुनिक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं:

- **पूंजी निर्माण (Capital Formation):** वे छोटी-छोटी बचतों को एकत्र करते हैं और उन्हें उत्पादक निवेश में लगाते हैं, जिससे पूंजी निर्माण को बढ़ावा मिलता है।
- **उद्योग और व्यापार का विकास (Development of Industry and Trade):** वे उद्योगों और व्यापार को कार्यशील पूंजी और निवेश के लिए ऋण प्रदान करते हैं, जिससे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है।
- **रोजगार सृजन (Employment Generation):** प्रत्यक्ष रूप से बैंक स्वयं बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार देते हैं, और अप्रत्यक्ष रूप से उनके द्वारा वित्तपोषित उद्योग भी रोजगार सृजित करते हैं।
- **ग्रामीण विकास (Rural Development):** वे कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों को ऋण प्रदान करके ग्रामीण विकास में योगदान करते हैं।
- **भुगतान प्रणाली का आधुनिकीकरण (Modernization of Payment System):** वे इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर, चेक और अन्य डिजिटल साधनों के माध्यम से भुगतान प्रणाली को कुशल बनाते हैं।
- **क्रेडिट निर्माण (Credit Creation):** बैंक अपनी जमाओं के आधार पर ऋण प्रदान करके अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति बढ़ाते हैं। यह एक अद्वितीय कार्य है जो बैंकों को आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने की शक्ति देता है।

संक्षेप में, वाणिज्यिक बैंक केवल धन जमा करने और ऋण देने के स्थान नहीं हैं, बल्कि वे अर्थव्यवस्था के विकास और स्थिरता के लिए आवश्यक वित्तीय मध्यस्थ और सुविधाकर्ता हैं।

8.3.2 वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख निर्माण की प्रक्रिया (Process of Credit Creation by Commercial Banks)

साख निर्माण (Credit Creation) वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किया जाने वाला एक अनूठा और महत्वपूर्ण कार्य है, जिसके माध्यम से वे अर्थव्यवस्था में मुद्रा आपूर्ति को बढ़ाते हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बैंक अपनी प्राप्त जमाओं के आधार पर ऋण और अग्रिम प्रदान करके मूल जमा राशि से कई गुना अधिक साख (क्रेडिट) का निर्माण करते हैं। यह बैंकों के प्राथमिक कार्यों में से एक है और यह अर्थव्यवस्था में निवेश और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने में केंद्रीय भूमिका निभाता है।

साख निर्माण का मूल सिद्धांत (Basic Principle of Credit Creation):

बैंक अपनी सभी जमा राशियों को एक साथ नहीं रखते हैं क्योंकि अनुभव बताता है कि सभी जमाकर्ता एक ही

समय में अपनी जमा राशि निकालने नहीं आते हैं। इसलिए, बैंक अपनी जमा राशि का एक निश्चित प्रतिशत (जिसे नकद आरक्षित अनुपात - Cash Reserve Ratio, CRR या वैधानिक तरलता अनुपात - Statutory Liquidity Ratio, SLR के रूप में जाना जाता है) भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) के पास या अपनी तिजोरियों में आरक्षित के रूप में रखते हैं, और शेष राशि को ऋण देने के लिए उपयोग करते हैं। जब बैंक ऋण देते हैं, तो वे आम तौर पर नकदी में भुगतान नहीं करते हैं, बल्कि ऋण लेने वाले के खाते में जमा के रूप में क्रेडिट करते हैं। ये नए जमा, बदले में, आगे ऋण देने का आधार बन जाते हैं, जिससे मुद्रा गुणक प्रभाव पैदा होता है।

साख निर्माण की मान्यताएं (Assumptions for Credit Creation):

साख निर्माण की प्रक्रिया को समझने के लिए कुछ धारणाएँ महत्वपूर्ण हैं;

1. **एक संगठित बैंकिंग प्रणाली (Organized Banking System):** अर्थव्यवस्था में एक सुव्यवस्थित और संगठित बैंकिंग प्रणाली मौजूद है।
2. **गैर-बैंकिंग जनता से व्यवहार (Dealings with Non-Banking Public):** सभी लेनदेन बैंकों के माध्यम से होते हैं और जनता नकदी को अपने पास रखने के बजाय उसे बैंक में जमा करती है।
3. **नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio - CRR):** केंद्रीय बैंक द्वारा निर्धारित एक निश्चित CRR होता है जिसका बैंकों को अनिवार्य रूप से पालन करना होता है। बैंक CRR से अधिक या कम नकदी नहीं रखते हैं।
4. **ऋणों की मांग (Demand for Loans):** अर्थव्यवस्था में हमेशा पर्याप्त ऋणों की मांग होती है।
5. **कोई नकदी रिसाव नहीं (No Cash Leakage):** साख निर्माण की प्रक्रिया में कोई नकदी जनता के हाथों में वापस नहीं जाती है।

साख निर्माण की प्रक्रिया- एक काल्पनिक उदाहरण (The Process of Credit Creation- A Hypothetical Example): मान लीजिए, एक अर्थव्यवस्था में **नकद आरक्षित अनुपात (CRR)** 20% है। इसका मतलब है कि प्रत्येक बैंक को अपनी कुल जमा का 20% अपने पास आरक्षित के रूप में रखना होगा और शेष 80% ऋण के रूप में देना होगा।

चरण 1: प्रारंभिक जमा (Initial Deposit)

- कल्पना कीजिए कि श्रीमान 'क' अपने बैंक खाते में **₹1,000/-** की नकदी जमा करते हैं। यह बैंक के लिए एक **प्राथमिक जमा (Primary Deposit)** है।
- बैंक की बैलेंस शीट पर:
  - **देयताएँ (Liabilities):** जमाएँ (श्रीमान 'क' की) = ₹1,000/-
  - **परिसंपत्तियाँ (Assets):** नकदी आरक्षित = ₹1,000/-

चरण 2: पहला दौर का ऋण (First Round of Lending)

- बैंक को अब ₹1,000/- की जमा मिली है। चूंकि CRR 20% है, बैंक को ₹1,000/- का 20% यानी **₹200/-** आरक्षित रखना होगा।
- शेष राशि **₹800/-** (₹1,000−₹200) को बैंक ऋण के रूप में दे सकता है।
- कल्पना कीजिए कि बैंक यह ₹800/- श्रीमान 'ख' को ऋण के रूप में देता है, जो इसे अपने बैंक (या किसी अन्य बैंक) के खाते में जमा करते हैं।
- अब बैंक की बैलेंस शीट पर:
  - **देयताएँ:** जमाएँ (श्रीमान 'क') = ₹1,000/-
  - **परिसंपत्तियाँ:** नकदी आरक्षित = ₹200/- (₹1,000 में से) + ऋण (श्रीमान 'ख' को) = ₹800/-

चरण 3: दूसरा दौर का ऋण (Second Round of Lending)

- अब, बैंक के पास श्रीमान 'ख' की ₹800/- की नई जमा राशि (जो पहले ऋण के रूप में दी गई थी) है। इसे **व्युत्पन्न जमा (Derivative Deposit)** कहा जाता है।
- इस ₹800/- में से, बैंक को 20% (₹160/−) आरक्षित रखना होगा।
- शेष राशि **₹640/-** (₹800−₹160) को बैंक फिर से ऋण के रूप में दे सकता है।
- कल्पना कीजिए कि बैंक यह ₹640/- श्रीमती 'ग' को ऋण के रूप में देता है, जो इसे अपने बैंक खाते में जमा करती हैं।

चरण 4: प्रक्रिया जारी रहती है (The Process Continues)

यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक कि प्राथमिक जमा से बने सभी व्युत्पन्न जमाओं का पूरी तरह से आरक्षित न हो जाए। प्रत्येक चरण में, नया ऋण पिछली जमा राशि का 80% (100% - CRR) होता है, और नया आरक्षित पिछली जमा राशि का 20% (CRR) होता है।

सारणीबद्ध प्रतिनिधित्व (Tabular Representation):

बैंक का नाम	**जमाएँ (₹)**	**आरक्षित (20%) (₹)**	**ऋण/नया जमा (80%) (₹)**
बैंक A	₹1,000	₹200	₹800 (दिया गया ऋण)
बैंक B	₹800	₹160	₹640 (दिया गया ऋण)
बैंक C	₹640	₹128	₹512 (दिया गया ऋण)
बैंक D	₹512	₹102.40	₹409.60 (दिया गया ऋण)
...	...	...	...
कुल योग	**₹5,000**	**₹1,000**	**₹4,000**

परिणाम (Outcome):

इस प्रक्रिया के अंत में:

- प्रारंभिक जमा = ₹1,000/-
- कुल जमा (जिसमें प्राथमिक और व्युत्पन्न जमा दोनों शामिल हैं) = ₹5,000/-
- कुल आरक्षित (प्रारंभिक जमा के बराबर) = ₹1,000/-
- कुल ऋण (जिससे नई जमाएँ बनीं) = ₹4,000/-

यहां, ₹1,000/- की प्रारंभिक जमा राशि से, बैंकों ने कुल ₹5,000/- की जमा राशि (₹1,000 की मूल जमा +

₹4,000 की नई जमा) का निर्माण किया है। इसका मतलब है कि उन्होंने ₹4,000/- की नई साख का निर्माण किया है।

मुद्रा गुणक (Money Multiplier):

साख निर्माण की सीमा मुद्रा गुणक पर निर्भर करती है। मुद्रा गुणक वह संख्या है जिससे प्रारंभिक जमा को गुणा करने पर कुल जमा में वृद्धि होती है।

- मुद्रा गुणक = 1/CRR
- हमारे उदाहरण में: 1/0.20=5

इसलिए, ₹1,000/- की प्रारंभिक जमा ने कुल ₹1,000 * 5 = ₹5,000/- की जमाओं का निर्माण किया है।

8.3.3 साख निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Credit Creation):

1. **नकद आरक्षित अनुपात (CRR):** CRR जितना कम होगा, बैंक के पास ऋण देने के लिए उतनी ही अधिक राशि उपलब्ध होगी, और साख निर्माण उतना ही अधिक होगा। CRR जितना अधिक होगा, साख निर्माण उतना ही कम होगा।
2. **बैंकों की तरलता स्थिति (Liquidity Position of Banks):** यदि बैंकों के पास अतिरिक्त आरक्षित निधि है (CRR से अधिक), तो वे अधिक ऋण दे सकते हैं।
3. **अर्थव्यवस्था में ऋणों की मांग (Demand for Loans in the Economy):** यदि ऋणों की पर्याप्त मांग नहीं है, तो बैंक अपनी पूरी ऋण देने की क्षमता का उपयोग नहीं कर पाएंगे, जिससे साख निर्माण सीमित हो जाएगा।
4. **केंद्रीय बैंक की मौद्रिक नीति (Monetary Policy of the Central Bank):** RBI जैसे केंद्रीय बैंक विभिन्न उपकरणों (जैसे रेपो दर, बैंक दर) के माध्यम से बैंकों की ऋण देने की क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं।
5. **जनता की बैंकिंग आदतें (Banking Habits of the Public):** यदि लोग नकदी रखने के बजाय बैंक में जमा करते हैं, तो बैंकों के पास अधिक जमाएँ होंगी, जिससे साख निर्माण की संभावना बढ़ेगी।
6. **व्यापारिक चक्र (Business Cycle):** आर्थिक तेजी के दौरान, ऋणों की मांग अधिक होती है, और बैंक अधिक साख का निर्माण करते हैं। मंदी के दौरान, इसके विपरीत होता है।

8.3.4 साख निर्माण की सीमाएँ (Limitations of Credit Creation):

साख निर्माण की प्रक्रिया असीमित नहीं है और इसे कई कारकों द्वारा सीमित किया जा सकता है:

1. **नकद रिसाव (Cash Leakage):** यदि ऋण प्राप्त करने वाले व्यक्ति या व्यवसाय अपने पैसे को बैंक में जमा करने के बजाय नकदी के रूप में निकालते और रखते हैं, तो साख निर्माण की प्रक्रिया बाधित होती है और गुणक प्रभाव कम हो जाता है।
2. **ऋण योग्य निधियों की उपलब्धता (Availability of Loanable Funds):** बैंक केवल तभी ऋण दे सकते हैं जब उनके पास पर्याप्त जमाएँ हों या वे केंद्रीय बैंक से उधार ले सकें।
3. **ऋणों की मांग की कमी (Lack of Demand for Loans):** यदि अर्थव्यवस्था में पर्याप्त निवेश के अवसर नहीं हैं या व्यवसाय अनिश्चितता के कारण ऋण नहीं लेना चाहते हैं, तो बैंक ऋण नहीं दे पाएंगे।
4. **केंद्रीय बैंक का नियंत्रण (Control by Central Bank):** केंद्रीय बैंक (जैसे RBI) विभिन्न मौद्रिक नीति उपकरणों (जैसे CRR, SLR, रेपो दर, बैंक दर, खुले बाजार के संचालन) का उपयोग करके साख निर्माण की प्रक्रिया को नियंत्रित और सीमित कर सकते हैं। वे मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने या आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए साख निर्माण को बढ़ावा या हतोत्साहित कर सकते हैं।
5. **व्यवसाय में अनिश्चितता (Business Uncertainty):** आर्थिक अनिश्चितता के समय में, बैंक स्वयं जोखिम से बचने के लिए कम ऋण देना पसंद करते हैं, और उधारकर्ता भी कम ऋण लेते हैं।
6. **ऋण चुकाने की क्षमता (Creditworthiness of Borrowers):** बैंक केवल उन उधारकर्ताओं को ऋण देंगे जिनकी ऋण चुकाने की क्षमता अच्छी हो। खराब ऋण चुकाने की क्षमता वाले उधारकर्ताओं की कमी साख निर्माण को सीमित कर सकती है।

इस प्रकार, साख निर्माण वाणिज्यिक बैंकों का एक मौलिक कार्य है जो अर्थव्यवस्था में धन के प्रवाह और गति को सुनिश्चित करता है, लेकिन यह विभिन्न आर्थिक और नियामक कारकों के अधीन होता है।

8.4 अपनी प्रगति जांचें (Check Your Progress)

8.4.1 सही विकल्प चुनिए

1. कीन्स के अनुसार, ब्याज दर किसके संतुलन से निर्धारित होती है?

A. बचत और निवेश के बीच B. मुद्रा आपूर्ति और मुद्रा की मांग के बीच

C. कुल मांग और कुल आपूर्ति के बीच D. राजकोषीय घाटे और मुद्रा सृजन के बीच

2. निम्न में से कौन-सा कीन्स द्वारा बताई गई मुद्रा की मांग का उद्देश्य नहीं है?

A. लेनदेन उद्देश्य B. सावधानी उद्देश्य

C. सट्टा उद्देश्य D. निवेश उद्देश्य

3. सट्टा उद्देश्य से मुद्रा की मांग का मुख्य कारण क्या है?

A. भविष्य की अनिश्चितता से निपटना B. अल्पकालिक खरीदारी करना

C. ब्याज दरों में संभावित परिवर्तन के आधार पर लाभ अर्जित करना D. विदेश यात्रा हेतु नकद रखना

4. वाणिज्यिक बैंक निम्न में से कौन-सा कार्य नहीं करते हैं?

A. मुद्रा छापना B. ऋण देना C. जमा स्वीकार करना D. चेक सुविधा देना

5. साख निर्माण की सीमा को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक क्या है?

A. सरकारी बजट B. मुद्रा छपाई की दर C. नकद अनुपात (Cash Reserve Ratio) D. मुद्रा विनिमय दर

8.4.2 सही या गलत बताइए (True or False)

1. वाणिज्यिक बैंक मुद्रा का निर्माण नहीं करते, वे केवल सरकार द्वारा दी गई मुद्रा का वितरण करते हैं।

2. साख निर्माण की प्रक्रिया केवल एक बार में पूरी होती है।

3. बैंकिंग प्रणाली में साख निर्माण का आधार प्रारंभिक जमा होता है।

4. यदि बैंक को कोई वैधानिक आरक्षित अनुपात नहीं रखना पड़े, तो वे असीमित मात्रा में ऋण दे सकते हैं।

5. साख निर्माण की प्रक्रिया में नकद जमाओं की कोई भूमिका नहीं होती।

8.5 सारांश (Summary)

इस अध्याय में हमने कीन्सीयन प्रणाली के अंतर्गत मुद्रा की भूमिका और उसका समष्टि अर्थव्यवस्था पर प्रभाव विस्तार से समझा। कीन्स ने स्पष्ट किया कि ब्याज दर मुद्रा की मांग और आपूर्ति के परस्पर संबंध से निर्धारित होती है, और यह ब्याज दर कुल मांग, निवेश, और अंततः राष्ट्रीय आय को प्रभावित करती है।

कीन्स ने मुद्रा की मांग के तीन उद्देश्यों की चर्चा की — **लेनदेन उद्देश्य**, जिसमें दैनिक आवश्यकताओं हेतु नकद की आवश्यकता होती है; **सावधानी उद्देश्य**, जिसमें भविष्य की अनिश्चितताओं से सुरक्षा के लिए नकदी रखी जाती है; और **सट्टा उद्देश्य**, जिसमें ब्याज दर में संभावित उतार-चढ़ाव से लाभ प्राप्त करने हेतु लोग नकद रोककर रखते हैं। मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि का प्रभाव भी इस अध्याय का प्रमुख हिस्सा रहा, जहाँ यह बताया गया कि बढ़ती मुद्रा आपूर्ति ब्याज दरों को कम कर सकती है, जिससे निवेश बढ़ता है और समष्टि मांग में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त, हमने **वाणिज्यिक बैंकों** की कार्यप्रणाली को समझा। बैंकों के **प्राथमिक कार्य** (जमा स्वीकार करना, ऋण देना), **सहायक कार्य** (बिलों का भुगतान, ट्रस्ट सेवाएँ), तथा **सामान्य उपयोगिता कार्य** (लॉकर सेवा, निवेश सलाह) पर चर्चा की गई। अंततः, हमने **साख निर्माण की प्रक्रिया** का अध्ययन किया, जहाँ यह स्पष्ट हुआ कि बैंक आरक्षित निधि रखते हुए भी कई गुना अधिक साख उत्पन्न कर सकते हैं। इसके साथ ही **साख निर्माण को प्रभावित करने वाले कारकों** जैसे कि नकद अनुपात, जमाकर्ताओं का व्यवहार, और केंद्रीय बैंक की नीतियों को भी समझा गया। इस प्रकार, यह अध्याय यह स्पष्ट करता है कि मुद्रा और बैंकिंग प्रणाली आधुनिक अर्थव्यवस्था के अभिन्न स्तंभ हैं, और उनकी समझ समष्टि आर्थिक विश्लेषण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

8.6 सूचक शब्द (Keywords)

- **ब्याज दर (Interest Rate):** वह दर जिस पर उधार ली गई धनराशि पर ब्याज का भुगतान किया जाता है; कीन्स के अनुसार यह मुद्रा की मांग और आपूर्ति के संतुलन से निर्धारित होती है।
- **लेनदेन उद्देश्य (Transaction Motive):** मुद्रा की मांग का वह उद्देश्य जिसमें दैनिक लेन-देन के लिए नकद की आवश्यकता होती है।
- **सावधानी उद्देश्य (Precautionary Motive):** भविष्य की अनिश्चित परिस्थितियों से निपटने हेतु नकद रखने की प्रवृत्ति।
- **सट्टा उद्देश्य (Speculative Motive):** ब्याज दरों में संभावित परिवर्तन से लाभ अर्जित करने के लिए मुद्रा रखने की प्रवृत्ति।
- **वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank):** ऐसे वित्तीय संस्थान जो जनता से जमा स्वीकार करते हैं और ऋण प्रदान करते हैं।

- **साख निर्माण (Credit Creation):** वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से बैंक प्रारंभिक जमा से कई गुना अधिक ऋण प्रदान करते हैं, जिससे मुद्रा की आपूर्ति बढ़ती है।
- **नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio – CRR):** वह न्यूनतम राशि जो बैंक को केंद्रीय बैंक के पास नकद के रूप में रखना आवश्यक होता है।

8.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self Assessment Questions-SAQs)

1. कीन्स के अनुसार ब्याज दर किस प्रकार निर्धारित होती है? (How is the interest rate determined according to Keynes?)

2. मुद्रा की मांग के तीन कीन्सीयन उद्देश्यों को समझाइए। (Explain the three Keynesian motives for the demand for money.)

3. वाणिज्यिक बैंकों के प्रमुख कार्यों की सूची दीजिए। (List the major functions of commercial banks.)

4. साख निर्माण की प्रक्रिया क्या होती है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए। (What is the process of credit creation? Explain with an example.)

5. साख निर्माण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन-कौन से हैं? (What are the major factors affecting the process of credit creation?)

8.8 अपनी प्रगति की जांच करने के लिए उत्तर (Answers to Check Your Progress)

8.4.1 => सही उत्तर: 1. B. मुद्रा आपूर्ति और मुद्रा की मांग के बीच, 2. D. निवेश उद्देश्य, 3. C. ब्याज दरों में संभावित परिवर्तन के आधार पर लाभ अर्जित करना, 4. A. मुद्रा छापना, 5. C. नकद अनुपात (Cash Reserve Ratio) I

8.4.2=> **सही उत्तर**: 1. **गलत**, 2. **गलत**, 3. **सही**, 4. **सही**, 5. **गलत।**

8.9 संदर्भ ग्रंथ / निर्देशित पुस्तकें **(References / Suggested Readings)**

1. Abel, Andrew B., Ben S. Bernanke & Dean Croushore – Macroeconomics (8th Edition), Pearson Education.
2. Ackley, G. – *Macroeconomics: Theory and Policy*, Macmillan Publishing
3. Dornbusch, R., Fischer, S. and Startz, R. – *Macroeconomics*, McGraw Hill
4. Froyen, Richard T. – *Macroeconomics: Theories and Policies*, Pearson Education.
5. Branson, W. A. – *Macroeconomic Theory and Policy*, Harper & Row
6. Jhingan, M.L. – *Samasti Arthashastra (समष्टि अर्थशास्त्र)*, Vrinda Publications, Delhi
7. Ahuja, H.L. – *Modern Economics*, S. Chand & Co., New Delhi

NOTES

NOTES

NOTES